TO THE READER.

KINDLY use this book very carefully. If the book is disfigured or marked or written on while in your possession the book will have to be replaced by a r[illegible] or paid for. In case the book be a[illegible] of set which single volume is not [illegible] the price of the whole set will be [illegible]

SRI PRATAP COLLEGE,
SRINAGAR.

LIBRARY

Class No. 891.433

Book No. D51P

Accession No. 14754

T.K.B.

It is very bad
novel. Nothing
is thinking about
it

Pardeep

Ravi Kant
Chabba

Ravi

Path Ki Khoj

पथ की खोज

दूसरा खण्ड

स्वप्न और जागरण

(उपन्यास)

(novel)

डॉ॰ देवराज

बुद्धिवादी प्रकाशगृह, उत्तर प्रदेश

विक्रेता

भारत प्रेस, सदर बाजार, लखनऊ

संस्करण १००० } १९५१ मूल्य ४।।)

प्रकाशक
बुद्धिवादी प्रकाशगृह
लखनऊ
891.433
D 51 P
14754
क: I

[सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित]

मुद्रक
विष्णुनारायण भार्गव
भारत प्रेस
लखनऊ

सन् बयालीस के वीर सिपाही

कामरेड जयप्रकाशनारायण को

निवेदन

"पथ की खोज" का यह दूसरा खण्ड आपके हाथों में है। इस लेखन-यात्रा में लेखक ने कोई प्रगति की है या नहीं, इसका निर्णय आप करेंगे।

इस उपन्यास में कुछ नैतिक समस्याओं की बहुत खुल कर विवृति की गई है। उससे कुछ परीक्षक नाराज़ हों, यह असंभव नहीं। वे शायद लेखक की ईमानदारी से भी ज़्यादा प्रभावित न हों।

'क्यों आप नरेन्द्र जैसे, या उस से सहानुभूति रखनेवाले, पात्रों को चित्रित करते हैं !' उत्तर है—क्योंकि ऐसे पात्र आज के युग में पैदा हो रहे हैं। घोर से घोर आदर्शवादी, बिना कला की हत्या किये, पात्रों की खोज के लिये दूसरे युगों में नहीं जायगा। दूसरे देशों में जाना भी, शायद, उतना शक्य और वांछनीय नहीं है।

युग के नैतिक पथ-प्रदर्शन के लिये यह ज़रूरी है कि हम उसके शंका-सन्देहों का ईमानदारी से सामना करें।...किसी समाज और उसकी कला को पतनोन्मुख तब समझना चाहिए जब, प्राचीन रूढ़ियों का परित्याग करते हुए, वह नैतिक भेदों को ही देखना छोड़ दे— यह सोचते हुए कि वे सारे भेद काल्पनिक हैं।

आज हमें बदली हुई मनोवृत्तियों और चारित्रिक सभावनाओं के सन्दर्भ में ही नये नैतिक मानों की खोज और प्रतिष्ठा करनी पड़ेगी। जो इन मनोवृत्तियों और संभावनाओं को देखने से इनकार करते हैं उनका व्यवहार उस कबूतर जैसा है जो बिल्ली को देखकर, अपनी रक्षा के लिये, आँखें बन्द कर लेता है।

इस उपन्यास का एक परिच्छेद लिखने में मैंने श्री गोविन्द सहाय लिखित "सन् बयालीस का विद्रोह" से सहायता ली है; एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

लखनऊ
१० मई, १९५१

देवराज

प्रथम खण्ड के आवश्यक पात्रों का परिचय

सुशीला—चन्द्रनाथ की पत्नी। कोमल, मधुर और सुंदर, किन्तु पति के बौद्धिक जीवन में अभिरुचि लेने में असमर्थ। चन्द्रनाथ की भाभी से उसकी नहीं पटती थी। शिशु (सुधीर) के होने में उसकी मृत्यु हो गई।

हरिशंकर—चन्द्रनाथ का एक मित्र जो बड़ी मनोरंजक बातें किया करता था। साहित्यिक, कहानीकार, किन्तु कुछ ईर्ष्यालु।

शिवानन्द और वीरेन्द्र—चन्द्रनाथ के साधारण साथी या मित्र, वह उनके साथ एक काटेज में रहता था।

प्रेमलता—नरेन्द्र की मौसेरी बहिन; आशालता की सौतेली बहिन। सुन्दर और मोहक, यौवन की परिपूर्ण कान्ति; प्रगल्भ सामाजिकता। कविता लिखने का भी शौक था। वह और आशा दोनों एक बौद्धिक क्लब की सदस्य थीं जिसमें चन्द्रनाथ भी पहुंच गया था। एक बार सिनेमा के अँधेरे "हॉल" में उसने चन्द्रनाथ के कुर्सी की भुजा पर रखे हाथ को अपने हाथ से दबाया था।

साधना—सुशीला की एक सखी। बौद्धिक और साहित्यिक। क्रमशः चन्द्रनाथ से गाढ़ा स्नेह सम्बन्ध हो गया, भाई-बहिन का सम्बन्ध। एक बार शादी के लिये उसे कुछ महिलाएँ देखने आईं, वे उसे नापसन्द कर गईं। बाद में उस युवक की प्रेमलता से शादी हो गई। इस उपेक्षा से साधना बहुत दुखी हुई, चन्द्रनाथ ने उसे सहानुभूति और अवलम्ब दिया। साधना के विवाह का प्रश्न विकट रूप में उठ खड़ा हुआ था। हरिशंकर की मदद से साधना की शादी अरुणकुमार के (जो प्रतियोगिता में सफल हो डिपुटी कलेक्टर बन गया था) साथ तय हो गई। इस विवाह से कुछ पहले, ज्वर की दशा में, चन्द्रनाथ ने साधना को चुम्बित भी किया था। साधना और चन्द्रनाथ में बड़ा स्नेह पूर्ण पत्र-व्यवहार होता रहा था। विवाह के बाद साधना ने सहसा चन्द्रनाथ के पत्रों का उत्तर देना बन्द कर दिया।

१

साँझ के लगभग पाँच बजे काशी के गोधोलिया नामक चौराहे के निकटवर्ती एक होटल में पहुंच कर चन्द्रनाथ ने सन्तोष की सांस ली। ठहरने का किराया-भाड़ा प्रायः पहले ही तय हो चुका था; मैनेजर से संक्षिप्त बातचीत हो जाने के बाद वह दूसरी मंजिल के एक कमरे में पहुँचा दिया गया। कमरे में एक पलंग था, दो मेज़ें और दो ही कुर्सियाँ; एक मेज में दो दराजें और एक आईना भी लगा था। कुली को पैसे देकर उसने शीघ्रता से अपना बिस्तर खोला और 'होल्डाल' में से दरी-चादर निकाल कर पंलग पर बिछा दी। इसके बाद उसने कण्डी में से लोटा-गिलास निकाला, पास के नल से पानी लेकर हाथ-मुँह धोया और फिर, गर्मी होने पर भी, दर्वाजा बन्द करके बिस्तर पर लेट गया। कमरे की एकमात्र खिड़की ही खुली हुई आवश्यक प्राणवायु को भीतर खींच रही थी।

वह बहुत थका हुआ था, यद्यपि पिछले बीस-बाईस घंटों में शायद कुल मिलाकर पैदल दो-तीन फ़र्लांग भी नहीं चला था। कल शाम वह बदायूँ से प्रस्थित हुआ था, और रात के प्रायः ढाई बजे बरेली से सवार हुआ था। तब से लगभग चार बजे तक एक्सप्रेस द्रुतगति से दौड़ती रही थी, और चन्द्रनाथ को लग रहा था मानो वह गति उसके रक्त और धमनियों में समा गई हो—मानो तीन-चार-सौ मील की दूरी वह स्वयं अपनी संवेदना, अपने प्राणस्पन्दन से, तय करके आया हो। रेल कितनी भीषण होती है और कितनी विशाल; उसकी बाहरी रंगी-धुली स्वच्छता के भीतर कितनी कठोर नियमानुकारता है, कितनी कठिन हृदयहीनता; कितनी जल्दी वह असंख्य मनुष्यों

को अपने मुहल्ले के बीच से उठाकर सैकड़ों मील की दूरी पर खदेड़ देती है !

बदायूँ में जब वह घर से चलने को तैयार हुआ था तो सुधीर, उसका पौने दो साल का शिशु, कितने अधीरज और उत्सुकता से उसके पास आकर खड़ा हुआ था ! सुधीर का लालन-पालन कैसी अस्वाभाविक परिस्थितियों में हुआ है। मातृहीन बालक न किसी से जोर देकर कुछ माँग ही सकता है, और न किसी दूसरे प्रकार की हठ ही कर सकता है। स्वयं चन्द्रनाथ भी उसके प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर सका है। एक वर्ष पहले तक तो वह उसे छूता भी नहीं था। उसकी पारिवारिक परम्परा में बड़ों के रहते अपने बच्चे को खिलाना शील-विरुद्ध समझा जाता है। और क्योंकि चन्द्रनाथ को एकान्त में भी उसे गोद में लेने का अवसर नहीं मिलता था, इसलिये उसके हृदय में बालक के लिये विचित्र भूख रहती और वह कभी-कभी उसे कई मिनट तक तल्लीन भाव से देखता रह जाता। उसके नेत्रों और वाणी की चंचलता, उसके शरीर की अकारण गतियाँ चन्द्रनाथ को बेहद आकृष्ट करतीं और उसके दर्पण जैसे चमकीले गाल और गुलाब की पंखुड़ियों जैसे कोमल, अरुणाभ होंठ उसके हृदय में तीव्र ममत्व एवं वात्सल्य का उद्रेक करते।

एक बार उसके भाई ने उसे इस बात पर बहुत डांटा था कि वह सुधीर को छूता तक नहीं। तबसे वह उससे थोड़ी-बहुत बात कर लेता है। किन्तु इतने से ही न जाने कैसे, सुधीर को उससे बहुत स्नेह हो गया है, यद्यपि चन्द्रनाथ लगातार कभी एक महीने से अधिक बदायूं में नहीं रहता। प्रायः हर बार ही उसके बदायूं से चलते समय वह बालक विशेष उदास हो जाता है, और इस बार तो, तांगे के चलते ही, वह बहुत ज़ोर से रो पड़ा था। एक-दो बार सुधीर स्टेशन तक उसके साथ आया था, लेकिन देखा गया कि इससे कोई लाभ नहीं होता, उलटे उसका रोना बढ़ जाता है।

सुधीर को लगातार भाभी ने ही रक्खा है; खैरियत यह है कि इस बीच में उनके अपना कोई बच्चा नहीं हुआ है। सुशीला जब भाभी से झगड़ने और उससे स्वतंत्र होकर रहने की बात करती थी तब उसे यह कब आभास हुआ होगा कि अन्त में उसके शिशु के पालन का भार भी भाभी को ही संभालना पड़ेगा, और वह मर कर भी उनसे उऋण नहीं हो सकेगी! भाभी सुधीर को कैसे रखती हैं इसकी आलोचना, मन में भी, करने की कोशिश कभी उसने नहीं की, फिर भी कभी-कभी उसे बालक के भाग्य पर करुणा आ ही जाती है। पर वह शुरू से देखता आया है कि भाभी को सुशीला की अपेक्षा उसके शिशु से अधिक प्रेम है।

और आज उसके मन में आ रहा था—क्या सुधीर को किसी तरह अपने साथ नहीं रक्खा जा सकता?

घर, ट्रेन आदि की बातें सोचते-सोचते वह सो गया। किन्तु गर्मी बेहद थी, साधारण होटल के उस साधारण कमरे में बिजली का पंखा भी न था, और बीच-बीच में पसीने से परेशान होकर उसकी नींद टूट जाती। प्रायः ढाई घंटे बाद होटल के एक नौकर ने खिड़की के सीखचों में से झांक कर कहा—'बाबू जी, खाना तैयार है, जब चाहें तब मँगवा लें।'

चन्द्रनाथ काफी भूखा था। बोला—'आधे घंटे के अन्दर खाना ले आना', और वह उठकर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद एक दूसरे नौकर ने आकर पूछा बाबूजी, कौन क्लास का खाना लाऊँ?

'क्या मतलब?' चन्द्रनाथ ने चकित होकर कहा।

'मतलब यह बाबू जी कि फस्टक्लाश का खाना लाऊँ या सेकण्ड क्लाश या थड क्लाश?' और चन्द्रनाथ के पूछने पर उसने बतलाया कि फर्स्ट क्लास का दाम दो रुपया है, सेकण्ड का डेढ़ और थर्ड का सवा रुपया।

चन्द्रनाथ इन मूल्यों को सुनकर स्तब्ध रह गया। किन्तु इस समय भोजन का कोई दूसरा प्रबन्ध करना उचित नहीं जान पड़ा क्योंकि वह पहले से कह चुका था। बोला, 'जो सबसे सस्ता खाना हो वह ले आओ।'

'थडक्लाश ?' नौकर ने स्पष्टीकरण चाहते हुये पूछा।

'हां।' चन्द्रनाथ को नौकर की बात में प्रच्छन्न अपमान की गन्ध लगी।

भोजन उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। यह होटल बंगालियों का था। भात उसका आवश्यक अंग था। भात में से मांड निकाल दिया गया था। चन्द्रनाथ ने प्राकृतिक चिकित्सा का कुछ अध्ययन किया था और वह जानता था कि मांड ही चावलों का सार-भाग होता है, अतः चावल खाने की उसकी बिल्कुल प्रवृत्ति नहीं हो रही थी। तरकारियों में मिर्च ज़्यादा थी और दाल में घी का एकदम अभाव। वह जानता था कि मांगने पर होटल से घी मिल सकेगा, पर उसका अतिरिक्त चार्ज देना उसे अभीष्ट न था। बड़ी मुश्किल से वह छोटी-छोटी चार-पांच रोटियां खा सका। भोजन के बाद वह मैनेजर के कमरे में गया।

'आपके यहां का खाना मुझे सूट नहीं करेगा, इसलिये कल से मेरे लिये खाना न बनवायें' उसने संकोच से कहा।

'लेकिन खाना तो आपको खाना ही होगा; होटल का यही रूल (नियम) है।'

'खाना मुझे पसन्द नहीं है।'

'पसन्द नहीं है, क्यों? थर्ड क्लास पसन्द नहीं है तो सेकण्ड क्लास खायें, फर्स्ट क्लास खायें।'

'मैं खाने का कहीं और प्रबन्ध करना चाहता हूँ।'

'यह नहीं हो सकता। यह होटल है, धर्मशाला नहीं। आप खाना न खायें तो धर्मशाला में जा सकते हैं।'

चन्द्रनाथ स्तम्भित होकर अपने कमरे में चला गया। जीवन में पहली बार वह एक होटल में ठहरा था, और अब पछता रहा था कि क्यों वह वहाँ ठहरा। वास्तव में वह वहाँ कुछ मजबूरी से आया था और कुछ अपनी इच्छा से। प्रायः तीन हफ़्ते पहले वह 'इण्टरव्यू' के लिये आया था; तब उसे पाँडि की साफ़-सुथरी धर्मशाला में जगह मिल गई थी। इस बार उसे वहां जगह न मिल सकी, और किसी दूसरी धर्मशाला में ठहरना उसने प न्द नहीं किया। धर्मशाला के अन्दर ही उसकी इस होटल के आदमी से बातचीत हुई और वह उसके साथ चला आया। हाल ही में उसकी स्थानीय 'राष्ट्रीय कालेज' में नियुक्ति हुई थी और वह अब वहाँ काम करने आया था। कालेज के एक प्रोफ़ेसर की हैसियत से भी (अब अपने को वैसा मानने में कोई संकोच न था) उसने किसी साधारण धर्मशाला में ठहरना उचित नहीं समझा और होटल में कुछ अधिक खर्च पड़ने की सम्भावना की पर्वाह नहीं की। किन्तु उसने यह कल्पना नहीं की थी कि होटल इतना ज़्यादा महँगा पड़ेगा और यह भी नहीं कि वहाँ ऐसे अमानुषिक नियम या नियंत्रण होंगे। मैनेजर के रूखे जवाब से उसकी इच्छा हुई कि तुरन्त ही होटल छोड़ दे, किन्तु यह सोचकर कि कहाँ वह अपना सामान लिये घूमता फिरेगा, उसने दो-चार दिन वहीं बिताने का निश्चय किया। साथ ही उसने संकल्प किया कि जल्दी-से-जल्दी उसे अपने लिये एक छोटा-सा मकान खोज लेना चाहिये।

काशी के कई लेखकों को वह उनके नामों और कृतियों से जानता था; सम्भवतः उनमें से कुछ उसे भी जानते होंगे क्योंकि अब वह इतना अज्ञात या अप्रसिद्ध नहीं रह गया था; पर उसका किसी से व्यक्तिगत परिचय न था। इसलिये उसने किसी के घर पर पहुनाई के लिये पहुंचने की अनधिकार चेष्टा नहीं की।

रात को वह थोड़ी ही देर के लिये आस-पास बाज़ार घूमने गया, और फिर अपने क़मरे में आ कर सो रहा।

२

सुबह सात बजे स्नान आदि से निबटा हुआ वह सोच रहा था कि कुछ देर एक पुस्तक पढ़कर मकान की खोज में निकले कि इतने में पड़ोस के कमरे में से एक युवक आया और "गुड मार्निंग" करके उसके पास खड़ा हो गया। इससे पहले कि चन्द्रनाथ उससे कुर्सी पर बैठने को कहे उसने बातचीत करनी शुरू कर दी।

'रात आप बहुत जल्दी सो गये; मैं आया तो किवाड़ बन्द थे।'

युवक स्वस्थ और सुरूप था, रंग काफी उजला, बाल घने तथा घुँघराले; अंगों से यौवन की कान्ति फूटी पड़ती थी। चन्द्रनाथ ने अभिभूत उल्लास से कहा, 'हां यात्रा की थकन के कारण जल्दी नींद आ गई थी।'

'ओफ्! ट्रेन जर्नी (यात्रा) बड़ी "नुइसेन्स" (मुसीबत) है।............कहां से आना हुआ?'

चन्द्रनाथ ने अपने घर तथा आने के प्रयोजन का संकेत दिया। युवक ने कहा, 'ओहो! आप प्रोफ़ेसर होकर आये हैं; बधाई! अबसे मैं आपको प्रोफ़ेसर साहब कहूँगा।'

युवक बीच-बीच में विशुद्ध अंग्रेजी में बात कर लेता था, यों उसकी हिन्दी भी अंग्रेजी-मिश्रित थी। बात करते-करते यकायक उसने पूछा—

'आपके विचार में मैंने कहाँ तक पढ़ा होगा प्रोफ़ेसर साहब?'

'आप ग्रेजुएट हो सकते हैं।'

'ग्रेजुएट! असलियत यह है कि मैंने कभी मैट्रिक भी पास नहीं किया। लेकिन मैं फिलासफी तक "डिस्कस" कर सकता हूँ। अंग्रेजी बोलने की भी मुझे काफ़ी प्रैक्टिस है।....असल चीज "कामन सैन्स" है। मेरा "कामन सेन्स" तेज है। मैं आदमियों को उनकी

नज़र से, आँखों से, पहचान सकता हूँ। कोई ग्रेजुएट यह नहीं कर सकता। इन्सान को प्रैक्टिकल (व्यावहारिक) होना चाहिये।'

इतने में युवक उठ गया और उसने बैरा को आवाज़ देकर चाय लाने की याद दिलाई। स्पष्ट ही वह चाय की प्रतीक्षा कर रहा था।

शीघ्र ही एक नौकर चाय का प्याला लेकर आया। युवक ने प्याला चन्द्रनाथ की ओर बढ़ाते हुये कहा, 'लीजिये।'

चन्द्रनाथ ने बड़े संकोच से कहा, 'आप पीजिए, मुझे चाय की आदत नहीं है।'

'शिक्षित लोग', युवक ने चाय का घूंट लेते हुए कहा, 'बिज़नेसमैन (व्यापारियों) को हिकारत की नज़र से देखते हैं; फिर वे उनके पास "जाब" (काम) की खोज में क्यों जाते हैं ? यह "इनटालरेबुल" (असह्य) है।'

उसके स्वर में विशेष दृढ़ता और क्षोभ था; चन्द्रनाथ चौंक पड़ा। उसने यथाशक्ति कोमल स्वर में पूछा—'आप कहाँ के निवासी हैं ?'

'मेरा मकान तो फ़ैज़ाबाद है, लेकिन रहता हूँ बम्बई में। ओह ! बम्बई की बराबर हिन्दुस्तान में कोई शहर नहीं है।'

'कलकत्ता भी नहीं ? कहा जाता है कलकत्ता बम्बई से बड़ा है।'

'पहले था, अब नहीं। कलकत्ते की बम्बई से कोई तुलना नहीं। बम्बई बहुत "फाइन" (सुन्दर) जगह है, शानदार। इस वक्त बम्बई की आबादी साठ लाख से कम नहीं। समुद्र के किनारे-किनारे बसी है......बड़ी बढ़िया जगह है। आपने बम्बई नहीं देखी है ?'

'अभी तक नहीं।'

और इसके बाद राजनीति की चर्चा होने लगी।

'मिस्टर जिना' युवक ने कहा, 'बहुत चालाक आदमी है। मैं

कहता हूँ वह पाकिस्तान बनाकर रहेगा। हमारे लीडर "प्रैक्टिकल" (व्यावहारिक) नहीं हैं, वे खाली आदर्श बघारते हैं।"

युवक की चाय खत्म होने लगी थी, शीघ्र ही वह चन्द्रनाथ से विदा माँगते हुए उठा खड़ा हुआ। उसे काम से घूमने-फिरने जाना था। चन्द्रनाथ भी मकान की तलाश में बाहर निकल पड़ा।

उस दिन शाम तक चन्द्रनाथ को उस युवक से भेंट न हो सकी ; रात को दस बजे तक भी वह होटल में वापिस नहीं आया था। दूसरे दिन सुबह में चन्द्रनाथ उसके कमरे में पहुँचा।

'आइये प्रोफ़ेसर साहब', युवक ने सहज, मुक्त स्वर में कहा। वह अपनी दाढ़ी बना रहा था।

चन्द्रनाथ ने देखा कि कमरे में बड़े-बड़े दो टीन के बक्स हैं और एक छोटा सूटकेस। उसने समझा कि उन सबमें युवक का सामान है। किन्तु बाद में पता चला कि बड़े बक्सों में विविध "फैन्सी गुड्स" हैं जिन्हें दूकानदारों को दिखलाने के लिये लाया गया है।

पिछले दिन चन्द्रनाथ युवक से नाम नहीं पूछ सका। आज उसने उससे पहला प्रश्न इस सम्बन्ध में किया।

'मुझे इन्द्रमोहन कहते हैं', उसने चेहरे पर "क्यूटी क्यूरा" पाउडर मलते हुये कहा।

वह नहाने जा रहा था, इसलिये चन्द्रनाथ क्रमशः कमरे से बाहर आगया। स्नान से निबट कर इन्द्रमोहन चन्द्रनाथ के कमरे में चला आया।

'देखिये, यहां ईमानदार आदमी की गुज़र नहीं है। अगर आप रूपया कमा सकते हैं तो आपकी पत्नी आपसे खुश रहेगी, दूसरे लोग भी तारीफ करेंगे, भले ही आप में दस बुराइयाँ हों।

चन्द्रनाथ उत्तर में मुस्कराने की चेष्टा करने लगा। युवक ने कुछ देर में कहा—'मैं शुरू से ही फिलासफी में दिलचस्पी लेता रहा हूँ। आपने फिलासफी पढ़ी है न ?'

'हां, बी० ए० में कुछ पढ़ी थी।'

'फिलासफी क्या चीज़ है, प्रोफेसर साहब ! आपका फिलासफी का आइडिया क्या है ?'

चन्द्रनाथ असमंजस में पड़ गया। जबसे उसने फिलासफी में परीक्षा दी है तबसे शायद किसी ने उससे यह सवाल नहीं किया था। न इतने सीधे व स्वाभाविक ढंग से किसी ने उससे जीवन-सम्बन्धी आलोचना ही की थी। इस प्रकार के प्रश्न युवक के व्यक्तित्व की भीतरी तहों की चीजें हैं या केवल सतह की यह वह बिल्कुल ही नहीं समझ पा रहा था। और वह यह भी नहीं समझ रहा था कि इतने अल्प परिचय में वह क्यों उससे ऐसे गम्भीर प्रश्न छेड़ रहा है।

युवक ने अंग्रेजी में अपना प्रश्न दुहराया। चन्द्रनाथ ने कठिनाई का संकेत करनेवाले संकोच से कहा—'विश्व को समग्रता में समझने की चेष्टा, अथवा जीवन को समूचे विश्व की पृष्ठभूमि में समझने की चेष्टा'; उसे लगा कि उसकी परिभाषा बिल्कुल किताबी है, और इसलिये शायद इस विशेष अवसर के लिये एकदम अनुपयुक्त।

युवक ने कहा—'मैं फिलासफी से कुछ और समझता हूँ। फिलासफी वह है जो आपको दूसरों से सिम्पैथी (सहानुभूति) करना, दूसरों को समझना सिखाये। कोई आदमी जैसा है वैसा क्यों है, क्यों एक आदमी चोर बन जाता है और एक औरत वेश्या।...आप फ़िलासफ़ी किताबों से नहीं सीख सकते। मैं तरह-तरह के आदमियों के साथ रहा हूँ, ऐसे लोगों के जो मेरी हत्या कर सकते थे, चोरों के, बदमाशों के, वेश्याओं के.........'

चन्द्रनाथ चकित होकर उस युवक को देखने लगा; स्वरूप से वह कितना साफ, कुलीन और निर्लिप्त मालूम पड़ता था !

युवक ने कहा--'मैंने एक किताब लिखी है, मारल एण्ड फ्रीडम (नीति और स्वाधीनता), अभी पूरी नहीं हुई है। बहुत सुन्दर किताब है, अनुभवों से भरी हुई, खूब बिकेगी। लेकिन प्रकाशक धोखेबाज़

होते हैं। फिर मुझे समय नहीं मिलता। लेखक में सोचने की शक्ति होनी चाहिये, और एकाग्रता की। मेरा जीवन बिज़िनेस में रहता है, दिमाग़ को फुर्सत कहां, एकाग्रता कहां......मैं कैसे लिख सकता हूँ। पुस्तक मैं आपके पास भेज दूंगा, आपको पसन्द आयेगी।'

और उसने चन्द्रनाथ से उसके कालेज का पता पूछा।

चन्द्रनाथ ने मन में सोचा कि उस अनुभवी युवक की पुस्तक अवश्य ही रोचक होगी। पर इतने छोटे परिचय में वह उसका इतना विश्वास क्यों करने लगा यह उसकी समझ में नहीं आया।

दोपहर में भोजन के समय चन्द्रनाथ और इन्द्रमोहन फिर साथ हो गये। अभी थालियां आने में देर थी, दोनों बातें करने लगे। इन्द्रमोहन ने पूछा--

'प्रोफेसर साहब आप शादीशुदा हैं? '

'मेरी पत्नी की डेढ़-दो वर्ष हुये मृत्यु हो गई।'

'उसके बाद? अभी तक शादी नहीं की?'

'नहीं, कुछ कारणों से। आपका विवाह हो चुका है?'

'अभी नहीं। मेरा विश्वास है प्रोफेसर साहब कि आदमी जब तक बहुत-सा रुपया जमा न कर ले, उसे शादी नहीं करनी चाहिये। उसके बिना आपको अच्छी लड़की नहीं मिल सकती, न आपकी "होम लाइफ़" (पारिवारिक जीवन) ही सुखी हो सकती है। क्योंकि बीबी को खुश रखने के लिये सबसे जरूरी चीज़ है—रुपया। आप इससे पहले कहीं और सर्विस करते ?'

'नहीं। '

'ओह! तब आपने बहुत जल्द शादी कर ली थी। मैंने प्रोफ़ेसर साहब, फैज़ाबाद में हाल ही में कुछ ज़मीन खरीदी है। (आप जानते हैं मुझे बाप-दादा का माल कुछ भी नहीं मिला, एक मकान भी नहीं क्योंकि मेरे कई भाई हैं और मकान छोटा-सा ही है।) मैं चाहता हूँ कि उसपर एक बढ़िया सा बंगला बना लूँ, तब शादी करूं।'

'आपका विचार ठीक है,' चन्द्रनाथ ने कहा।

'अब तो आपको भी शादी करनी चाहिये, प्रोफेसर साहब। कहिये तो मैं कोशिश करूं। बनारस में भी मेरे कई सम्बन्धी हैं, अगर्चे मैं किसी के घर ठहरना पसन्द नहीं करता।' कुछ रुककर 'अब आप प्रोफेसर साहब हो गये, आपको पहले से ज्यादा अच्छी लड़की मिल सकती है, खूबसूरत और पढ़ी-लिखी; और चाहें तो कुछ दहेज़ भी मिल सकेगा। आपकी उम्र पचीस-छब्बीस के क़रीब होगी।'

चन्द्रनाथ ने उस प्रसंग को टाल दिया। इतने में नौकर थालियाँ ले आया और वे खाने बैठ गये। भोजन में तीन तरकारियाँ थीं और एक दाल। एक तरकारी बेसन की बनी हुई थी, चन्द्रनाथ को वह विशेष स्वादिष्ट लगी। किन्तु दो-तीन ग्रास खाने पर उसने पाया कि उस तरकारी को चबाने पर बाद कुछ कड़ा-कड़ा-सा रह जाता है। नौकर के आने पर उसने पूछा कि उस तरकारी में क्या डाला गया है। नौकर ने कहा, 'मछली होगी।'

चन्द्रनाथ ने शांत स्वर में फिर पूछा, 'क्या इसमें मछली है?'

इस पर इन्द्रमोहन ने कहा, 'क्यों, आपको मछली से परहेज़ है!'

'मैं शाकाहारी हूँ, मैनेजर से कह भी दिया था, और उसने विश्वास दिलाया था कि होटल में वेजिटेरियन खाना अलग बनता है।'

'लेकिन होटलों में शुद्ध वेजिटेरियन खाना मिलना नामुमकिन है। फिर मछली तो वेजिटेरियन लोग भी खाते हैं।'

इन्द्रमोहन की बात सुनकर चन्द्रनाथ को बड़ा क्षोभ हुआ। अभी उसने थोड़ा-सा ही खाना खाया था। बेसन की तरकारी को थाली से निकाल कर उसने दो तीन ग्रास बड़ी मुश्किल से खाये, फिर खाना समाप्त कर दिया।

इन्द्रमोहन ने कहा—'माफ कीजिये प्रोफेसर साहब, आप बहुत आर्थोडाक्स (पुराणपन्थी) हैं। आज की दुनिया में इतना आर्थोडाक्स होने से काम नहीं चल सकता। पहले मैं भी शुद्ध "वेजिटेरियन"

था, लेकिन बम्बई जाने पर सब-कुछ छूट गया। बम्बई में आपको वेजिटेरियन होटल एक भी नहीं मिलेगा।'

'लेकिन यह तो बम्बई नहीं काशी है। मैंने नहीं समझा था कि होटलवाले इस तरह धोखा देते हैं।' यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ। इन्द्रमोहन ने फिर अनुरोध किया कि वह उस तरकारी को अलग करके थोड़ा और खाले पर चन्द्रनाथ ने स्वीकार नहीं किया।

सांझ को लगभग पांच बजे उसने जाकर मैनेजर से शिकायत की। मैनेजर ने नौकर को बुलाया और उसे डांटते हुये कहा—'तुम बाबू को मछली की तरकारी क्यों दे आया था, हमने कह दिया था, न कि बाबू "वेजिटेरियन" है। जाओ, आइन्दा ऐसी गलती न करना।'

मैनेजर की दृष्टि में चन्द्रनाथ का एक दिन धोखे से मछली खा लेना कोई बहुत बड़ी बात न थी; नौकर से इतना कह कर और चन्द्रनाथ को आगे के लिए आश्वासन देकर वह दूसरे काम में व्यस्त होने का भाव दिखाने लगा। किन्तु चन्द्रनाथ नितान्त खिन्न था। रह-रह कर उसे मिचली का सम्वेदन हो रहा था। वह चाह रहा था कि किसी प्रकार अपने शरीर के अन्तर्भाग को धो डाले। उसने मैनेजर से कहा कि वह अगले दिन होटल छोड़ देगा और उस समय तक वहाँ भोजन न कर सकेगा।

रात को घूमकर लौटने पर उसने पाया कि इन्द्रमोहन अपने कमरे और होटल में नहीं है।

अवश्य ही इन्द्रमोहन ने उसे थोड़ा-बहुत आकृष्ट किया था, पर उससे अधिक अन्तरंग होने का एक कारण यह भी था कि होटल में ठहरने वाले अधिकांश लोग बंगाली थे जो अपने दायरे से बाहर के लोगों से बात करना कम पसन्द करते हैं। इन्द्रमोहन के चले जाने पर वह अकेला महसूस करने लगा।

इस समय उसने किसी प्रकार का अन्न नहीं खाया था। कचौड़ी गली में वह पहुँचा था, पर भोजन करने की उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई।

उसे लगता था मानो मछली की बारीक हड्डियों का स्पर्श कहीं उसके गले में लग रहा है, और वहां पहुँचने से भोजन अपवित्र हो जायगा। कई बार उसने मुंह में ढेर पानी भर कर कुल्ला किया, और कई बार पानी पिया। चौक में आकर उसने दो-एक फल खरीद कर खाये। फिर वह होटल वापिस आ गया।

सबेरे जब वह उठा तो उसे तेज भूख लग रही थी। शौच आदि से निबट कर वह होटल से बाहर चला गया, और सामने हलवाई की दूकान से दूध लेकर पिया। थोड़ी देर इधर-उधर घूमकर वह पुनः होटल की ओर लौट चला।

होटल के बाहर ही ऊपर जाने का ज़ीना था। ऊपर चढ़कर पहले मैनेजर का कमरा पड़ता था, फिर एक स्नानागार और उसके बाहर हाथ धोने के लिये नल; उसके बाद कुछ गज दूर उसका तथा दूसरे कमरे थे। कमरे के आगे छज्जा था जो जंगले से घिरा हुआ था।

कमरा खोलकर उसने ताला भीतर रख दिया, और फिर आकर दरवाजे में खड़ा हो गया। कई बंगाली स्नानागार और नल के आस-पास खड़े हंस-बोल रहे थे। चन्द्रनाथ सूने भाव से उधर देखता हुआ उनका कोलाहल सुनता रहा। और वह सोच रहा था—ये बंगाली कैसे विचित्र स्वर में, एक दूसरे से कितने घुल-मिल कर, बातें करते हैं, और दूसरे प्रान्तवालों से कितनी दूरी, कितने अलगाव का भाव रखते हैं। कितनी निर्दय सफाई से वे मछलियां खा जाते हैं! इनका साहित्य जितना कोमल लगता है, जीवन उतना ही हृदयहीन और संकीर्ण; बंगालियों के सिवाय उनकी दृष्टि में किसी का अस्तित्व या ... ही नहीं है।

...हर ...रे-धीरे वह छज्जे पर पहुँच गया था। उसकी दृष्टि भी स्नाना-
वहां ...ार से हट कर नीचे आँगन में पहुँच गई। वहाँ एक विशेष
...बू सब से ...कार की कई मुर्गियाँ घूम-फिर रही थीं। वे शोर भी कर
...न्द्रनाथ के ...

सहसा आंगन के कोने में उसे एक भयंकर दृश्य दिखाई दिया; होटल का एक छोटा नौकर जिसकी उम्र बारह-तेरह बरस से अधिक न थी, एक हाथ में छुरी लिये एक मुर्गी को पकड़ रहा था। मुर्गी भागने की चेष्टा में थी, पर अन्त में पकड़ ली गई। चन्द्रनाथ के देखते-देखते लड़के ने मुर्गी की गर्दन काट डाली और उसके जिस्म को बीच में से चीरने लगा।

क्षण भर को चन्द्रनाथ ने अपने नेत्र उधर से खींचे पर हठात् वे फिर वहीं पहुंच गये। लड़का इस काम में बहुत दक्ष मालूम पड़ता था; कुछ ही क्षणों में उसने आस-पास परों का ढेर इकट्ठा कर दिया और उसके हाथ में भीतर का सुर्ख गोल हिस्सा, जो मुर्गी का छोटा संस्करण-सा मालूम पड़ता था, रह गया।

वह उस वीभत्स दृश्य को अधिक देर तक न देख सका। तेजी से वह अपने कमरे में लौट आया। स्नानागार के पास कई बंगाली पूर्ववत् खड़े थे। आंगन में मुर्गियों का शोर बढ़ रहा था, लड़का शायद किसी दूसरी मुर्गी को पकड़ रहा था। मुर्गियों की हत्या का उन बंगालियों से क्या सम्बन्ध है, यह समझते चन्द्रनाथ को देर न लगी और उनका निश्चिन्त हर्ष-कोलाहल, मुर्गियों के क्रन्दन के साथ मिलकर, उसके कानों को जलाने लगा।

उसने अपने कमरे का दर्वाजा भीतर से बन्द कर लिया और अपना सामान बांधने-बटोरने लगा।

थोड़ी देर बाद वह कुली की खोज में बाहर निकला। उस समय तक आंगन का कोलाहल बन्द हो चुका था। स्नानागार के पास भी भीड़ नहीं रह गई थी।

३

अगले ही दिन चन्द्रनाथ का कालेज खुलने वाला था। कहीं अन्तर्मन में यह इच्छा थी कि कालेज खुलने के समय छुट्टि नहीं हुई।

ठहरा हुआ हो ताकि वह निःसंकोच लोगों को अपने अस्थायी डेरे के सम्बन्ध में बता सके। धर्मशाला में ठहरना, उसकी अपनी दृष्टि में भी, भद्र लोगों के कुछ अयोग्य-सी बात थी; एक प्रतिष्ठित कालेज के प्रोफेसर को वह शोभा नहीं देता! किन्तु परिस्थितियों ने उसे कालेज खुलने के ठीक एक दिन पहले होटल छोड़ने को लाचार कर दिया।

वह इस समय चौक के पास एक धर्मशाला में था। होटल का दृश्य याद करके उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसने यह कभी कल्पना नहीं की थी कि काशी जैसी पवित्र नगरी में भी ऐसे वीभत्स काण्ड देखने को मिल सकते हैं। सिर्फ उसने ही नहीं, उसके भाई तथा अन्य सम्बन्धियों ने भी ऐसा नहीं समझा था। काशी की दूरी के बावजूद वे लोग यह सोच कर सन्तुष्ट हुये थे कि चन्द्रनाथ को एक तीर्थस्थान में नौकरी मिल रही है, और वहां वे लोग भी कभी-कभी आ कर ठहर सकेंगे। उनकी कल्पना की काशी से वास्तविक काशी कितनी भिन्न थी!

दूसरे दिन, लगभग ग्यारह बजे, भोजन आदि से निवृत्त होकर वह कालेज गया। वहां वह सीधा प्रिंसपल के आफिस में पहुँचा। प्रिंसिपल भुवनेश्वर सहाय लम्बे-चौड़े तथा भारी-भरकम व्यक्ति थे। उनके शरीर के मध्य भाग का विस्तार कुछ अधिक था, और वहां पैण्ट कठिनाई से अटती मालूम पड़ती थी। उनका सांवला चेहरा अपेक्षाकृत छोटा था, पर उसमें रोब और संजीदगी की कमी न थी। दाँतों की पंक्ति अखंडित थी, यद्यपि पान के अत्यधिक व्यवहार से उसका रंग कुछ काला पड़ गया था। उनकी पोशाक ऊपर से नीचे तक खद्दर की थी।

वहां कई अध्यापक प्रिंसिपल के सामने कुर्सियों पर बैठे थे, भुवन बाबू सब से प्रसन्न मुद्रा से बातें कर रहे थे। स्पष्ट ही वे बहुत सन्तुष्ट थे। चन्द्रनाथ के पहुँचने पर उन्होंने सहज प्रसन्नता से उसका स्वागत किया

और फिर उसका परिचय देकर दूसरे अध्यापकों से उसका परिचय कराने लगे।

इन अध्यापकों में एक ने चन्द्रनाथ को आकृष्ट किया। यह थे मिस्टर प्रकाश चन्द्र माथुर, अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष। उपस्थित अध्यापकों में वे सबसे सुन्दर और स्वच्छ सूट पहने थे बातचीत में वे सब से अधिक सचेत और शिष्ट मालूम पड़ते थे, और बात करते हुये पद-पद पर कलहास करना उनका स्वभाव था। प्रिंसिपल ने उनका परिचय देते हुये कहा—'आप बड़े उत्साही युवक हैं, प्रयाग विश्वविद्यालय की सुसंस्कृत सन्तान, आप अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष हैं, शेली और कीट्स के विशेष प्रेमी, अभिनय-कला आचार्य और संगीत के मर्मज्ञ।' भुवन बाबू की प्रसन्न मुद्रा से सब मुस्कराने लगे, स्वयं प्रकाश बाबू हंस पड़े। उत्साह मे उन्होंने चन्द्रनाथ का कर-मर्दन किया।

प्रिंसिपल के कमरे में कुर्सियां कम थीं, अतः, नवागन्तुक अध्यापकों की अधिक संख्या हो जाने पर, पहले के बैठे हुये अध्यापक उठकर चलने लगते। थोड़ी देर में प्रकाशचन्द्र ने उठते हुये चन्द्रनाथ को भी अपने साथ ले लिया। दोनों अध्यापकों के अपने कमरे में पहुंचे। वहां दो लम्बी मेजें एक लाइन में पड़ी थीं और उनके दोनों ओर कुर्सियां थीं। इस समय वहां छै-सात अध्यापक आमने-सामने बैठे आपस में बातें कर रहे थे।

उनके पहुँचते ही एक महाशय ने जो सामने की पंक्ति के प्रायः बीच में बैठे थे उन्मुक्त कंठ से कहा—'आइये प्रकाश बाबू, टाई तो बड़ी जोरदार लगाई है, और सूट कितना बढ़िया है, मालूम होता है जैसे डाइरेक्ट विलायत से मंगवाया गया है।'

'अपने देश में भी बढ़िया चीजें मिल सकती हैं, कमी खोजने वालों की है,' प्रकाश बाबू ने गर्वभरी, विशद मुस्कान के साथ कहा। और फिर उन्होंने चन्द्रनाथ का "हमारे नये मित्र" कह कर परिचय दिया।

बैठने के बाद वे चन्द्रनाथ को उपस्थित अध्यापकों का परिचय देने लगे। एक सज्जन की ओर इंगित करके जो सामने की लाइन में कोने की ओर बैठे थे प्रकाशचन्द्र ने कहा, 'आप हैं प्रोफेसर हरिहरनाथ त्रिपाठी—हम लोग सब आपको स्नेहवश हरीजी कहकर पुकारते हैं—आप हिन्दी के अध्यापक और प्रसिद्ध लेखक हैं; आपने सूर तथा सन्त साहित्य का विशेष अध्ययन किया है। साहित्यिक होने के नाते आप लोग निकट भविष्य में ही एक-दूसरे के विशेष निकट अनुभव करने लगेंगे।' इस पर हरीजी तथा दूसरे अध्यापक हंसने लगे।

'देखिये प्रकाश बाबू कैसा बढ़िया श्लेष, नहीं नहीं जमक (यमक) अलंकार का प्रयोग करते हैं', पूर्ववक्ता ने कहा।

प्रकाशचन्द्र ने उन्हीं को लक्ष्य करके कहा, 'आप हैं प्रसिद्ध पं० सीतानाथ चौबे, नहीं-नहीं चतुर्वेदी'......कहकर वे अर्थपूर्ण निःशब्द हास के साथ रुक गये।

'कहिये, आप चौबे ही कहिये, हमने बुरा मानना छोड़ दिया है; हरीजी के प्रभाव से हम भी निःसंग हुये जा रहे हैं।'

'आप हरीजी के सहयोगी हैं, आपका हास्यरस और पाकशास्त्र पर समान अधिकार है।'

'इतना और जोड़ दीजिये, प्रकाश बाबू, कि हम अपने प्रकाण्ड पाकशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान का उपयोग प्रायः मित्रों के घर पर किया करते हैं।'

सब लोग जोर से हंस पड़े, किन्तु चतुर्वेदी के स्वस्थ, चौड़े मुख पर हंसी का कोई चिन्ह न था।

चन्द्रनाथ और प्रकाशचन्द्र हरीजी के सम्मुख कोने पर थे, [illegible] लाइन में प्रायः बीच में एक युवक बैठा सिगरेट पी रहा था। सामने के लोगों का परिचय समाप्त करके प्रकाशचन्द्र ने उक्त युवक की ओर लक्ष्य किया। वह सम्भवतः इन्हीं की दिशा में देख रहा था। प्रकाश बाबू ने उसका परिचय देते हुये कहा—आप हैं

मिस्टर नरेन्द्र, भौतिकशास्त्र और गणित-विभाग के अध्यक्ष। आपने अपने विषय में बहुत-कुछ अन्वेषण किया है, और कर रहे हैं; आपके कई गवेषणापूर्ण लेख योरपीय जर्नल्स में प्रकाशित हो चुके हैं।

चन्द्रनाथ से आँखें चार होते ही नरेन्द्र ने ज़ोर से दो-तीन कश खींचकर सिगरेट फेंक दिया और कहा—यदि मैं भूलता नहीं तो हम लोग पहले मिल चुके हैं, शायद इलाहाबाद में······

'हां,मुझे भी ऐसा ही याद पड़ता है। आप एक दिन नये कटरे में मेरे मकान पर आये थे।'

'ठीक, ····मैं अपनी एक सिस्टर के विवाह के सिलसिले में गया था।'

'बड़ा अच्छा संयोग हुआ, ' चन्द्रनाथ ने मुस्करा कर कहा।

'बड़ी खुशी का मौका है कि दो पुराने मित्र मिल गये। प्राचीन काल में ऐसे अवसर पर लोग प्रीतिभोज दिया करते थे, ' चतुर्वेदी ने गम्भीर भाव से कहा।

सब लोग हँस पड़े। प्रकाशचन्द्र ने कहा, 'चतुर्वेदीजी बड़ी जल्दी अपनी असलियत प्रकट कर देते हैं, चन्द्रनाथ बाबू सावधान हो जायँ।'

'देखिये, आप हमें हमारे हेड के सामने बदनाम कर रहे हैं; यह उचित नहीं।'

हरीजी अर्धगम्भीर भाव से मुस्करा रहे थे। इस अल्प परिचय में चन्द्रनाथ उनसे बहुत प्रभावित हुआ था। उनके सिर के पिछले भाग में पुराने ढंग के पट्ठे थे, और माथे पर तिलक। मुख पर सन्तुष्ट सौम्यता का भाव था। आगे के बाल कुछ कम घने पर नितान्त काले और चमकीले थे; मूछों की अपेक्षाकृत कम चौड़ी रेखा सम्पूर्ण ऊर्ध्वोष्ठ को छाती हुई किनारों पर ऊपर की ओर कुछ मुड़ी रहती। उनकी कुछ छोटी आँखें प्रायः अर्ध-निमीलित हो जातीं और ध्यान-मग्नता का भ्रम उत्पन्न करतीं। अपनी विस्तृत एवं चौड़ी दशनपंक्ति

से हंसते हुये वे सन्तोष और अनुग्रह का वितरण करते प्रतीत होते। उनकी प्रसन्न गम्भीर मुद्रा दर्शक को बरबस आकृष्ट करती।

थोड़ी देर बाद प्रिंसिपल के चपरासी ने पहुँचकर खबर दी कि "साहब" सबको मीटिंग के लिये "लाइब्रेरी" में बुला रहे हैं। उस ओर चलते हुये चन्द्रनाथ और नरेन्द्र अनायास ही साथ हो गये।

४

मीटिंग खत्म होते-होते नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ से पूछा—आप ठहरे कहां हैं?

'इस समय तो चौक के पास एक धर्मशाला में हूँ।'

'धर्मशाला में? तब तो खाने-पीने का बड़ा कष्ट होगा। आप मेरे घर चलिये न।'

'नहीं, वैसा कोई कष्ट नहीं है, कल सबेरे तक तो होटल में था...'

'सो नहीं, आप को मेरे साथ चलना होगा', कह कर नरेन्द्र ने एक रिक्शावाले को आवाज़ दी। चन्द्रनाथ को विवश होकर उसके साथ रिक्शा पर बैठना पड़ा।

नरेन्द्र देखने में साधारण क़द का व्यक्ति है, पर उसकी गठन में निर्बलता का कोई चिन्ह नहीं है। उसकी गति और बातचीत दोनों में दृढ़ता है।

रिक्शा पर बैठते ही उसने निकाल कर सिगरेट जला लिया। फिर वह चन्द्रनाथ से बातें करने लगा।

'आप कल तक होटल में थे, फिर परिवर्तन क्यों किया?'

चन्द्रनाथ ने मछली-मिश्रित तरकारी की बात बतलाई।

'ओह! तब आप कट्टर "वैजीटेरियन" (निरामिष भोजी) हैं। [illegible] राय में तो मांस खाना कोई बुरी बात नहीं है। सिर्फ बंगाली ही [illegible] हमारे देश की बहुत-सी दूसरी जातियां मांस-मछली खाती हैं, [illegible] विदेशों का तो कुछ कहना ही नहीं। लेकिन इतने भरके लिये

हम उन्हें खराब कहें तो यह घोर असहिष्णुता होगी।'

'सो तो मैं भी सोचता हूँ, किन्तु वैष्णव घर में कुछ वैसे संस्कार बन गये हैं।' फिर उसने कुछ असमंजस से पूछा—क्या आप नियम से ये सब चीजें खाते हैं? हमारे गर्म देश के लिये वे ज़रूरी भी तो नहीं हैं।

नरेन्द्र—आप घबरायें नहीं, मेरी श्रीमती जी भी परम वैष्णव हैं। मुझे कभी इच्छा होती है तो मित्रों के घर चला जाता हूँ। घर पर सिर्फ अण्डे ही ले पाता हूँ, उनसे किसी को कोई सरोकार नहीं रहता।

कुछ देर बाद रिक्शा नरेन्द्र के घर पहुँची। गोधोलिया के चौराहे से कई फर्लांग पश्चिम एक गली में नरेन्द्र का छोटा-सा मकान था। खटखटाने पर एक छै-सात वर्ष की बालिका ने आकर दरवाजा खोला। मकान भीतर से साफ था। दरवाज़े के पास ही नरेन्द्र का बैठक-रूम था जिसके सब दरवाजे भीतर के छोटे आंगन में खुलते थे। बैठक में पहुँचकर चन्द्रनाथ ने बालिका से उसका नाम पूछा। बालिका ने संकोच से मुस्करा कर बतलाया, "सरोजिनी।"

'क्या पढ़ती हो?'

'तीसरे दर्जे की किताब', कहती हुई वह खिसक कर नरेन्द्र के पास पहुँची और बोली, 'बाबू जी, चाय लाऊं?'

'हूँ, दो कप।'

'मुझे चाय की आदत नहीं है', चन्द्रनाथ ने कहा।

'क्यों चाय से भी परहेज़ है?'

'नहीं परहेज़ तो नहीं है……।'

नरेन्द्र ने सरोजिनी से फिर कहा, 'दो कप चाय ले आओ।'

चन्द्रनाथ ने देखा नरेन्द्र की तुलना में वह कितना शिथिल और अदृढ़ है।

सरोजिनी ऊपर चलने लगी। चलते-चलते उसने कनखियों से चन्द्रनाथ को देखा; वह मुस्कुराने लगा। सरोजिनी तेजी से भाग गई।

ऊपर पहुँचकर वह मा से बातें करती सुनाई दी। 'वह कहते हैं हमें चाय की आदत नहीं है लेकिन बाबूजी ने दो कप मंगवाये हैं, तो दो कप का क्या होगा ?'

आंगन के बराबर छोटा-सा दालान था और उसमें ज़ीना जो बैठक से कुछ दूर पड़ता था। कपड़े बदलकर नरेन्द्र स्वयं भी ऊपर चला गया।

चन्द्रनाथ नरेन्द्र के बैठक-कमरे का निरीक्षण करने लगा। कमरा विशेष बड़ा नहीं किन्तु स्वच्छ और सुसज्जित था। फ़र्श पर दरी पड़ी थी। एक ओर मसहरी लगी थी, दूसरी ओर दो मेढक कुर्सियाँ। इनके बीच में एक मेज़ और उसके पास ही दो साधारण कुर्सियाँ थीं। मसहरी के पास एक अल्मारी पुस्तकों से भरी दिखलाई पड़ रही थी। एक छोटी वर्गाकार मेज़ पर, जो अल्मारी और मसहरी के बीच में रक्खी थी, लिखने का सामान अर्थात् पैड, पिन कुशन, गोंददानी, फाउण्टेनपेन की स्याही आदि रक्खे थे।

बैठक की बगल में ही स्नानागार और पाखाना था, चन्द्रनाथ को लघुशंका के लिये उधर जाना पड़ा। उसे यह जानकर सन्तोष हुआ कि पाखाना फ्लैश का है। बाद में उसे मालूम हुआ कि काशी में यह सुविधा घर-घर प्राप्त है। पास के स्नान गृह में साबुन, तेल, पाउडर का डिब्बा, दांतों का ब्रश, टूथपेस्ट आदि करीने से रक्खे थे। चन्द्रनाथ इनमें से कई चीज़ों का अनभ्यस्त था, वह नरेन्द्र की आधुनिक रुचि से चमत्कृत हुआ।

दो क्षण में उसने देख लिया कि वे चीजें कितनी दूर से तैयार होकर आई हैं; टूथ ब्रश इंगलैण्ड से, पाउडर अमरीका से, दर्पण बेल्जियम से; अनजाने ही नरेन्द्र सिर्फ भारत का नहीं, विश्व का नागरिक बन गया है। उसके आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध दुनिया के देश-देश में हो रहा है।

थोड़ी देर में नरेन्द्र ऊपर से उतर कर आया, एक बड़ी प्लेट में

चाय के दो प्याले और कुछ मिठाई लिये हुये। चन्द्रनाथ ने बड़े संकोच से चाय ग्रहण की।

चाय पीते हुये कुछ मिनट बीत गये। नरेन्द्र किंचित् अधैर्य और उत्सुकता से बार-बार भीतर ज़ीने की दिशा में देख रहा था।

पांच-सात मिनट में एक तश्तरी में कुछ नमकीन लिये हुये सरोजिनी उतरकर आई। नरेन्द्र ने तश्तरी लेते हुये असन्तोष के स्वर में कहा—क्यों, माता जी खुद नहीं आईं?

सरोजिनी ने धीमे स्वर में कहा—नहीं।

कुछ मिनट और बीत गये। स्पष्ट ही नरेन्द्र की अप्रसन्नता बढ़ रही थी। कई बार भीतर की ओर निष्फल दृष्टिपात कर चुकने के बाद बोला—भारतीय स्त्रियों में पर्दे का संस्कार इतना दृढ़ हो गया है कि छुड़ाने से भी नहीं छूटता। मैंने हजार बार कहा है कि तुम्हें मेरे किसी मित्र से पर्दा करने की ज़रूरत नहीं है।

चन्द्रनाथ—भाई, मैं आज पहली बार आया हूँ, इसलिये संकोच स्वाभाविक है। यों भी स्त्रियों में संकोच की मात्रा कुछ अधिक होती है।

'वही तो, यह संकोच अनावश्यक है, और स्त्रियों के लिये हानिकर भी। वे अक्सर घर ही में रहती हैं इसलिए उन्हें तो और भी कोशिश करनी चाहिए कि आनेवाले अधिक-से-अधिक लोगों से परिचित हो जायँ। फिर यहां तो सब पढ़े-लिखे अच्छे लोग ही आते हैं।'

'आपके ऐसे विचार हैं, दूसरे पढ़े-लिखे पति शायद इसे पसन्द न करें।'

कुछ रुक कर नरेन्द्र ने कहा—भारतीय स्त्रियों का प्रेम भी दुर्निवार होता है, पति चाहे भी तो उससे छुटकारा नहीं पा सकता। दूसरे असंख्य लोगों में वे अभिरुचि ले ही नहीं सकतीं।

चन्द्रनाथ चुप रह गया। यह नरेन्द्र कैसा व्यक्ति है, वह अपनी

...तना खीझा हुआ क्यों है ? और उस ...ष है ? वह ऊपर की मंजिल में निकट ... जानने को व्यग्र हो उठा। अकारण ही उसे ... हृदय में सहानुभूति का भाव जगने लगा।

सरोजिनी वहीं थी; वह मेज के पास खड़ी उसके एक पाये को नन्हीं हथेलियों से थपथपा रही थी। चन्द्रनाथ उसे ध्यान से देखने लगा। उसका रंग नरेन्द्र से उजला है, आंखें विशेष आकर्षक; किञ्चित् गोल चेहरे पर भोलेपन का भाव है। हाथ-पैर नरेन्द्र की तुलना में अधिक मांसल और कोमल हैं। उसे देखता हुआ चन्द्रनाथ अटकल लड़ा रहा था कि उसकी मा कैसी होगी। कुछ देर बाद ऊपर एक बच्चे के रोने की आवाज़ आई और सरोजिनी यह कहती हुई कि मुनिया जग गई, ऊपर चली गई।

कालेज से आये उन्हें एक-डेढ घंटा बीत चुका था और अब पांच बज रहे थे। इतनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद नरेन्द्र की पत्नी उतर कर नीचे आई। उनकी गोद में छोटी बच्ची थी। अवस्था ढाई-तीन मास होगी। काजल से काली गोल आँखें, गुलाबी मांसल गाल, कुछ खुला हुआ अंग्रेजी के 'ओ' जैसा मुख-सम्पुट, और सामने की दिशा में ताकती चकित स्थिर दृष्टि; मा की बाँई बाँह पर कन्धे से कुछ ऊँची टिकी हुई, छोटी गोल छींट का फ्राक पहने हुये—बच्ची बिल्कुल गुड़िया-सी जान पड़ती थी। चन्द्रनाथ की दृष्टि पहले बच्ची पर गई, फिर उसने उसकी मा का नमस्ते ग्रहण किया।

वह आकर कमरे में खड़ी हो गई। क्षण भर प्रतीक्षा करके चन्द्र-...थ ने उनसे कहा—बैठिये।

उसने अब इस नारी को जिसे लक्ष्य कर नरेन्द्र ने इतनी बातें कहीं ...ीं, कुछ अधिक ध्यान से देखा। उसके चेहरे पर किसी प्रकार की ...खी या चंचलता न थी, न यौवन की श्लक्ष्ण कान्ति ही थी; उसमें ...बौद्धिक तेज भी न था जो आत्मनिर्भर स्वतन्त्र व्यक्तित्व की घोषणा

करता है। उसकी एक ही विशेषता
बच्ची को देखने-हिलाने की क्रिया में स
चन्द्रनाथ को लगा कि नरेन्द्र की वधू हो
वयस्क मालूम पड़ती है, कुछ कम सचेत, और कम आधुनिक।

नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ का नाम सूचित करने के बाद कहा—इलाहाबाद में बहिन की शादी के मौके पर आप ही की पत्नी का देहान्त हो गया था।

'हां, मुझे याद है। हम सब को सुनकर बहुत रंज हुआ था।' कुछ रुक कर, 'स्यात् बच्चा होने में उनकी मृत्यु हुई थी?'

चन्द्रनाथ ने सिर हिलाकर 'हूँ' कर दिया।

'फिर बच्चे का क्या हुआ, अच्छी तरह तो है न?'

'हां, बच्चा बच गया था और अब डेढ़-दो बरस का है।'

'वह है किसके पास, दूसरी मा के?'

'नहीं, उसका पालन-पोषण मेरी भाभी ने किया है।'

'आपने अभी तक शादी नहीं की?'

'नहीं।' चन्द्रनाथ के कहने का ढंग ऐसा था कि वह फिर आगे कुछ न पूछ सकीं। कुछ देर में चन्द्रनाथ ने नरेन्द्र से कहा—अब मुझे चलने की आज्ञा मिलनी चाहिये।

'कहां, क्या यहां भोजन नहीं करेंगे?'

'अरे भोजन की ऐसी कौन ज़रूरत है, इतना तो नाश्ता कर चुका।'

'वाह! नाश्ता और भोजन क्या एक ही बात है, क्यों साबो?'

'कभी नहीं, भला अपना घर रहते क्या बाजार में भोजन करेंगे, यह ठीक नहीं।'

यह अपने घर की बात नरेन्द्र न कह सका था। किन्तु पत्नी की इस बात से जैसे उसे साहस मिल गया। उसने कहा—ठीक यही है

नरेन्द्र—हाँ। आया जाय; फिर मकान ढूंढने की

चन्द्रनाथ—उसकी मा न्दो-एक मित्रों से कहूँगा कि खोजने में

फिर बुलातीं, यदि सचम

नरेन्द्र— घंटे बाद एक युवक ने प्रवेश किया। 'कौन मदन, आज कैसे भूल पड़े, कुशल तो है?' नरेन्द्र ने कहा।

'कुशल को हमें क्या होगा, चल रहा है। आपका कालेज खुल गया?'

'हां; ट्यूशन चल रहे हैं न?'

'हूँ।' और फिर वह जैसे अपने में खो गया।

नरेन्द्र दोनों का परिचय कराने लगा—आप हैं हमारे संस्कृत के नये अध्यापक, मिस्टर चन्द्रनाथ, प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम० ए० किया है; और आप हैं मेरे मित्र मदनमोहन प्रसाद एम० ए०, एल० एल० बी०, यहीं के विश्वविद्यालय की सन्तान हैं।

मदन ने यांत्रिक ढंग से अंग्रेजी में कहा—'आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।' चन्द्रनाथ मुस्कुराने के अतिरिक्त कोई उत्तर न दे सका।

'तब चलें', मदन ने थोड़ी ही देर बाद कहा।

'अरे, ऐसी जल्दी क्या है! तुमने चन्द्रनाथ बाबू से विशेष परिचय नहीं किया। बड़े सहृदय हैं, कवि हैं।'

मदन सहसा उत्फुल्ल होकर बोला—वह ट्यूशन फिर मिल गई है।

'क्या विंध्येश्वरी बाबू के यहां?'

'हां, अभी वहीं से आ रहा हूँ।'

'अच्छा, बधाई; लेकिन मैं तुम से फिर कहूँगा कि अपना वह मूर्खतापूर्ण "एटैचमेण्ट" (अनुराग) खत्म कर दो। इससे सिवाय पश्चात्ताप और परेशानी के कुछ हाथ न लगेगा।'

'आखिर मेरे बिना काम नहीं चला, तीन-चार दिन पहले बुलाने आदमी भेजा था,' मदन ने हंसते हुये कहा।

'तुम इससे खुश होते हो मेरा
बेवकूफ बना रहे हैं। यदि मैं तुम्हारी ज
न जाता।,

मदन अभीतक मुख से मुस्करा रहा था। बोल
लगाता, आखिर मुझे बेवकूफ बना कर वह लोग क्या ले लेंगे ? मेरा मन-बहलाव होता है, यह कम फायदा है !

'ठीक है, तुम्हारे मर्ज़ का कोई इलाज नहीं है'।

मदन के चले जाने पर नरेन्द्र चन्द्रनाथ से बोला—ऐसे खब्ती आदमी भी कम देखे होंगे, हमेशा एक ही धुन में रहता है।

चन्द्रनाथ—प्रेमी को आप खब्ती क्यों कहते हैं।

नरेन्द्र —यह भी कोई प्रेम है, घर में बीबी है, बच्चा है, और आप एक कुमारी लड़की के पीछे पागल हैं। उधर उस लड़की की शादी की बातचीत चल रही है।

'सचमुच ? क्या मदन बाबू विवाहित हैं ?'

'जी हां, तभी तो कहता हूँ।'

'क्या उस लड़की के माता-पिता यह नहीं जानते ?'

'मा को कुछ-कुछ आभास है इस लिये कुछ दिनों को इनका घर में आना बन्द कर दिया गया था। इधर यह कह रहे हैं कि यह फिर पढ़ाने को नियुक्त हो गये हैं।'

'स्वयं उस लड़की का रुख क्या है ?'

'मदन तो कहता है वह भी उसमें उतनी ही अनुरक्त है, पर मुझे विश्वास नहीं। ऐसे निकम्मे व्यक्ति से कौन लड़की प्रेम करेगी ? और फिर यह जानते हुए कि यह विवाहित हैं। खुद इनकी पत्नी इनकी बहुत कम पर्वाह करती है।'

चन्द्रनाथ असमंजस के भाव से सुन रहा था।

नरेन्द्र ने कहा—मदन बाबू अक्षरशः उस लड़की पर जान देते हैं।

चन्द्रनाथ—लड़की को यह पढ़ाते हैं।

नरेन्द्र—हाँ।

चन्द्रनाथ—उसकी मा को यह उचित नहीं था कि जानते हुए इन्हें फिर बुलातीं, यदि सचमुच वे इस लगाव से सहमत नहीं हैं।

नरेन्द्र—आप नहीं जानते, स्त्रियाँ बड़ी धूर्त्त होती हैं। माधुरी (उस लड़की का यही नाम है) की मा तो बहुत ही चालाक हैं। वे जानती हैं कि लड़कियों को पढ़ाने के लिये मदनमोहन जैसा सस्ता और मिहनती शिक्षक उन्हें दूसरा कोई नहीं मिलेगा।

'लेकिन उन्हें लड़कियों के चरित्र का भी तो ध्यान रखना चाहिए।'

'इन सब बातों का वे काफ़ी ध्यान रखती हैं; शायद आर्थिक स्थिति के कारण ही वे इन्हें रक्खे हुए हैं।'

कुछ देर बाद नरेन्द्र ने प्रस्ताव किया—चलो जरा चौक तक घूम आयें। अभी खाना तैयार होने में काफ़ी देर है।

चन्द्रनाथ ने कहा—चलिये।

दोनों निकल कर चले। गोधोलिया के चौराहे के पास आते-आते चन्द्रनाथ ने संकेत से वह होटल बताया जहाँ वह ठहरा था। नरेन्द्र ने कहा—'अच्छा मैं इस होटल को आज ही देख रहा हूँ। शायद हाल ही में खुला है।' धीरे-धीरे चलकर वे चौक के चौराहे के पास पहुँचे। वहाँ नरेन्द्र ने बाँई ओर एक गली का संकेत करके कहा—कभी इधर जाने का मौक़ा भी हुआ है ?

'नहीं,' चन्द्रनाथ ने सहज भाव से कहा, 'अब से पहले एक बार इंटरव्यू में आया था और एक बार उस वर्ष जब प्रयाग-विश्वविद्यालय में दाखिल हुआ था; तब बनारस के घाटों और विश्वविद्यालय की ही विशेष सैर की थी।'

नरेन्द्र हंसने लगा। कुछ देर बाजार में घूमने के बाद बोला—चलिये, रिक्शा लेकर आप की धर्मशाला चलें।

'किस लिए ?' चन्द्रनाथ से अकृत्रिम असमंजस के भाव से कहा।

'आपका सामान घर ले चलना है न; श्रीमती जी का आदेश भूल गए।'

'देखिए मैं नहीं चाहता कि आप मेरे लिए इतनी असुविधा उठायें।'

'अरे इसमें मुझे क्या असुविधा है। जिन्हें असुविधा है उन्हीं का तो हुक्म है।'

रात को भोजन करने नरेन्द्र चन्द्रनाथ को ऊपर ही लिवा गया। नीचे के दालान के ऊपर रसोईघर था और उससे लगभग सटा सोने का कमरा जो बैठक के ऊपर बना था। कमरे की दूसरी बग़ल में छोटी-सी छत थी। गर्मी के कारण वहीं भोजन कराने का प्रबन्ध किया गया था।

कभी सरोजिनी और कभी नरेन्द्र की पत्नी स्वयं पूड़ी-तरकारी आदि परोसने आ रही थीं। चन्द्रनाथ संकोच से गड़ा जा रहा था।

भोजन के बाद, उसके नीचे जाने की इच्छा प्रकट करने पर, चन्द्रनाथ से नरेन्द्र ने कहा—भला इस गर्मी में नीचे चल कर क्या होगा; यहीं सोने का प्रबन्ध किया जायगा।

'और वे कहाँ सोयेंगी? आप लोगों को कष्ट नहीं होगा?'

'अरे नहीं, उन्हें कमरे में सोने की आदत है; कमरा काफी हवादार है।'

कुछ देर बाद नरेन्द्र की पत्नी भी नरेन्द्र के कहने से छतपर आकर कुर्सी पर बैठ गई। छोटी बची सो गई थी।

'सुनती हो, चन्द्रनाथ बाबू को मकान नहीं मिल रहा है। कुछ मदद कर सकती हो?'

सावित्री सुनकर कुछ देर चुप रही, फिर बोली—इस सवाल का जवाब मैं कल दूंगी।

सोते समय चन्द्रनाथ सोच रहा था—आज का दिन कैसा भरा-भरा रहा है। कैसी विचित्र यह दुनिया है, कितनी तरह के नर-नारी यहां

हैं। भुवन बाबू, प्रकाशचन्द्र, चतुर्वेदी और हरीजी……और यह नरेन्द्र और मदन। नरेन्द्र भी बड़ा विचित्र व्यक्ति है, पत्नी के प्रति उसका कैसा कड़ा भाव है, यद्यपि सामने विशेष कड़ी बातें नहीं करता। और मेरे ऊपर उसकी इतनी अकारण कृपा क्यों है? सावित्री भी बड़ी स्नेहमय है, क्यों नरेन्द्र उसे प्यार नहीं कर सकता! और फिर वह सोचने लगा कि उसकी सुशीला भी तो उतनी ही स्निग्ध थी, और सावित्री से अधिक स्वरूपवती; क्यों उसने उसे पर्याप्त प्यार नहीं किया? और कैसे सावित्री नरेन्द्र की उपेक्षा को सहती है! या वह उसे देखती ही नहीं? कितनी तत्परता से वह नरेन्द्र के घर का सारा काम, उसकी और उसके मित्रों की खातिर, करती है।

नरेन्द्र उसकी बगल में ही सोया हुआ है; क्यों उसने कमरे में जाकर सोना पसन्द नहीं किया? चन्द्रनाथ ने स्वयं अनुरोध किया था।

और फिर उसे चतुर्वेदी का परिहास याद आने लगा। क्या इस संसार में इतने मुक्त भाव से परिहास करना सम्भव है?

हरीजी देखने में बड़े स्निग्ध और भव्य मालूम पड़ते हैं। ऐसे लोग भी दुनिया में अभी तक हैं। क्या सचमुच भक्ति और साधना में कोई शक्ति है? क्या सन्तों की वाणी में वस्तुतः कोई ऐसा तत्व है?

५

अगले दिन जब नरेन्द्र और चन्द्रनाथ कालेज से लौटे तो सावित्री कहीं जाने को तैयार बैठी थी। अभी तक न चले जाने का कारण यह भी था कि उन लोगों को चाय और जलपान देना था। अंगीठी पर पानी उबल रहा था और सब चीज़ें तैयार थीं। जलपान कराके वह शीघ्र ही दाई (महरी) के साथ चल दी।

नरेन्द्र और चन्द्रनाथ अकेले रह गये; उनके अनुरोध करने पर भी सरोजिनी ने रुकना स्वीकार नहीं किया।

'आपको पत्नी बड़ी भली मिली हैं, आपके आराम का बहुत खयाल रखती हैं', चन्द्रनाथ ने कहा।

'हूँ, अच्छी हैं, मैं कृतज्ञ अनुभव करता हूँ।'

'विशुद्ध भारतीय स्त्री हैं।'

'इसका मतलब ? क्या बाहर की स्त्रियाँ पतियों का काम नहीं करतीं !'

'शायद उनका प्रेम इतना गहरा और स्थायी नहीं होता, न वे इतना अपने को भूल ही सकती हैं।'

'यह आपका खयाल है ; अपने को न कोई भूलता है, न भूल सकता है। मनुष्य के सारे काम अपने ही रक्षण के लिये होते हैं।'

'क्या आप कहना चाहते हैं कि जीवन में निःस्वार्थ प्रेम और त्याग है ही नहीं ?'

'बिल्कुल यही; दुनिया में कोई पूर्णतया क्या अंशतः भी निःस्वार्थ नहीं है। यदि कल से मैं श्रीमती जी के आत्म-रक्षण और आराम का साधन न रहूँ तो उनका तथा-कथित प्रेम और त्याग दो दिन में काफ़ूर हो जायगा।'

'इसके विपरीत मुझे लगता है कि भारतीय पत्नी का प्रेम पति के प्रतिदान की अपेक्षा कम करता है। स्वयं आपका जीवन इसका उदाहरण है।'

'आपका यह खयाल गलत है। कोई भी पत्नी जो भारतीय स्त्री की तरह स्वतंत्र अर्जन नहीं करती अपने पति से प्रेम करेगी क्योंकि वह उसकी ज़िन्दगी की सब से बड़ी समस्या, जीविका के प्रश्न को हल कर देता है। पति को कष्ट होने पर वह दुःखी होगी इसलिये नहीं कि उससे उसके प्रति निःस्वार्थ लगाव है, बल्कि इसलिये कि उसके कष्ट से उसकी अपनी जीवनचर्या में विघ्न पड़ने की सम्भावना है।

'क्या सचमुच आप सोचते हैं कि स्त्री इतना तर्क करती है ?'

'नहीं, लेकिन उसका दिमाग़ वैसे "कण्डिशन" हो जाता है।'

कुछ रुक कर, 'यदि निःस्वार्थ प्रेम भारतीय नारी का स्वभाव होता तो मदन की पत्नी उससे ऐसा व्यवहार न रखतीं।'

'कैसा व्यवहार रखती हैं वे?'

'व्यवहार पूछते हो...वह मदन के पास तक रहना पसन्द नहीं करतीं। महीने में पचीस दिन अपने मायके में रहती हैं, और मदन बाबू जैसा चाहते हैं उसका ठीक उलटा काम करतीं हैं।'

'शायद उन्हें मदन बाबू के प्रेम-सम्बन्ध का पता हो गया है।'

'सिर्फ यही नहीं, वे यह भी जानती हैं कि अपनी जीविका के लिये मैं मदन बाबू पर निर्भर नहीं हूँ। उनके पिताजी काफ़ी धनी आदमी हैं।'

चन्द्रनाथ ख़ामोश रहा।

'अब आप समझ सकते हैं कि भारतीय स्त्री जीव-प्रकृति के सामान्य नियमों का अपवाद नहीं है। यदि आप अपनी स्त्री का भरण-पोषण करते हैं और समय-समय पर उसकी दूसरी ज़रूरतें पूरी कर देते हैं तो कोई कारण नहीं कि वह आपसे सन्तुष्ट न हो।'

'शायद मनुष्य की जरूरतें सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं हैं,' चन्द्रनाथ ने संकुचित स्वर में कहा।

'ज्यादातर लोगों की, विशेषतः स्त्रियों की, यही ज़रूरतें होती हैं। मुझे इसका खूब अनुभव है। और जरूरतें कृत्रिम हैं; यही मुख्य हैं।'

'ये जरूरतें तो दूसरी तरह भी पूरी हो सकती हैं, स्त्री वेश्यावृत्ति भी कर सकती है।'

'वेश्यावृत्ति करना सहल नहीं है। और फिर उसे उतना खराब नहीं माना जाय? विवाह भी तो एक तरह की वेश्यावृत्ति है। फर्क यही है कि उसमें औरत के शरीर पर एक ही पुरुष का अधिकार होता है, और उसके भरण-पोषण का भार भी एक ही के जिम्मे होता है।'

'मैं तो मानता आया हूँ कि प्रेम की भूख साधारण ज़रूरतों से ऊपर है, उसका कोई उच्चतर आधार है।'

'यह सब "मून शाइन" है काव्य की कल्पना, जीवन-संग्राम में ऐसे प्रेम का कोई स्थान नहीं हैं; इसीलिये वह जीव-प्रकृति का आवश्यक तत्व भी नहीं है।'

नरेन्द्र किसी काम से ऊपर गया। चन्द्रनाथ पीछे एक अलमारी खोल कर उसकी पुस्तकें टटोलने लगा। देखा कि गणित और भौतिकशास्त्र के अतिरिक्त जीव-विज्ञान तथा नर-विज्ञान-संबन्धी पुस्तकों का भी अच्छा संग्रह है......"ओरिजिन आफ स्पेशीज़" (जीवयोनियों की उत्पत्ति) "द सायन्स आफ लाइफ" (जीवन-विज्ञान), "एनीमल बायालॉजी" (जीव-विज्ञान), "लाइफ ऐन्ड इवोल्यूशन" (जीवन और विकास), "मारल्स इन इवोल्यूशन" (नैतिक विकास), इत्यादि। अन्तिम दो पुस्तकें वह उठाकर ले आया।

नरेन्द्र ऊपर से चाय का सामान ला रहा था। आकर उसने स्टोव जलाया।

'आपका आत्मा में विश्वास है कि नहीं, नरेन्द्र बाबू?' चन्द्रनाथ ने प्रश्न किया।

'नहीं, मैं मानता हूँ कि जीवन विशेष ढंग से संगठित "मैटर" (जड़तत्व) का धर्म है। मैं समझता हूँ कि जीव-विज्ञान के अध्ययन से कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इस नतीजे पर पहुँचेगा।'

'ऐसा। क्या जीवयोनियों के रहस्यमय व्यापार किसी ऐसी शक्ति का संकेत नहीं करते जो जड़ से भिन्न है?'

'इसके विपरीत,' नरेन्द्र ने कहा, 'जीव-जगत के व्यापारों का ब्योरा पढ़ते समय लगता है जिसे हम जिन्दगी कहते हैं वह शरीर की हरकतों का समुदाय मात्र है; "प्रोटोप्लाज़म" का स्पन्दन-विशेष, बड़े-बड़े जन्तुओं में खून की गर्मी और स्नायु मण्डल का खेल... आत्मा नाम की चीज़ का तो पता ही नहीं लगता।'

कुछ रुक कर कहा—"मैटर" से अलग आत्मा नाम की चीज़

नहीं है यह तो प्रयोग से सिद्ध किया जा सकता है।

चन्द्रनाथ—सच ! क्या ऐसा प्रयोग किया जा सकता है !

नरेन्द्र—एक बार मेरे एक दोस्त ने एक प्रयोग दिखाया था... तभी से मुझे प्राणि-शास्त्र में विशेष दिलचस्पी हो गई। प्रयोग बिलकुल सीधा है, लेकिन उसे करने के लिये एक अच्छा "माइक्रास्कोप" (अणु-वीक्षक) और कुछ महीन औज़ार चाहियें जिससे एक सूक्ष्म कीटाणु को काटा जा सके।

चन्द्रनाथ—छिः हत्या करनी पड़ेगी, यह भी कोई प्रयोग है।

नरेन्द्र—(हँसकर)—बायालॉजी के प्रयोग तो ऐसे होते ही हैं। न जाने ये लोग कितने मेंढकों को मारते हैं। चलकर देखो, खास मालवीयजी के विश्व-विद्यालय में हत्या के लिये किस तरह मेंढक पाले जाते हैं।.......लेकिन जिस प्रयोग का मैं जिक्र कर रहा हूँ उसमें हत्या नहीं होती, कटकर भी जन्तु ज़िन्दा रहता है।

'कौन-सा जन्तु है वह !'

'अमीबा प्रोटियस ; मैं चित्र बनाकर दिखा देता हूँ, पहले चाय पी लें।' कहकर उसने उबले पानी को केतली में करके उसमें चाय की पत्तियाँ छोड़ दीं। चाय तैयार करके एक प्याला चन्द्रनाथ को दिया, दूसरे में स्वयं पीते-पीते बोला—जानते हो कुछ बहुत छोटे जीवाणु होते हैं जो एक सीमा तक बढ़कर चुपचाप अपने को दो हिस्सों में बाँट लेते हैं जिससे एक के बदले दो जन्तु बन जाते हैं।

'सचमुच !'

'जी हाँ, इसे आप क्या कहेंगे ? कहाँ से सहसा एक आत्मा दो में परिणत हो जाती है !'

'परिस्थिति विचित्र ज़रूर है।'

'मेरे मित्र ने जो प्रयोग दिखाया वह और भी अजीब था। उन्होंने एक अमीबा प्रोटियस को बड़ी होशियारी से दो टुकड़ों में बाँट दिया—मैंने खुद माइक्रॉस्कोप की मदद से यह क्रिया देखी। फल यह

हुआ कि एक के बदले दो जीवित जन्तु दिखाई देने लगे, कुछ इस तरह के,' कहकर नरेन्द्र ने चित्र बनाया। 'देखो इस मध्य बिन्दु को "न्यूक्लियस" (केन्द्र) कहते है। जिन मित्र का मैं जिक्र कर रहा हूँ उन्होंने अमीवा को इस तरह काटा कि यह न्यूक्लियस एक तरफ रह गया.......दूसरा टुकडा बिना न्यूक्लियस का रह गया। दोनों टुकड़ों को अलग-अलग पानी में रख दिया गया। देखा गया कि तीन दिन बाद न्यूक्लियस वाला टुकडा जीवित रहा और दूसरा मर गया।

चन्द्रनाथ—क्या न्यूक्लियस ही जीवात्मा या जीवन-शक्ति का अधिष्ठान होता है?

नरेन्द्र—लेकिन प्रश्न यह है कि तब दूसरा टुकड़ा ज़िन्दा क्यों रहता है? यदि उसमें भी आत्मा है तो उसे पहले टुकड़े की तरह लगातार जीवित रहना चाहिये और यदि आत्मा नहीं है तो तुरन्त मर जाना चाहिये।

चन्द्रनाथ—ऐसा होता नहीं।

नरेन्द्र—साफ निष्कर्ष यह है कि जीवन "मैटर" का धर्म है। जब मैटर का एक खास संगठन होता है तो उसमें जान पड़ जाती है। दूसरे टुकड़े के मैटर में कुछ कमी रह जाती है जिसके कारण वह खाना नहीं पचा पाता और मल बाहर नहीं फेंक पाता। इसी लिये वह मर जाता है।......चाय और लोगे?

'नहीं, मैं अब नहीं लूंगा।'

'जानते हो, हमारा और दूसरे बड़े जन्तुओं का शरीर इसी तरह न्यूक्लियस वाले लाखों-करोड़ों सेल्स (घटकों) का समुदाय है। हम एक व्यक्ति नहीं, करोड़ों व्यक्तियों का समूह हैं।'

चन्द्रनाथ चिन्तन की मुद्रा में था।

'छोड़ो इन पचड़ों को,' नरेन्द्र ने दूसरा प्याला खत्म करते हुये कहा, 'जिन्दगी बड़ी रहस्यमय है। उसे हम कभी नहीं समझ सकते। कोई

जीवशास्त्री नहीं जानता कि कैसे प्रोटोप्लाज़्म में जान आ जाती है। लेकिन यह मेरा विश्वास है कि ज़िन्दगी कहीं स्वर्ग से उड़करनहीं आती, है सब मैटर का ही खेल।......इसीलिये मेरा मन्तव्य है कि खाओ, पिओ, और बच्चे पैदा करो।......तुम शतरंज खेलते हो!'

'नहीं, मैं यह खेल नहीं जानता।'

'अरे! शतरंज एकमात्र शाही खेल है, हर दिमाग़दार आदमी को खेलना चाहिये। क्या कहूं, आस-पास कोई अच्छा खिलाड़ी ही नहीं है जिससे मन बहले।...... मैं तुम्हें सिखा दूंगा, यू विल लर्न इट इन नो टाइम, कम ऑन।'

नरेन्द्र ने मोहरों का डिब्बा उठा कर मेज पर बिसात बिछाई और चन्द्रनाथ को मोहरों की चालें समझानी शुरू कर दीं।

पैदल, फ़ील, रुख आदि की चालें समझा कर कहा—'घोड़े की चाल ही जरा बेढब है, आठ घरों पर कूद सकता है; यह देखो।' उसने काले रंग के कोठों पर पैदल रख कर सफेद घोड़े की चालें संकेतित कीं। और फिर मात का अर्थ, और उसके दो-एक नक़्शे भी समझा दिये।

'अब सिर्फ़ यह ज़रूरी रह गया है कि तुम अच्छे खिलाड़ियों को खेलते हुये ध्यान से देखो', नरेन्द्र ने मोहरे समेटते हुए कहा।

रात को जब दोनो भोजन करने बैठे तो सावित्री ने कहा—अगर मिठाई खिलाने का वादा करें तो खुशखबरी सुनाऊँ।

नरेन्द्र ने पूछा—क्या खुशखबरी है, ज़रा सुनें तो।

'मैंने आपके मित्र के लिये मकान की टिप्पस भिड़ाई है।'

'क्या कोई मकान खाली है?'

'खाली नहीं है तो क्या, वह चाहें तो मकान मिल सकता है। सिर्फ मकान ही नहीं और भी बहुत-कुछ।'

'और क्या मकानवाली, फिर तो इन्हें यही एक कमी रह जायगी।'

'हाँ-हाँ वह भी, इनके राज़ी होने की देर है।'

'ना भई मुझे ऐसा मकान नहीं चाहिये', चन्द्रनाथ ने मुस्करा कर कहा।

सावित्री—मैं हँसी नहीं कर रही हूँ। विन्ध्येश्वरी बाबू का एक मकान हाल ही में खाली हुआ है। वे उसे किराये पर नहीं देना चाहते थे क्योंकि बड़ी लड़की की शादी होने की उम्मीद है, पर आपको दे देंगे।

नरेन्द्र—और लड़की की शादी भी इन्हीं से कर देंगे। तब मकान खाली रखने का सवाल ही नहीं उठेगा।

'नहीं जी, शादी की बातचीत तो इलाहाबाद से चल रही है। हाँ, अगर यह चाहें तो छोटी लड़की के सम्बन्ध में बात की जा सकती है।'

'अच्छा! यहाँ तक मामला पहुँच चुका है। तब तो भाई चन्द्रनाथ, मैं तुम्हें बधाई दिये बिना नहीं रह सकता।'

चन्द्रनाथ हँसने लगा।

'आप तो हँसी समझते हैं,' सावित्री ने उलाहने के स्वर में पति से कहा—'मालती की दादी खुद ही मुझसे इनके बारे में पूछ रही थीं।'

'ज़रूर पूछ रही होंगी, लड़की की दादी हैं या हँसी-ठट्ठा; और फिर यदि तुम्हें चन्द्रनाथ बाबू की शादी में दिलचस्पी हो तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है।'

सावित्री चुप हो गई। नरेन्द्र ने जैसे उसके उत्साह पर पानी डाल दिया। सावित्री में उतनी अधिक बुद्धि नहीं है पर इसीलिए क्या नरेन्द्र को उससे ऐसी अवज्ञापूर्ण हँसी करनी चाहिये? यदि विवाह से कम गम्भीर प्रसंग होता तो चन्द्रनाथ सावित्री के प्रस्ताव को स्वीकार करके भी उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करता। किन्तु इस मामले में वह लाचार था।

६

दो ही दिन बाद चन्द्रनाथ नये मकान में दाखिल हो गया। मकान-मालिक की ही कृपा से उसे एक बूढ़ा नौकर भी काम करने को मिल गया।

चन्द्रनाथ का काशी-प्रवेश कुछ असाधारण रहा था। जब वह होटल में ठहरा था तो सोचता था कि इस गन्दे और अनिश्चित वातावरण से कब छुटकारा होगा। फिर वह नरेन्द्र के घर पहुँच गया, वहाँ रहना उसे एक साथ ही स्वाभाविक और अस्वाभाविक लगा था; स्वाभाविक इसलिये कि उसका वातावरण साधारण घरों से विशेष भिन्न न था, और अस्वाभाविक इसलिये कि उसका उस घर से कोई नैसर्गिक सम्बन्ध न था। उसे वहाँ से जुदा होना कुछ बुरा लगा, और उसने पाया कि नये घर में रहना उसे उतना भी स्वाभाविक नहीं लग रहा है।

मकान में ऊपर एक ओर बराबर दो कमरे हैं, और दूसरी ओर एक रसोईघर जिस पर टीन पड़ी है, दोनो हिस्से एक छज्जे से जुड़े हैं। कमरों के नीचे भीतर की ओर ही एक लम्बी बैठक है और उसके सामने छोटा-सा आँगन जिसके सिरे पर, रसोई घर के नीचे, पाखाना और स्नानघर है। आँगन के बगल से बाहर जाने का रास्ता है।

चन्द्रनाथ प्रायः ऊपर ही रहना पसन्द करता है। छुट्टी के दिन जब वहाँ दोपहर में कुछ अधिक गर्मी हो जाती है, वह नीचे बैठक में चला आता है, या फिर भोजन करके नरेन्द्र के घर ही चला जाता है।

नरेन्द्र का घर वहाँ से ज़्यादा दूर नहीं है। मकान-मालिक का घर भी निकट ही है, किन्तु ये दोनों घर दो भिन्न दिशाओं में पड़ते हैं। एक तीसरी दिशा से चौक जानेवाली सड़क को रास्ता जाता है। पहले दो मार्गों में किसी से कालेज जाया जा सकता है।

प्रारम्भ में कई दिन तक वह प्रायः नित्य ही नरेन्द्र के घर गया; कालेज का जाना-आना भी उधर ही से होता। धीरे-धीरे इस क्रम में शिथिलता आने लगी। नरेन्द्र के घर पहुँचकर चाय पिये बिना छुटकारा न होता, और उसे लगता कि वह सावित्री के गृहकार्य में अनुचित वृद्धि कर देता है। यों भी उसे संकोच लगता। अतः धीरे-धीरे उसने वहाँ पहुँचना कम कर दिया।

किन्तु प्रारम्भ के इस आवागमन से एक लाभ हुआ—उसकी सरोजिनी से बड़ी घनिष्ठ मैत्री हो गई। चन्द्रनाथ कभी-कभी उसे अपने घर भी ले आता; घर पर वह प्रायः उसके लिये कुछ खिलौने जुटाकर रखता जिनका सरोजिनी, वहाँ या अपने घर ले जाकर, स्वच्छन्द उपभोग करती। उसके घर पर न पहुँच सकने पर वह कभी-कभी सरोजिनी को बूढ़े शिवसरन के हाथों बुलवा भेजता। सरोजिनी आकर उसे अपने घर का इतिहास सुनाती, मुनिया के कार्य-कलापों का विवरण देती और अपनी गुड़िया के टूटे गहने अथवा फटे कपड़े के लिये चिन्ता प्रकट करती।

फिर भी अकेले घर में उसे समय काटना कठिन हो जाता और रह-रहकर उसका जी उचाट खाता; तब कभी उसे घर, सुधीर तथा परिवार के अन्य सदस्यों की सुधि आती और कभी अतीत जीवन की घटनायें स्मृति-पटल पर नाचने लगतीं। और वह सोचता—मरकर मनुष्य कहाँ चला जाता है? उसकी मा कहाँ चली गई? सुशीला कहाँ चली गई? और कहाँ गया उनका प्यार और चिन्ता? कहाँ गया सुशीला का क्रोध और रूठना; उसके संकल्प और अभिलाषायें? माना कि उसका शरीर नष्ट हो गया, जल गया; पर उसके मनोभाव, उसके अरमान, वे क्या हुये? इन अशरीरी पदार्थों का क्या होता है, वे होकर भी कैसे नहीं रहते हैं—ये जो न जल सकते हैं, न गल सकते हैं? अरे, हमारे मन का संसार कहाँ विलुप्त हो जाता है?

जो चीजें होती हैं वे नहीं रहतीं, अस्तित्व अनस्तित्व में परिवर्तित

हो जाता है ; विश्व-जगत का यह कैसा भयंकर नियम है ! और इस विलीन होते हुये, स्मृति से उतरते हुये, मनोजगत के साथ ही हमारे जीवन के खंड भी विलुप्त होते जाते हैं। जीते हुये भी हम प्रतिक्षण मर रहे हैं। पिछले साथी बिछुड़कर न जाने कहाँ चले जाते हैं, और उनके-हमारे सामान्य जीवन का न जाने कहाँ अन्त हो जाता है। चन्द्रनाथ को प्रयाग छोड़े प्रायः डेढ़ वर्ष हो गया। रिसर्चथीसिस पूरी करने के बाद वह वहाँ से एकदम चला आया था। उसके कुछ साथी उसके सामने ही प्रयाग से चले गये थे, और कुछ अब चले गये होंगे। वीरेन्द्र तो तभी एक मिल में अच्छे पद पर नियुक्ति पा गया था, शिवानन्द का पता नहीं कहां है। और कहां है हरिशंकर और प्रेमलता और आशा ! प्रेमलता बी०ए० में असफल हो गई थी और फिर बरेली चली गई थी; आशा ने सम्भमवतः एम० ए० ज्वाइन किया होगा, चन्द्रनाथ ने उसे इतिहास लेने की सलाह दी थी। अरे, आशा तो नरेन्द्र से सम्बन्धित है; क्यों नहीं वह उससे उसके बारे में पूछ लेता ? लेकिन लाभ भी क्या है।

और हरिशंकर ? चन्द्रनाथ को कभी-कभी उसकी तीखी याद आती है। रुचि और विचारों में भले ही चन्द्रनाथ का उससे भेद रहा हो, फिर भी हरिशंकर उसे प्रिय था। उसमें कुछ विशेषतायें थीं जो उसे अब तक कहीं दूसरी जगह देखने को नहीं मिलीं। निर्लिप्त विनोद-वृत्ति जो उसे हर समाज में प्रिय बना देती है, अनासक्त भ्रमणशीलता, जीवन के प्रति एक तटस्थ उत्सुकता। अरे, यह घुमक्कड़ हरिशंकर इस समय कहां होगा ?

वह सोच रहा है एक बार प्रयाग हो आये। किन्तु वहां जाने से होगा क्या ? शिवानन्द से भेंट हो, इसकी सम्भावना कम है। फिर जार्ज टाउन और नये कटरे जाना तो फिजूल ही है। पता नहीं कौन उन मकानों में रहता होगा, और कौन होगा उस कोठरी में जिसमें सुशीला रहती थी......

'नीचे कोई पुकार रहे हैं, बाबू', शिवसरन ने खबर दी।

'अरे, कौन, नरेन्द्र !' कह कर चन्द्रनाथ उठा। देखा तो आंगन में मदन बाबू खड़े हैं।

'आइये, आइये उधर ही ज़ीना है,' चन्द्रनाथ ने संभ्रम में कहा। मदन ऊपर चला आया।

'आज कैसे भूल पड़े ? शायद मकान नहीं जानते थे। मैंने समझा नरेन्द्र हैं, लेकिन नरेन्द्र तो आवाज़ नहीं लगाते, सीधे चढ़ आते हैं। घर में कोई पर्दे वाला तो है नहीं।'

'इसीलिये घर बड़ा सूना लगता है' मदन ने मुस्करा कर कहा, 'बिन घरनी घर भूत का डेरा।'

'हाँ···नहीं, वैसा नहीं···धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है। शुरू में तो मुझे बहुत बुरा लगा था।'

'हाँ आदत तो पड़ ही जाती है। लेकिन अब तो आपको शादी में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, सर्विस लग ही गई है।'

'शादी से सदैव सुख ही नहीं होता, मदन बाबू, आप तो स्वयं भुक्तभोगी हैं।'

'मेरा केस तो एक एक्सेप्शन (अपवाद) है,' मदन ने निराशा-व्यंजक सांस खींच कर कहा।

'नरेन्द्र भी ऐसा ही कुछ कहते थे, लेकिन क्यों, मेरी समझ में नहीं आया।'

मदन ने कुछ विलम्ब से कहा—'जब मैंने शादी की थी तो मेरे क्या-क्या सपने थे, कैसे-कैसे अरमान।··· मैंने उसे बहुत प्यार करने की कोशिश की, लेकिन व्यर्थ। उसके दिल में प्रेम नाम की चीज ही नहीं थी।' चन्द्रनाथ चुप था।

'उसे अपने पिता की सम्पत्ति का नाज़ है, चन्द्रनाथ बाबू; वह मेरी पर्वाह क्यों करती। और अब तो मुझे भी उसकी पर्वाह नहीं है। वह अलग रहती है, मैं अलग; दो बरस यों ही बीत गये।'

'क्या वह आप के साथ बिलकुल नहीं रहतीं ?'

'नहीं, ऐसा नहीं है, महीने में दस-पाँच दिन रह जाती है। साथ न रहती तो बच्चा कहाँ से होता।'

मदन अन्यमयस्क भाव से बातें कर रहा है; मर्यादाओं का कृत्रिम बन्धन मानों उसके लिये है ही नहीं। 'आती हैं, रहती हैं, लेकिन मेरी पर्वाह उन्हें नहीं है। अभी चार दिन पहले मुझे बुखार हो गया था, मैंने कहला भेजा, लेकिन कौन फ़िक्र करता है।'

'आप ज्वर में अकेले पड़े रहे? किसी मित्र से ही कहला दिया होता।'

'अकेला नहीं था, मेरी चाची हैं; उनके बड़े लड़के हैं, भाभी हैं, और दो बच्चे हैं। उन्हीं के पीछे तो सारा झगड़ा है।'

'संयुक्त परिवार है?'

'हाँ।'

'आपकी पत्नी चाहती होंगी कि आप अलग हो जायँ।'

'वह यही चाहती हैं; लेकिन यह कैसे हो सकता है? मा के मर जाने पर जिन चाची जी ने मुझे पाला उन्हें मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? फिर भाई की हालत भी ऐसी नहीं कि परिवार का बोझ संभाल सकें।'

'क्यों, क्या वे काफी कमाते नहीं?'

'जहाँ तक हो सकता है करते हैं, उन्हें गठिया की शिकायत है।'

चन्द्रनाथ अब तक मदन को मात्र 'सेण्टीमेण्टल' (भावुक) व्यक्ति समझता था, उसे नहीं पता था कि वह काफ़ी कर्मठ भी है, और एक लम्बे परिवार का बोझ उठा रहा है। उसके हृदय में उसके प्रति श्रद्धा-मिश्रित सहानुभूति उमड़ने लगी।

'क्या आपकी पत्नी अपने पिता की एक मात्र सन्तान हैं?'

'नहीं, एक लड़की और है; एक लड़का भी है।'

'आपके ससुर क्या करते हैं?'

'वे बड़े आदमी हैं, जमींदार हैं, सिल्क के बड़े व्यापारी हैं।' कहते-कहते मदन बातचीत से विरक्त-सा हो गया। थोड़ी देर

बैठने के बाद वह चल दिया।

एक दिन बाद वह फिर चन्द्रनाथ के डेरे पर आ पहुंचा। इस बार चन्द्रनाथ ने उसका कुछ अधिक स्नेह से स्वागत किया। पिछली बार उसने महसूस किया था कि मदन उससे और ही कुछ कहना चाहता था, आज उसने निश्चय किया कि वह स्वयं बातचीत की दिशा में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा।

'मैंने सुना है आप कविता करते हैं', मदन ने शुरू किया।

'यों ही कभी-कभी लिख लेता हूं।'

'आप जानते हैं, प्रेम क्या है ?'

चन्द्रनाथ इस प्रश्न के लिये तैयार न था। बोला—काव्य और जीवन में कुछ भेद है, मदन बाबू। काव्य में व्यक्त होने वाला प्रेम मानवता की एक भूख है, व्यक्तिगत प्रेम कुछ भिन्न होता है।

'इसका अर्थ यह है कि आपने कभी प्रेम नहीं किया है। लेकिन बिना प्रेम किये कोई कैसे कवि हो सकता है।''''आप अपनी पत्नी से प्रेम करते थे ?'

'जितना करना चाहिये था, उतना नहीं।'

'लेकिन मैंने प्रेम किया है, मैं जानता हूँ प्रेम क्या है।'' प्रेम का अर्थ है अपनी खुदी को दूसरे में डुबा देना, लीन कर देना। अपने को प्रेम पात्र में भुला देना ही प्रेम है।'''''लेकिन आदमी जिसे प्रेम करता है वह उसे मिलता नहीं', उसने कुछ रुक कर कहा।

चन्द्रनाथ चुपचाप सुन रहा था।

'मैं जिससे प्रेम करता हूँ वह इस मकान की मालिक है, मालिक की लड़की, 'चन्द्रनाथ बाबू' मदन ने यकायक कहा।

'मुझे कुछ-कुछ मालूम है', चन्द्रनाथ ने उत्तर में कहा।

'कैसे ? आपसे किसने कहा ? मैंने तो कभी नहीं कहा।'

'किसी ने कहा होगा। आपका यह सम्बन्ध एकतरफा है, या वह भी आपसे प्रेम करती है ?'

'वह भी प्रेम करती है,' मदन ने उत्फुल्ल होकर कहा, 'उतना ही जितना कि मैं। वह तो कहती है कि उससे भी ज़्यादा, लेकिन मैं विश्वास नहीं करता ।'

फिर वह कुछ रुक कर बोला, 'लेकिन कुछ दिनों से हमारे बीच बड़ी अड़चनें पड़ गई हैं। पहले मालती (छोटी बहिन) मदद करती थी, अब नहीं करती। अब शायद उसे ईर्ष्या होने लगी है। पहले हम लोगों को अकेले छोड़कर चली जाती थी, अब जमी बैठी रहती है। मा भी बहुत चौकन्ना रहती हैं।

चन्द्रनाथ पहले की भाँति चुप था। मदन फिर कहने लगा, 'यदि आप चाहें तो मदद कर सकते हैं।'

'कैसे ?' चन्द्रनाथ ने आश्चर्य से कहा।

'आपका नरेन्द्र की 'वाइफ' (पत्नी) पर असर है, और वह लड़की उनकी दोस्त है। वह चाहें तो हम लोगों का मिलना हो सकता है।'

'लेकिन मेरे कहने से वे क्यों बुलाने लगीं; आप नरेन्द्र से कहें।'

'नरेन्द्र से कहने से कोई फ़ायदा नहीं; उसे 'लव' (प्रेम) में विश्वास ही नहीं है।'

चन्द्रनाथ फिर खामोश हो गया।

'आप कवि हैं, मैंने सोचा आप सहानुभूति करेंगे,' कहकर मदन चुप हो रहा। उसके चेहरे पर निराशा का अँधेरा था।

'देखिये मुझे विश्वास नहीं होता कि वह लड़की आपसे प्रेम करती है; आप व्यर्थ ही उसके पीछे परेशान हैं।'

'नहीं, आपका खयाल ग़लत है; मैं ठीक जानता हूँ कि वह मुझ... म करती है।'

'मेरा अनुमान है कि स्त्रियों का बाह्य एक होता है, अन्तर दूसरा। ...यों को बड़ी जल्दी विश्वास दिला देती हैं कि वे उनसे प्रेम करती ... वास्तव में ऐसा होता नहीं। दूसरे, उनकी मनोवृत्ति परिवर्तनशील

और लगाव अस्थायी होता है। प्रायः वे हृदय की अपेक्षा धन और ऐश्वर्य को ज्यादा महत्त्व देती हैं।'

'लेकिन हर रूल (नियम) के एक्सेप्शन्स (अपवाद) होते हैं; मेरा विश्वास है कि माधुरी वैसी लड़की नहीं है। वह बहुत इण्टेलीजेण्ट (बुद्धिमती) और सेन्सिटिव (सम्वेदनशील) है। ···मेरी तरह वह भी बहुत परेशान रहती है।'

और फिर जैसे प्रमाण के रूप में मदन ने अपनी जेब से माधुरी के कई पत्र निकाले और उनमें से एक चन्द्रनाथ के हाथ में दिया। वह ढ़ने लगा--

जीवितेश !

कल आपको मैंने अपनी बातों से खिन्न कर दिया, इसका मुझे बहुत अफ़सोस है। आप सचमुच बहुत सीधे हैं, तभी तो दुनिया के लोग आपसे अनुचित लाभ उठा लेते हैं। आपके इस सीधेपन के कारण लोग न जाने आपको कैसा-क्या कहते और समझते हैं, लेकिन आपकी "माधुरी" को वही पसन्द है। वादा करती हूं कि अब कभी आपको तंग नहीं करूंगी।···मा को किसी तरह का सन्देह नहीं है, मालती कभी किसी से कुछ न कहेगी, इसका मुझे विश्वास है। लेकिन प्राणेश ! कबतक हम इस तरह अलग-अलग रह सकेंगे। कब वह घड़ी आयेगी जब हम एक-दूसरे से स्वच्छन्द बातें कर सकेंगे ? मैं आपकी अनवरत प्रतीक्षा करती रहती हूँ, कल आते समय इसे न भूलें।

आपकी ही,

माधुरी

चन्द्रनाथ पत्र पढ़ रहा था, और देख रहा था कि मदन प्रसन्न मुद्रा में उसकी दिशा में ताक रहा है, जैसे उसे अभी माधुरी का नया पत्र मिला हो। पत्र समाप्त होते-होते उसने चन्द्रनाथ से पूछा— कैसा पत्र है ?

'सुन्दर है', उसने बिना किसी उत्साह के उत्तर दिया।

'बहुत चतुर लड़की है, लेकिन एकदम झूठी; लिखा है अब कभी तंग नहीं करूंगी, पर हमेशा तंग करती है। लो, यह दूसरा पत्र है, हाल ही का लिखा हुआ।'

'वह पत्र कब का है?'

'बहुत पहले का, इत्तफ़ाक से पड़ा रह गया है, कितने पत्र तो मैंने जला दिये'।

'क्यों?'

'यों हीं, बाद में अफ़सोस हुआ। सोचता हूँ अगर मेरे और माधुरी के सारे पत्र छप जाते तो अच्छा साहित्य बन जाता'। उसके हाथ में दूसरा पत्र था, जिसे वह चन्द्रनाथ की दिशा में बढ़ाये था। चन्द्रनाथ उसे लेकर पढ़ने लगा।

प्राणेश,

मेरी शादी की बातचीत जोरों से चल रही है; मा बड़ी उत्कंठित है। उन्हें क्या पता कि मुझपर इसका क्या असर पड़ता है।......मैं तो जिसकी हूँ, उसी की रहूँगी। आप विकल न हों, आपकी विकलता से मुझे कष्ट होता है। शादी करना माता-पिता के हाथ में है, लेकिन वे या कोई और मुझे बांध कर तो नहीं रख सकते। इधर मालती भी दुष्टता करने लगी है; खैर, हमारा भी भगवान है......

चन्द्रनाथ—क्या उसकी शादी तय हो गई?

मदन—हुई नहीं है, पर कोशिश की जा रही है।

'लेकिन शादी तो होगी ही, उसे आप कैसे रोक सकते हैं।'

'हां, बातचीत तो कई जगह चल रही है, और काफी दिनों से। लेकिन अभी तक सफलता नहीं मिली।'

'शादी तय हो जाने पर आप क्या करेंगे?

'क्या करूंगा? आप बतलाइए मैं क्या करूं?'

'क्या करूं! माधुरी क्या कहती है'?

'वह तो कहती है अभी कुछ नहीं हो सकता; शादी के बाद ही

मैं

लड़

कुछ किया जा सकेगा'।

'इसका मतलब ? क्या शादी के बाद वह आपके साथ निकल भागेगी ?'

'कहती तो यही है, लेकिन मुझे विश्वास नहीं होता'।

'यदि उसे सचमुच आपसे इतना अधिक प्रेम है तो अभी ही आपके साथ कहीं चली जाय, शादी के बाद तो दूनी खराबी हो जायगी।'

'यही तो मैं भी कहता हूँ, पर वह माने तब न; बड़ी हठी लड़की है।'

यह कह कर मदन असहाय मुद्रा में बैठ रहा, उसके चेहरे पर कष्ट के चिन्ह थे। चन्द्रनाथ ने आर्द्र हो कर कहा—मदन बाबू मेरी हार्दिक राय यह है कि आप धीरे-धीरे इस प्रेम से विरत होने की चेष्टा करें।

'विरत कैसे होऊं; यह मुमकिन नहीं है,' मदन ने ठंडी सांस भर कर कहा। और वह उठ कर खड़ा हो गया। कुछ देर इधर-उधर घूम कर चन्द्रनाथ के निकट आकर बोला—आप बुलवा कर उसे नहीं समझा सकते ? मैं उसके साथ बम्बई जा सकता हूँ, दक्खिन जा सकता हूँ; आखिर बनारस दुनिया तो नहीं है।

'लेकिन मेरे समझाने से क्या होगा जब आप कहते हैं कि वह इतनी हठी लड़की है। शायद उसका प्रेम उतना उत्कट नहीं है।'

'यह बात नहीं है,' मदन ने चिन्तन की मुद्रा में कहा, 'कहती है मा-बाप को बदनाम करके कैसे भाग चलूँ।'

'क्या विवाह के बाद भागने से मा-बाप की बदनामी न होगी ? तब तो दो कुलों को धब्बा लगेगा।'

'वही तो, लेकिन मैं उससे तर्क नहीं कर सकता: दूसरा नया ज्यादा अच्छी तरह समझा सकता है। आप कोशिश तो करें।' कैसा

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। मदन के जाने के बाद देर तक वह उसके बारे में सोचता रहा।

दो-ढाई बरस पहले यदि कोई उसके पास मदन की जैसी प्रार्थना लेकर आता तो वह शायद प्राणप्रण से कोशिश करता कि किसी तरह प्रेमियों का मिलन हो जाय। किन्तु आज उसे मदन का प्रेम और प्रस्ताव दोनों अर्थहीन जान पड़ रहे थे। जिन परिस्थितियों में इस प्रेम का जन्म हुआ है उसे समाज कैसे सहन कर सकता है और कहां दोनों के सम्मिलन की सम्भावना है ? माधुरी के पत्र···एक समय था जब चन्द्रनाथ स्वयं ऐसे पत्रों से प्रभावित होता था; अब उसे लगता है उनमें प्रायः कुछ भी तत्व नहीं है। वे एक ऐसे उत्तेजित कच्चे मस्तिष्क के उद्गार हैं जिसे न ठीक से अपनी जरूरतों का ज्ञान है, न चारों ओर की दुनिया का। मदन व्यर्थ ही इन उद्गारों पर लट्टू है····उसे अपने प्रतिकूल भविष्य का कुछ भी आभास नहीं है।

मदन के फिर तीसरी बार आने पर उसने उसकी प्रार्थना या प्रस्ताव को नरेन्द्र के सामने रक्खा, यह सोचकर कि उसकी जानकारी के बिना सावित्री को इस झगड़े में डालना उचित नहीं होगा। नरेन्द्र ने कहा—'तुम कहां उस खब्ती के चक्कर में आ गये; माधुरी को बुलाने से क्या समस्या हल हो जायगी ? वह खुद ही क्या समझाने को काफी नहीं हैं ?'

चन्द्रनाथ—सो तो मैं समझता हूँ, किन्तु कभी-कभी उनकी दशा देखकर दया आ जाती है।

'यदि ऐसा ही है तो पत्नी से कहकर देखो, मेरा तो कोई हानि-लाभ है नहीं।' मुस्कुरा कर, 'लेकिन तुम्हारा लाभ हो सकता है; माधुरी जैसी लड़की परिचय करने योग्य है।'

७

सावित्री से माधुरी के बुलाने का प्रस्ताव करने-न-करने के विमर्श में चन्द्रनाथ के कई दिन बीत गये। किस बहाने वह एक अपरिचित लड़की से बात करेगा और किस अधिकार से उसे उपदेश देगा ?

उस अवसर पर मदन को बुलाना चाहिये या नहीं ? सब परिस्थितियों को जानते हुये; एक तीसरे व्यक्ति के घर में, मदन और माधुरी को परस्पर बातें करने का मौका कैसे दिया जा सकता है ? और यदि मदन उपस्थित न हो तो कैसे यह प्रसंग छेड़ा जा सकेगा ?

इन प्रश्नों के असमंजस और द्वन्द्व में चन्द्रनाथ सावित्री से वह बात नहीं छेड़ सका। इधर, मदन के लिये, घटनायें तेज़ी से चल रही थीं। मदन ने एक दिन बड़ी घबराहट में आकर कहा—मैं आपकी मदद के लिये आया हूँ, आप साथ न देंगे तो मेरा सर्वनाश हो जायगा।

'कैसे, क्या बात है मदन बाबू; बैठिये तो'।

'माधुरी की शादी तय हो रही है, बल्कि करीब-करीब तय हो चुकी।'

चन्द्रनाथ को यह खबर उतनी आकस्मिक न लगी; कोई भी व्यक्ति देख सकता था कि एक दिन यह बात होगी। स्वयं उसने भी मदन से कह दिया था। लेकिन मदन की अवस्था बड़ी चंचल थी; स्पष्ट ही वह बहुत व्याकुल था।

'भला इस मामले में मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ; शादी तो एक दिन तय होनी ही थी।'

'आप ज़रूर कुछ कर सकते हैं। मैंने एक उपाय सोचा है। जिस लड़के के साथ शादी ठहर रही है वह कानपुर का रहने वाला है, और शिक्षित है। अगर मैं और आप चलकर उसे सारी परिस्थिति समझा दें,—बतला दें कि लड़की किसी दूसरे से प्रेम करती है, तो वह हर्गिज शादी न करेगा।'

और चन्द्रनाथ के कुछ कहने से पहले ही मदन ने फिर कहा—'लड़का शिक्षित है, समझदार है, धनी है; वह भला ऐसी लड़की से जो किसी दूसरे से प्रेम करती है क्यों शादी करेगा।'

'यह काम तो आप अकेले भी कर सकते हैं'।

'हां जाती तो हूं, क्यों; कोई काम है ?'

'उनकी बड़ी लड़की को आप यहां बुला सकती हैं ?'

'क्यो नहीं ; बड़ी को भी और छोटी को भी ; कल ही बुलावा भेज दूँगी।' यह कह सावित्री ने अर्थभरी दृष्टि चन्द्रनाथ पर डाली। फिर बोली, 'लड़कियां देखने में दोनो सुन्दर हैं ; बल्कि मुझे तो छोटी ज़्यादा पसन्द है।'

सावित्री न जाने उसके प्रस्ताव का क्या अर्थ लगा रही है ; चन्द्रनाथ बड़े असमंजस में पड़ गया। बोला—'आप जानती हैं बड़ी लड़की की शादी तय हो रही है ?'

'हां सुनती हूँ, बड़ा ऊँचा और धनी खान्दान है।'

चन्द्रनाथ फिर उलझन में पड़ गया; कैसे वह अपनी बात कहे ? यकायक उसने साहस करके कहा—'आप मदन बाबू को जानती हैं न ? वे माधुरी से बहुत अधिक प्रेम करते हैं। उसकी शादी की चर्चा से बड़े परेशान हैं। आप इस बारे में कुछ जानती हैं ?'

'जानती हूँ,' सावित्री ने मुस्करा कर कहा, 'पिछले बरस तो इस सम्बन्ध में बड़ी अफ़वाह उड़ी थी। मदन बाबू का ट्यूशन पढ़ाना भी बन्द कर दिया गया था।'

चन्द्रनाथ—इस सम्बन्ध में माधुरी का रुख़ क्या है ? क्या वह दूसरी जगह शादी करने को तैयार है ?

'उसके तैयार न होने से क्या होगा ; मा-बाप जहां चाहेंगे शादी करेंगे; लड़की के दिल को कौन पूछता है। विन्धेश्वरी बाबू वैसे भी बड़े आदमी हैं; उनके सामने कोई लड़की चूं तक नहीं कर सकती। लेकिन मदन बाबू तो विवाहित हैं, उनके साथ तो वैसे ही शादी नहीं हो सकती है।'

'क्यों, हि[illegible] धर्म में तो दो शादियां मना नहीं हैं।...बेचारे बड़े परेशान हैं, दे[illegible]कर दया आती है। प्रेम पर किसी का बस नहीं है न।'

'क्या ज[illegible], आपके मित्र तो प्रेम में विश्वास ही नहीं करते।'

'क्यों, क्या नरेन्द्र आपसे प्रेम नहीं करते ?'

'करते होंगे, दुनिया में एक मैं ही तो नहीं हूं।'

चन्द्रनाथ ने उस प्रसंग को वहीं दबाते हुये प्रश्न किया—तो आप माधुरी को कब बुलायेंगी ?

'कल ही बुला लूंगी ; लेकिन उससे पहले मैं एक बार हो आऊं तो ठीक हो। जरा देखूं, इस लड़की के दिल में क्या है।'

'कल आप वहां जायें, और परसों उन्हें यहाँ बुलायें, ठीक है न !'

'अच्छा, लेकिन मैं दोनो लड़कियों को बुलाऊंगी', कहकर सावित्री वक्रता से मुस्कराई।

क्यों सावित्री को उसके विवाह की इतनी चिन्ता है, यह चन्द्रनाथ की समझ में नहीं आया। किन्तु उस समय उसने यह स्पष्ट करना उचित न समझा कि उसे अपने सम्बन्ध में वैसी तनिक भी रुचि नहीं है। इस स्पष्टीकरण से कोई लाभ न था।

८

अगले दिन साँझ को पाँच बजे के आस-पास चन्द्रनाथ फिर नरेन्द्र के घर पहुँचा; नरेन्द्र नीचे ही इत्मीनान से लेटा कुछ पढ़ रहा था।

'क्या कालेज चलने का इरादा नहीं है' ? चन्द्रनाथ ने पहुँचते ही पूछा।

'कहां ? तुलसी जयन्ती में ; भला मैं जाकर क्या करूंगा ; तुम जाओ।'

'इतने बड़े कवि की जयन्ती में हर हिन्दू को सम्मिलित होना चाहिये।'

'ठीक है, लेकिन जो हिन्दू हो उसे न।'

'लो सुनो, तुम हिन्दू नहीं हो। जानते हो तुलसीदास का हमारे देश पर कितना आभार है।'

'देश पर नहीं, हिन्दुओं पर कहो; उनकी अनुपस्थिति में ज़्यादा-

से-ज़्यादा यही न होता कि हम सब मुसलमान हो जाते।'

'अच्छा भाई, तुमसे तर्क करना फ़िज़ूल है; उठो तो, बाहर रिक्शावाला प्रतीक्षा कर रहा है।'

बड़ी मुश्किल से नरेन्द्र उठा।

'तुम समाज के लिये काव्य-साहित्य की कोई आवश्यकता नहीं समझते ?' चन्द्रनाथ ने मार्ग में कहा।

'मेरे समझने-न-समझने से क्या होता है, इतिहास की साक्षी देखो। बाबर के पास गनपाउडर और बन्दूकें थीं इसलिये उसकी जीत हुई, हमारे साहित्य और फिलासफ़ी ने हमारी कहां रक्षा की ? और अंग्रेजों की जीत भी इसलिये नहीं हुई कि उनका काव्य-साहित्य हमसे अधिक उन्नत था बल्कि इसलिये कि उनके पास वैज्ञानिक जानकारी और साधन ज़्यादा थे।'

चन्द्रनाथ नरेन्द्र से तर्क कम करता है; वह जानता है उसके मस्तिष्क को उसकी युक्तियां प्रभावित नहीं करतीं। किसी तरह जिन्दा रहना ही नरेन्द्र की दृष्टि में जीवन की एकमात्र वैल्यू (मूल्यसत्त्व) है, इस जीने का क्या लक्ष्य है इस चिन्ता को वह सर्वथा अवैज्ञानिक प्रयत्न समझता है। 'जिन्दा रहना ही' वह कई बार चन्द्रनाथ से कह चुका है, 'जिन्दा रहने का एकमात्र ध्येय है। इसीलिये विभिन्न योनियां अपने जीवन-काल में जरूरत से ज्यादा बच्चे पैदा करती हैं।' और वह कभी-कभी परिहास में चन्द्रनाथ से कहता है— 'शादी करो, और बच्चे पैदा करो, यही सफल जिन्दगी का लक्ष्य और मूलमंत्र है।'

कालेज में बड़ा उत्साह था, काफी छात्र और कुछ अध्यापक आ चुके थे। दोनों के पहुँचने पर हरीजी ने मुक्त भाव से हंसकर स्वागत करते हुये कहा—आइये; आइये, आप ही की चर्चा हो रही थी; और नरेन्द्र बाबू को भी खींच लाये हैं !

'तब तो तुलसी बाबा धन्य हो जायेंगे। नरेन्द्र बाबू कुछ बोलेंगे

भी ? और आप चन्द्रनाथ जी ?' चतुर्वेदी ने बढ़कर कहा। वह सम्भवतः वक्ताओं की सूची बना रहा था।

'इनसे क्या पूछते हैं, यह तो बोलेंगे ही; यह नहीं बोलेंगे तो फिर कौन बोलेगा,' हरीजी ने चन्द्रनाथ को लक्ष्य करके पूर्ववत् कंठ से हंसते हुये कहा। नरेन्द्र ने इन्कार कर दिया।

चन्द्रनाथ जब कालेज पहुंचता है उस समय यदि हरीजी रहे तो वे बड़े स्निग्ध और उन्मुक्त स्वर में उसका स्वागत करते हैं। यह क्रम उनका प्रारम्भ से ही है, मानो उससे उनका कोई निसर्ग-सिद्ध बन्धु-भाव हो। हरीजी के कारण उसे शुरू से ही कालेज और विशेषतः अध्यापकों का कमरा सुपरिचित-सा लगता रहा है। अन्य अध्यापकों से भी हरी जी का प्रायः वैसा ही सम्बन्ध है यद्यपि चन्द्रनाथ को लगता है कि उस पर उनकी विशेष कृपा है। उनके कारण ही थोड़े समय में वह दूसरे अध्यापकों से भी निकट हो गया था।

अध्यापकों में संभवतः नरेन्द्र ही ऐसा था जो हरी से कुछ खिंचा-सा रहता था, यद्यपि स्वयं हरी जी उससे वैसे ही हँसकर बोलते थे जैसे कि दूसरों से।

कालेज के समय में ही आज हरी जी ने चन्द्रनाथ से तुलसी जयन्ती में उपस्थित होने का विशेष आग्रह किया था; चन्द्रनाथ ने उसके लिये कृतज्ञ महसूस किया। किन्तु वह यह सोच कर बिल्कुल नहीं चला था कि उसे वक्तृता देनी होगी, न वह इसके लिये तैयार ही था। और अब हरी जी का स्पष्ट संकेत पाकर, जिसकी अवहेलना या उपेक्षा का प्रश्न नहीं था, वह सोचने लगा कि तुलसीदास के सम्बन्ध में क्या कहे।

बहुत दिनों से उसने किसी सभा-सोसायटी में भाग नहीं लिया है, और इधर काव्यानुशीलन भी कम हो गया है। तुलसीदास को तो उसने जाने कब से नहीं पढ़ा है—उस लम्बी अवधि की कल्पना करके उसे आश्चर्य हुआ क्योंकि किसी समय में उसे रामायण पढ़ने का बहुत चाव था। हरीजी ने सहसा बोलने को कह कर उसे सचमुच

बड़े असमंजस में डाल दिया था । चतुर्वेदी से रामायण का गुटका लेकर वह उसके पन्ने पलटने लगा ।

भुवन बाबू के आते ही हरीजी ने उनके अध्यक्ष चुने जाने का प्रस्ताव किया, और फिर कार्यवाही प्रारम्भ हुई। पहले एक विद्यार्थी ने तुलसीदास पर एक कविता पढ़कर सुनाई, फिर एक अन्य छात्र ने "तुलसी का जीवन और काव्य" पर भाषण दिया। इसके बाद एक दूसरे विद्यार्थी ने "हिन्दी के कवि सम्राट्" पर वक्तृता दी जिसमें तुलसी की शेक्सपियर, और रवीन्द्रनाथ से तुलना करके उन्हें उन कवियों से उच्चतर घोषित किया गया । इसके बाद उठे पंडित सीतानाथ चतुर्वेदी, हास्य-मिश्रित करतल ध्वनि से उनका स्वागत हुआ। तुलसी की नारी-भावना उनका विषय था और कवि के आधुनिक नारी-उपासक समीक्षकों को उत्तर देना उनका उद्देश्य। उनका निष्कर्ष यह था कि महाकवि तुलसीदास नारी के महत्व से हर्गिज अपरिचित नहीं थे; वे जानते थे नारी जननी है, शक्ति है; नारी के कारण रावण का ध्वंस दिखा कर उन्होंने नारी के महत्व की तुमुल घोषणा की, पर साथ ही यह भी संकेत कर दिया कि नारी कितनी खतरनाक हो सकती है। 'हाँ, बाबाजी होने के नाते वे नारी के दोषों की उपेक्षा नहीं कर सके। इसके और भी कारण थे। एक यह कि वे अन्धे नहीं थे—भले ही पहले कामान्ध रहे हों पर रामायण लिखते समय नहीं थे—और दूसरा यह कि उनके समय में स्त्रियां इतनी "फारवर्ड" नहीं थीं, न पाउडर ही लगाती थीं, न सभा सोसाइटियों में ही भाग लेती थीं ।' अन्तिम वाक्य समाप्त होते-होते श्रोताओं ने तुमुल हास्य के साथ ताली पीट दी।

इसके बाद हरी जी हंसते हुये उठे और चन्द्रनाथ को अगला वक्ता घोषित कर उसका परिचय देने लगे—'आप संस्कृत काव्य के तो आचार्य हैं ही साथ ही हिन्दी के बड़े प्रेमी और सुकवि हैं। आपका एक कविता-संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है। इधर आपने "आधुनिक

हिन्दी काव्य—किधर ?" शीर्षक चार-पांच निबन्ध भी लिखे हैं जिनका अच्छा प्रभाव पड़ा है।' यह कहकर वे रुके और फिर एक मध्यस्थ से कानाफूसी करके उन्होंने चन्द्रनाथ की वक्तृता का विषय बतलाया—तुलसी की सौन्दर्य-दृष्टि।

'तुलसी की सौन्दर्य-दृष्टि'—घोषणा के साथ ही चन्द्रनाथ ने देखा कि विषय बहुत कठिन है। पर अब कोई चारा न था। खड़े होकर उसने भूमिका में बताया कि पश्चिम के विवेचकों ने सौंदर्य के दो भेद किये हैं, एक 'सुन्दर' और दूसरा 'उदात्त'। 'इन दोनों ही के संबंध में तुलसी की अपनी निराली दृष्टि है, अपनी निराली कल्पना,' उसने कहा।

'बड़ा निराला विषय है भाई,' चतुर्वेदी को कहते हुए सुना गया। लोग हंसने लगे।

'तुलसी की दृष्टि में सौन्दर्य सिर्फ चेहरे या शरीर का गुण नहीं है...वह व्यक्तित्व की विशेषता है, व्यवहार की विशेषता है...वह चीज जो समाज में सामञ्जस्य पैदा करती है, जो संघर्ष को हटाकर सौहार्द की प्रतिष्ठा करती है...

'व्यक्तित्व का एक ऐसा गुण है विनय...अर्थात् अपनी अहंता पर अंकुश देकर दूसरों का महत्त्व देखने-मानने का स्वभाव।... तुलसी के जनक विनयी हैं, दशरथ विनयी हैं, और राम तो विनय की मूर्त्ति ही हैं...'

वह चुन-चुन कर रामायण से उद्धरण देने लगा।

'ये सब चीज़ें जरा पुरानी पड़ गईं,' चतुर्वेदी स्वगत रूप में कह रहा था, 'अब जमाना है "इसरारे खुदी" का। सर मुहम्मद इकबाल और कायदे आजम जिना' कहते-कहते चतुर्वेदी को जँभाई आ गई। पास के कुछ लोग हँसने लगे।

'और उदात्त क्या है ?' चन्द्रनाथ ने विषय के उत्तरार्द्ध पर आते हुए कहा, 'अन्तर का वह सामंजस्य जो अपने को विश्व के अशेष

हानि-लाभों के ऊपर प्रतिष्ठित करता है । राम की मुखच्छवि जो अभिषेक की खबर से बढ़ती नहीं और निर्वासन की आज्ञा से मलिन नहीं होती तुलसी की, स्वयं भारतीय मस्तिष्क की, धारणा का उदात्त है। और ऐसे ही हैं भरत जिनके विषय में राम कहते हैं—उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पद पाकर भी राजमद न होगा, कहीं छाछ के छींटों से क्षीर समुद्र फटता है......!'

करतल ध्वनि रुकते-रुकते हरी जी बोलने खड़े हुये । प्रारम्भ में उनकी दृष्टि श्रोताओं के सिर से कुछ ऊपर थी, बाद में वे अपने बाँयें हाथ की ओर मुंह किये खड़े रहे । उनके दोनों हाथ सीने पर बँधे थे और उनके नेत्र प्रायः निमीलित दिखाई दे रहे थे।

ध्यान की मुद्रा में रामायण के दो श्लोक पढ़कर उन्होंने शुरू किया—'मित्रो ! महाकवि तुलसीदास के सम्बन्ध में आपने अनेक छात्रों और आचार्यों के व्याख्यान सुने; सभी व्याख्यान अपने-अपने ढंग से सुन्दर थे। वास्तव में तुलसीदास एक महाकवि थे, किन्तु मैं तो उनके कवि-रूप को गौण ही मानता हूँ। मेरी दृष्टि में तो वह एक महान भक्त, महान साधक थे।···तुलसीदास से, उनके रामचरित मानस से, मेरा बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। मैंने उसमें पैठने की, उसका रहस्य समझने की, बहुत कोशिश की है। क्या रहस्य है मानस की महत्ता का, उसकी लोक-प्रियता का; क्यों राजा से लेकर रंक तक सब मानस को पढ़कर आनन्दित होते हैं। कुछ लोग कहते हैं उसका रहस्य है तुलसी का अगाध पांडित्य; तुलसी ने रामायण में सब शास्त्रों का निचोड़ प्रस्तुत कर दिया है। दूसरे लोग कहेंगे उसमें भारतीय संस्कृति का सार संचय किया गया है; अन्य परीक्षकों का मत है कि तुलसी की लोक-प्रियता का रहस्य उनकी भावुकता है; दूसरे समीक्षक कहते हैं कि उन्होंने सुन्दर और उदात्त के भव्य चित्र उपस्थित किये हैं।'

'मुझे भी किसी ज़माने में तुलसी का बहुत-बहुत बौद्धिक विश्लेषण और आलोचना करने का चाव था, पर बाद में मैंने अनुभव किया

कि तुलसीदास तो बड़े सीधे और सरल व्यक्ति थे; पांडित्य-प्रदर्शन से वे कोसों दूर थे। फिर पांडित्य द्वारा वे समझे भी कैसे जायेंगे ? उन्हें हनुमान जी का इष्ट था। और वे भगवान के अनन्य भक्त थे, इसी से वे इतना सुन्दर महाकाव्य लिख सके। एक दिन रामायण पढ़ते-पढ़ते मेरा ध्यान सहसा उनकी दो पंक्तियों की ओर आकृष्ट हुआ और मुझे लगा कि तुलसी का सम्पूर्ण हृदय, उनके जीवन-दर्शन का सारा रहस्य, उन दो पंक्तियों में निहित है। वे पंक्तियां हैं—"सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, ज्यों हरिकृपा न एकहु बाधा" अर्थात् जिस प्रकार गहन गम्भीर अतुल समुद्र में मछली पूर्ण सुख का अनुभव करती है वैसे ही भगवान की शरण में जाने पर, भगवान में लीन होने पर, जीवन और जगत की एक भी बाधा नहीं रहती, आत्मा को पूर्ण सुख, पूर्ण शान्ति मिल जाती है।'

❀ ❀ ❀

घर लौटते हुए नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ से कहा—तुम्हारी आज की स्पीच बड़ी मौलिक और ऊँचे स्तर की रही; उसके लिये बधाई।

'कहाँ, मेरी स्पीच में तो कोई ऐसी विशेषता न थी; हरीजी का भाषण सचमुच बहुत सुन्दर था।'

'हुश्, हरीजी के भाषण में क्या था, सस्ती भावुकता; मुझे उस व्यक्ति के विचार कभी पसंद नहीं आते।' फिर कुछ रुक कर कहा—विचारों से मैं तुम्हारे भी सहमत नहीं, लेकिन तुम्हारा विश्लेषण था मार्के का।......यह तुलसी बाबा भी निरे बौड़म थे, उनकी विनय और डिटैचमेण्ट (निष्काम उदासीनता) की शिक्षा ने हिन्दुस्तान को चौपट कर दिया।...और उन्हीं के लायक व्याख्याता हैं हरीजी।... क्या कह रहे थे......सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, ज्यों हरिसरण न एकहु बाधा—नान्सेन्स ऐण्ड हम्बग।

चन्द्रनाथ—शायद आपका मस्तिष्क वैसी चीज़ों को ग्रहण नहीं कर सकता। मैं स्वयं विश्वासी नहीं हूँ, फिर भी मैं हरीजी के व्याख्यान

की प्रभावपूर्णता से इनकार नहीं कर सकता। वास्तव में वे अपने अनुभव की बात कहते हैं।

नरेन्द्र—इसे तुम अनुभव कहते हो, जब कि मेरा विश्वास है कि यह शुद्ध ढोंग है—अहं की पुष्टि का एक तरीका। आदमी जितने काम करता है सब अपने जीवन और अहं के प्रसार के लिये।

यह नरेन्द्र घोर नास्तिक है, घोर अविश्वासी; वह मान ही नहीं सकता कि कोई मनुष्य असली अर्थ में त्यागी, निःस्पृह या निर्द्वन्द्व हो सकता है। माना कि अधिकांश लोग इस जीवन से ज़्यादा ऊँची किसी चीज़ की कामना नहीं करते—चन्द्रनाथ स्वयं वैसी कामना या प्रेरणा का दावा नहीं करता; पर इससे यह निष्कर्ष क्यों निकाला जाय कि वैसी प्रेरणा और जीवन सम्भव ही नहीं है? हरीजी को मात्र ढोंगी कहना क्या अविचार नहीं है? यदि सचमुच वे वही होते तो शायद उनकी वाणी में इतना बल नहीं होता—चन्द्रनाथ स्वयं सहज ही प्रभावित होने वाला व्यक्ति नहीं है।

और उसे मन-ही-मन इस बात से प्रसन्नता हुई कि उसके कालेज में कम-से-कम एक व्यक्ति ऐसे हैं जो सर्वग्रासी सन्देह और अविश्वास के प्रवाह में बह नहीं गये हैं—जो सच्चे अर्थ में आज भी आध्यात्मिक साधना-पथ के पथिक हैं।

रात को सोते समय उसके मस्तिष्क में बार-बार तुलसी की वे पंक्तियां जिन्हें हरीजी ने उद्धृत किया था, गूंज उठती थीं; और वह सोचता था—क्या इतनी शान्ति और निश्चिन्तता का जीवन भी सम्भव है? क्या सचमुच कोई भगवान हैं जिनकी शरण में पहुंच जाने पर संसार की कोई बाधा नहीं सताती?

९

अगले दिन दोपहर के दो बजे से ही मदन आकर चन्द्रनाथ के घर पर डट गया। उसे पता था कि आज नरेन्द्र के घर माधुरी

आयेगी और उसी सम्बन्ध में वह चन्द्रनाथ से बड़ा तल्लीन होकर बातें कर रहा था।

उसे बीच में रोकते हुये चन्द्रनाथ ने एक बार कहा—मदन, तुम ईश्वर में विश्वास करते हो?

'हां, करता हूं; क्या ईश्वर से प्रार्थना करने पर मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा? लोग तो ऐसा कहते हैं।'

चन्द्रनाथ को उसके भोले भाव पर हँसी आई। बोला—ईश्वर में विश्वास रखते हुये क्या उससे इसी के लिये प्रार्थना करोगे? क्या-माधुरी से ऊंची कोई चीज़ पाने योग्य नहीं है?

'हो सकती है, लेकिन मेरे लिये नहीं; प्रेमी के लिये उसका माशूक (प्रेमास्पद) ही सब से ऊंची चीज़ है।'

'उर्दू भी जानते हैं, मदन बाबू; मुझे नहीं मालूम था'

'नहीं, मैं ज़्यादा उर्दू नहीं जानता; लेकिन मेरे एक मुसलमान दोस्त कहते हैं कि इश्क़ (प्रेम) के मामले में फ़ारसी और उर्दू के कवि बड़े अनुभवी और पहुंचे हुये हैं।'

'क्या इश्क़ से ऊँची और कोई चीज़ नहीं है?'

'नहीं; मेरा खयाल है नहीं; क्या आप महसूस नहीं करते कि मजनू का जीवन ऊँचा और पवित्र था?'

फिर कुछ रुक कर बोला—मेरा खयाल है कि आदमी को किसी एक चीज़ के लिये अपने को मिटा देना चाहिये···जो ऐसा करता है वह ऊँची आत्मा है।···आप क्या सोचते हैं?

'मैं भी महसूस करता हूँ कि मजनू का जैसा जीवन निन्द्य नहीं श्लाघ्य है; लेकिन क्यों, इसका मैं कारण नहीं जानता।'

'क्योंकि मजनू ने अपने को एक के लिये मिटा दिया। सोचता हूँ मैं भी माधुरी के लिये अपने को वैसे ही मिटा दूँ।'

चन्द्रनाथ को सुनकर मन में हँसी आई। यह मदन कैसे भोले ढंग से बातें करता है। मानो कोई विश्वास करेगा कि वह मजनू जैसा

प्रेमी है। लेकिन इसे असम्भव क्यों माना जाय ? जो बात किसी काव्य-पुस्तक में विश्वसनीय हो सकती है वह जीवन में क्यों नहीं ?

मदन बार-बार चन्द्रनाथ से कहता है—'घड़ी देखिये, क्या बज रहा है ? कै बजे बुलाने को कहा है ? पाँच बजे, ठीक ? हम लोग कुछ पहले चले चलें तो कोई हर्ज है ?' और फिर वह चन्द्रनाथ को समझाने की कोशिश करता है कि उसे माधुरी से कैसे और क्या कहना चाहिये।

नरेन्द्र की दाई चार-साढ़े-चार बजे काम करने आती है ; काम खत्म करके वह माधुरी को बुलाने जायगी, यह सोचा गया था। अतः चन्द्रनाथ पाँच बजे से पहले नरेन्द्र के घर की ओर चलने में कोई लाभ नहीं देखता था। किन्तु मदन की उतावली के कारण वे लोग पन्द्रह मिनट पहले ही वहाँ से प्रस्थित हो गये।

वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि वे लोग अभी ही आ चुकी हैं। चन्द्रनाथ ने कहा—दोनो आई हैं, यह तो ठीक नहीं हुआ मदन बाबू।

'कोई हर्ज नहीं है, छोटी बहिन सब कुछ जानती है ।...तो हम लोग ऊपर चलें ?'

'अरे इतनी जल्दी ! घर की मालकिन के हुक्म के बिना हम लोग कैसे जा सकते हैं, क्यों नरेन्द्र बाबू ?'

जब ये लोग पहुँचे थे तो नरेन्द्र कुछ पढ़ रहा था ; उसने दोनों का "आइये" कह कर स्वागत किया, और उनकी बातों में अभिरुचि न लेकर, फिर पढ़ने लगा। चन्द्रनाथ द्वारा सम्बोधित होने पर उसने पुस्तक पर से बिना पूरा सिर उठाये ही अंग्रेजी में कहा—टु मी द होल बिज़िनेस इज़ सो सिली (मेरी दृष्टि में यह सब नितान्त मूर्खता-पूर्ण है)। फिर कुछ देर में कहा—

'मैं नहीं समझता कि मदन बाबू को ऊपर जाना चाहिये।'

मदन का चेहरा उतर गया, और वह बड़े दीन भाव से चन्द्रनाथ की ओर देखने लगा। चन्द्रनाथ बड़े असमंजस में पड़ा। उसे

भी लगता था कि मदन का ऊपर पहुँचना उतना उचित न होगा, साथ ही मदन की क्लिष्ट दशा उसमें गहरी समवेदना जगा रही थी।

थोड़ी देर बाद सरोजिनी ने नीचे आकर चन्द्रनाथ से कहा—माता जी आपको बुला रही हैं।

चन्द्रनाथ ने नरेन्द्र पर दृष्टिपात किया और फिर मदन पर; वह उठकर चलने लगा। उसने अनुभव किया कि मदन की कष्ट और दैन्यभरी आँखें उससे मूक याचना कर रही हैं। सरोजिनी जीने तक उसके साथ पहुँची थी कि नरेन्द्र ने उसे अपने पास बुला लिया।

सावित्री के कमरे में इस समय एक बिछा हुआ पलंग, एक छोटा खटोला और एक कुर्सी थी। जब वह पहुँचा तो माधुरी और मालती पलँग पर बैठी थीं और सावित्री बच्ची को लिये पास खटोले पर; उसके कदम रखते ही तीनों उठकर खड़ी हो गईं। चन्द्रनाथ कुर्सी को सावित्री की दिशा में मोड़ कर बैठ गया। और उसने सावित्री को लक्ष्य करके कहा—आप लोग बैठिये न ?

माधुरी प्रायः अविचलित थी, उसकी दृष्टि नितांत स्वभाविक ढंग से चन्द्रनाथ की ओर थी; किन्तु मालती संकुचित और विमूढ़ मालूम पड़ रही थी। सावित्री के होंठों पर मुस्कराहट थी, उसकी दृष्टि क्रमशः मालती, माधुरी और चन्द्रनाथ की दिशा में घूम रही थी।

मालती की स्थिति ने चन्द्रनाथ को असमंजस में डाल दिया। क्या सावित्री उसके और मालती के सम्बन्ध की सम्भावना को लेकर बातें करती रही है ?

'आपको मकान में कोई तकलीफ तो नहीं है ?' माधुरी ने यकायक उससे प्रश्न किया।

'नहीं, मुझे कोई तक़लीफ नहीं है,' चन्द्रनाथ ने ऐसे भाव से जैसे वह इतनी जल्दी किसी प्रश्न के लिये तैयार न था, उत्तर दिया।

'नौकर ठीक काम कर रहा है ?' माधुरी ने फिर पूछा।

'हां; कुछ धीरे काम करता है, लेकिन ठीक है।' और फि

मानो अपने उत्तर की अपर्याप्तता महसूस करके उसने कहा– आप लोगों की कृपा के लिये मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

'नहीं, इसमें कृतज्ञ होने की क्या बात है।......पिता जी आपके सम्बन्ध में शिवसरन से अक्सर पूछते रहते हैं।'

माधुरी और मालती दोनों ही रचना की दृष्टि से सुन्दर कही जा सकती हैं। माधुरी के चेहरे पर वक्रता पूर्ण बौद्धिकता और आभिजात्य की झलक है; मालती अपेक्षाकृत सरल और शालीन मालूम पड़ती है। माधुरी के चेहरे का काट वैज्ञानिक है, उसका प्रत्येक अवयव स्वतंत्र रूप से सुन्दर है, यद्यपि समन्वित प्रभाव, चन्द्रनाथ की दृष्टि में, विशेष मधुर नहीं है; इसके विपरीत मालती की मुखच्छवि एक सरस इकाई जान पड़ती है।

और यह माधुरी चन्द्रनाथ में इतनी अभिरुचि क्यों दिखा रही है? स्पष्ट ही उसके प्रेम में मदन जैसी लीनता नहीं है; उसकी मनोवृत्ति भी मदन में उतनी केन्द्रित नहीं है। और क्यों मदन उस-पर इतना अनुरक्त है यह भी उसकी समझ में नहीं आता। माधुरी की अपेक्षा मालती ही उसे अधिक कोमल और स्निग्ध मालूम पड़ती है।

इतने में बच्ची रोने लगी; सावित्री उसे उठाकर कमरे के छज्जे पर पहुँच गई।

'मदन बाबू के सम्बन्ध में आपने क्या निश्चय किया है?' चन्द्रनाथ ने साहस करके माधुरी के अभिमुख हो कहा।

'मेरे निश्चय से लाभ, जब वे मेरी बात मानना ही नहीं चाहते।'

लगा इसका मतलब? मेरा तो अनुमान है वे आपके लिये कुछ भी कि ...जा ... हैं। (फिर कुछ रुककर) मैंने उन्हें यह भी समझाने की ...ने हैं। ... वे इस सम्बन्ध को भूलने की चेष्टा करें, इसी में

वन्द्रना... कल्याण है।'

...व नहीं है; मेरे लिये सम्भव नहीं, फिर उनकी तो बात

ही क्या,' कहकर वह चिन्तामग्न हो रही। फिर बोली—वे कहते हैं कि अभी उनके साथ निकल चलूँ, मैं कहती हूँ अभी यह मुमकिन नहीं है; बस, इतना ही तो भेद है। क्यों नहीं वे मेरी बात का विश्वास करते ?

'वे समझते हैं कि विवाह के बाद यह नहीं हो सकेगा।'

'क्यों नहीं हो सकेगा ? हम लोग किसी मेले में जायँगे और वहाँ से मैं गायब हो जाऊंगी, बस।'

'लेकिन यह ठीक नहीं; एक विवाहिता महिला का इस प्रकार भागना अनुचित है; वह कानून की दृष्टि में अपराध भी है, मदन बाबू संकट में पड़ सकते हैं।'

'क्यों संकट में पड़ेंगे ? वे लोग दूसरी शादी कर लेंगे। धनी आदमी हैं, क्यों वे भागी हुई औरत को लौटाने की कोशिश करेंगे। ……मैंने सब सोच लिया है, यहाँ से निकल चलना मुमकिन नहीं है।'

'लेकिन मैं समझता हूँ वही एक रास्ता है। इस समय आप पर कुछ दोषारोपण होगा, बाद में आपकी और दोनों कुलों की बहुत बदनामी होगी। आपकी क्या राय है ?' उसने सहसा मालती को सम्बोधित किया।

'मेरा भी यही विचार है,' मालती ने आवेग-रंजित असमंजस से कहा, 'पर यह किसी की बात मानें तब न।'

यह पहला अवसर था जब मालती की आँखें चन्द्रनाथ से क्षण भर को मिली थीं। थोड़ी देर खामोशी रही। चन्द्रनाथ ने उठते हुये कहा—सबसे अच्छा यही है कि आप लोग एक-दूसरे को भूल[illegible] कोशिश करें। पू[illegible]

उसके उठ खड़े होने पर माधुरी ने कहा—वे नीचे [illegible] आप उन्हें भेज देंगे ?

'अवश्य', कहकर चन्द्रनाथ नीचे की ओर चल [illegible] न[illegible]

सावित्री ने मुस्करा कर पूछा—लड़की देख ली, पसन्द है ?

चन्द्रनाथ बिना कोई उत्तर दिये नीचे उतर गया। वहाँ पहुंचकर उसने नरेन्द्र से कहा—क्या कहते हो, माधुरी इन्हें बुलाती है ?

'अच्छा,' कहकर नरेन्द्र कुछ क्षण चुप रहा; फिर उसने मदन से कहा, 'जाइए।'

लगभग आधे घण्टे मदन ऊपर रहा, फिर नीचे आकर सीधा घर चला गया। थोड़ी ही देर बाद माधुरी और मालती भी चली गईं।

सावित्री उनके साथ ही नीचे उतर आई थी। चन्द्रनाथ के संकेत से वह बैठक में कुर्सी पर आकर बैठ गई।

'ऊपर मदन बाबू के साथ क्या गुजरी ?' उसने सावित्री से पूछा।

'मदन बाबू सचमुच बड़े सीधे आदमी हैं, देखकर दया आती है।......मुझे लगता है माधुरी को उनसे उतनी मुहब्बत नहीं है जितनी उन्हें माधुरी से है।'

'यह आप ठीक कहते हैं, पुरुष जितना प्रेम कर सकते हैं उतना स्त्रियाँ नहीं।'

'वाह ! यह आप बिलकुल ग़लत कहते हैं; पुरुष तो दो-चार ही ऐसे होते हैं, स्त्रियाँ तो सभी पतियों से प्रेम करती हैं'—यह कहते हुए सावित्री ने कनखियों से नरेन्द्र को देखा।

नरेन्द्र एकदम उदासीन था, जैसे उसके सामने होने वाली घटनायें और आलोचना नितान्त निम्न स्तर की चीजें हों। सावित्री फिर मदन के सम्बन्ध में बात करने लगी—माधुरी तो मालूम पड़ता था मानो उन्हें डांट रही है, और वे चुपचाप सुन रहे थे, एक बार तो लगा जैसे वे रो ही देंगे। तभी तो मालती कभी-कभी कह देती है कि जीजी बड़ी कठोर हैं, न जाने क्यों मदन बाबू उन्हें इतना मानते हैं।

चन्द्रनाथ खामोश था। सावित्री के चले जाने पर उसने नरेन्द्र से

कहा—कुछ लोगों में शायद प्रेम करने की अधिक क्षमता होती है।

'यह व्यक्ति-विशेष के शरीर में "हार्मोन्स" की "सप्लाई" पर निर्भर करता है', नरेन्द्र ने लापरवाही के स्वर में कहा।

'सचमुच ! यह "हार्मोन्स" क्या चीज़ हैं, भाई ?'

'हार्मोन्स "सेक्स इनर्जी" (पुंस्तत्व) की इकाइयाँ हैं। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि हार्मोन्स का "इञ्जेक्शन" देने से जन्तुओं की, जैसे चूहों की, सेक्स एक्टिविटी (यौन हलचल) एकदम बढ़ जाती है।'

'इसका मतलब यह है कि हमारे तथा-कथित प्रेम का मन और आत्मा से विशेष सम्बन्ध नहीं है !'

'बिलकुल नहीं; वास्तव में प्राणिशास्त्र मन और आत्मा की सत्ता ही नहीं मानता।...और यह तो साधारण निरीक्षण की बात है कि बुढ़ापे में यौन आकर्षण प्रायः खत्म हो जाता है। यदि एक बूढ़े के शरीर में "हार्मोन्स" के इञ्जेक्शन दिये जायँ तो वह फिर से तरुणों जैसा नारी का आकर्षण या प्रेम महसूस कर सकता है।'

'देखता हूँ अध्यात्मिक मूल्यों के लिये जीव-विज्ञान भौतिकशास्त्र से कम खतरनाक नहीं है।'

'मेरा तो विचार है कि जीव-विज्ञान ही जड़वाद का असली आधार खड़ा रहता है। जीवन-प्रक्रिया को जब तक निकट से न देखो तभी तक वह रहस्यमय और आध्यात्मिक लगती है; स्त्री-पुरुषों के सहवास और बच्चों के जन्म में अध्यात्म का भला कहां स्थान है ?' कुछ रुक कर उसने जोड़ा—'इस दृष्टि से मनुष्य और पशु में सिर्फ यही भेद है कि मनुष्य उन क्रियाओं को पर्दे में करना पसन्द करता है।'

१०

रविवार को चन्द्रनाथ दोपहरी में ही नरेन्द्र के घर पहुँच गया। उसने पाया कि सावित्री और दोनों बच्चे भी नीचे ही मौजूद हैं।

छोटी मुनिया नरेन्द्र के पलंग पर थी, सरोजिनी भी वहीं थी। सावित्री पास कुर्सी पर बैठी थी। नरेन्द्र को अपने परिवार के इतना निकट चन्द्रनाथ पहली बार देख रहा था।

बच्ची बड़ी प्रसन्न अवस्था में थी। सरोजिनी के पुचकारने और ताली पीटने पर वह जोर से हाथ-पैर चलाती और निचले होंठ पर रक्तवर्ण जीभ सटाये पूरा मुंह फैला हंसती। तब उसके भीगे अधर-पल्लवों और कान्तिकलित कपोलों को देखकर लगता मानो ये दूध से धोये गये हैं। सावित्री बड़ी आनन्दित मुद्रा से बच्ची को देख रही थी, और नरेन्द्र की दृष्टि भी उधर ही थी। और सरोजिनी की प्रसन्नता का तो ठिकाना न था; बच्ची की गतियों पर वह बार-बार खिलखिला कर हँस पड़ती थी।

'कितनी जल्दी बच्चों की चेतना का विकास होता है, डेढ़ महीने पहले शायद यह दृष्टि मिलाना भी नहीं जानती थी', चन्द्रनाथ ने कहा।

'तब तो बिलकुल मांस का लोथड़ा थी', सावित्री ने चमकती आँखों से कहा, 'और दिनमें बारहों घंटे पड़ी सोती रहती थी।'

'अयँ मुनिया, अब नहीं सोती, सो जा!' सरोजिनी उसके सीने और कन्धों को झकझोरती हुई बोली। बच्ची खिलखिलाकर हंस पड़ी।

'आप बच्चों के बड़े प्रेमी जान पड़ते हैं', नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ के निरीक्षण में हस्तक्षेप करते हुए कहा।

'तब भी तो अपने लड़के को यहाँ नहीं बुलाते, मैं कितनी बार कह चुकी हूँ', चन्द्रनाथ के कुछ कहने के पूर्व ही सावित्री बोली।

'मुझे बच्चे अच्छे लगते हैं, और उन्हें खिलाती हुई माएँ भी', चन्द्रनाथ ने कहा।

'सुन रही हो, इन्हें तुम भी अच्छी लगती हो; तुम्हारी क्या मनसा है ?'

'हूँ, आप ऐसी ही बातें करते हैं', सावित्री पति को तिरछे देखती हुई बोली, 'ऐसी मैं बड़ी सुन्दर भी हूँ। मैं तो इनसे कहती हूँ……'

'आप सुन्दर नहीं हैं यह कौन कहता है', चन्द्रनाथ ने बात काटते हुए कहा।

'आप भी उन्हीं की हाँ में हाँ मिलाने लगे।……मैं कहती हूँ कि मालती से शादी कर लें, लड़की भी अच्छी है और घर भी; सो तो आप सुनते नहीं।'

'बात तो ठीक है,' नरेन्द्र ने कहा, 'तब आपको मा और बच्चे लगातार देखने का अवसर मिलेगा।'

'बच्चों का ऐसा अन्ध प्रेमी मैं नहीं हूँ। व्यर्थ जन-संख्या बढ़ाने से क्या लाभ।'

'इसके विपरीत मेरा विचार है कि मनुष्य-जीवन का सबसे ठोस लाभ यही है। इसी से मनुष्य जाति क़ायम रहती है।'

'जब अस्तित्व का कोई बड़ा उद्देश्य ही नहीं है तो मानवता का क़ायम रहना भी व्यर्थ ही है।'

'यह तर्क मेरी कभी समझ में नहीं आया; या तो परलोक भी है, नहीं तो यह लोक भी नहीं, यह क्या बात हुई? दुनिया में जिन्दा रहना, मौज करना और पितृ-ऋण से उद्धार पाना यही जीवन का लक्ष्य है। मैं तो इनसे कहता हूँ कि एक लड़का……'

'हटो भी, हमेशा ऐसी ही बातें करते हैं!' सावित्री ने खीझ के स्वर में कहा।

इससे पहले चन्द्रनाथ ने नहीं अनुमान किया था कि नरेन्द्र के हृदय और जीवन में कुछ सरसता भी है; वह उसे निरा शुष्क तार्किक-वैज्ञानिक ही समझता था।

कुछ देर बाद सावित्री ने चन्द्रनाथ को लक्ष्य कर कहा—कल सावन का आखिरी सोमवार है; आप मुझे विश्वनाथ जी के दर्शन कराने ले चलेंगे?

'क्यों क्या नरेन्द्र नहीं चलेंगे ?' उसने उधर दृष्टि करके कहा।

'ये तो जरूर चलेंगे, इन्हें किसी में विश्वास हो तब न।'

'इन्हें सिर्फ डार्विन और आइन्स्टाइन में विश्वास है,' चन्द्रनाथ ने हंसकर कहा। 'गंगा नहाकर न दर्शन करने जाया जायगा ?'

'और क्या घर से नहाकर चलेंगे ! गंगाजल ही तो विश्वनाथ जी पर चढ़ाया जायगा,' सावित्री बोली।

'हाँ-हाँ पहले गंगा जी चलेंगे, और मुनिया भी जायगी, क्यों मुनिया ?' सरोजिनी स्पष्ट ही बहुत उत्साहित थी और बच्ची को झकझोर रही थी। किंतु न जाने क्या समझ कर मुनिया सहसा मुंह बिगाड़ कर रो उठी।

क्षणभर में उसके माथे और कपोलों पर गहरी सिकुड़नें पड़ गईं, होंठ टेढ़े-तिरछे हो गये और कंठ से क्रमशः ऊँचा होता हुआ स्वर निकलने लगा। उसकी दृष्टि सरोजनी से हटकर मा की दिशा में मुड़ गई।

उसे देखकर विनोद के भाव से चन्द्रनाथ ने कहा—लगता है मानो इसपर बड़ा अत्याचार हुआ है और सारी दुनिया के विरुद्ध शिकायत कर रही है।

'नहीं भाई, वह अब भूखी हो गई है,' कहकर सावित्री ने उसे दृष्टि और स्वर के समग्र स्नेह में नहलाते हुये उठा लिया।

११

शिवसरन को लिये चन्द्रनाथ सुबह छै बजे नरेन्द्र के घर पहुँच गया था, किंतु वहाँ से चलते-चलते सबको आधा घण्टा और लग गया। देर का मुख्य कारण यह हुआ कि सोकर उठी हुई मुनिया ने जो काफ़ी देर से सरोजिनी के पास किलक रही थी यकायक यह निश्चय किया कि गंगास्नान से पहले उसे शौच से निवृत्त हो लेना चाहिये। इस क्रिया में उसने अनजाने ही कई कपड़े सान दिये जिन्हें धोये बिना सावित्री का चलना सम्भव नहीं था।

नरेन्द्र को काफी मुश्किल से साथ लिया गया। यह निश्चय हुआ कि सब लोगों को पैदल ही चलना चाहिए। दिन काफी चढ़ आया था ; गोधोलिया के चौराहे पर पहुँचते ही उन्हें काफी लोग दशाश्वमेध घाट पर जाते हुये दिखाई देने लगे। चन्द्रनाथ जब-जब उधर से गुजरा है तब-तब उसने भीड़ पाई है। दशाश्वमेध घाट की निकटवर्ती सड़कों पर नित्य ही मेला लगा रहता है। यह गंगाजी की महिमा है।

घाट पर स्नानार्थी क्रमशः भरते जा रहे थे। उनमें स्त्रियां ही अधिक थीं; पंडे और साधु भी कम न थे। पहुँचते-पहुँचते ये लोग तरह-तरह के अह्वान सुनने लगे। 'दाढ़ी बनवा लो बाबू साहब,' 'बाल बनेगा ओ बाबू साहब ?' नरेन्द्र ने कठोर स्वर में कहा, 'अरे नहीं बनेगा,' और फिर बोला--'यहाँ नाइयों का भी खासा अड्डा है, पंडे-सन्यासी तो हैं ही।' एक साधु बाबा केवल लँगोटी बांधे, शरीर पर राख मले, छोटी-सी बाल्टी लिये सामने आकर कह रहे थे, 'कुछ दो बच्चा' ; उधर घाटवाले आवाज़ लगा रहे थे--'इधर बाबूजी, इधर माईजी।' उसी समय एक नाववाले ने आकर पूछा--नाव में घुमा लायें बाबू जी ?

नरेन्द्र ने खीझ कर कहा, 'नहीं'। सरोजिनी कुछ कहना चाहती थी कि पिता की मुद्रा देखकर चुप हो गई। वह स्पष्ट ही बड़ी प्रसन्न थी ; सावित्री के मुँह पर भी हलकी उत्तेजना की लाली थी। छोटी मुनिया बड़े मनोयोग से चारों ओर देख रही थी। चन्द्रनाथ फुर्सत की मुद्रा में खड़ा सार्वत्रिक निरीक्षण कर रहा था।

अनेक घाटवाले पंडों में से किसका आश्रय लिया जाय यह समस्या शिवसरन ने हल कर दी। एक तख्त पर, एक दस-ग्यारह बरस के लड़के की अध्यक्षता में, स्नानार्थियों की ज़रूरत के लायक प्रायः सभी चीजें दो छोटे पत्थरों पर सजी थीं—चन्दन, तेल, शीशा और कंघी, और एक तांबे के बर्तन में गंगाजल। लड़का बड़े उत्साह से यात्रियों को आमंत्रित कर रहा था—'ओ बुढ़िया माई इधर, सेठ जी इधर।' शिवसरन ने अपने कपड़ों की पोटली उसी के पास रख दी।

इस वर्ष अभी तक काशी में विशेष वर्षा नहीं हुई थी फिर भी गंगा जी में न जल की कमी थी, न मिट्टी की। सावित्री और सरोजिनी बड़े उत्साह से स्नान की तैयारी कर रही थीं। नरेन्द्र ने गदले प्रवाह की ओर दृष्टि करके चन्द्रनाथ से कहा—भला यह जल नहाने लायक है !

'नहानेवाले नहा ही रहे हैं ; हम लोगों का नहाना ज़रूरी नहीं है।'

'यहां आकर किसी दिन नहाये हो कि नहीं ?'

'एक दिन आ गया था', चन्द्रनाथ ने उत्तर में कहा ; और वह फिर घाट का समारोह देखने लगा। घाट पर स्त्रियां काफ़ी थीं। उनमें युवतियाँ भी थीं, किन्तु आधुनिक महिला प्रायः कोई नहीं थी। एक ओर कोई मोटी, गौरवर्ण समृद्ध सेठानी जी स्नान से निवृत्त हो पंडे और भिखमंगों को अन्न बांट रही थीं ; दूसरी ओर चार बर्मी स्त्रियाँ मोटे मूंगों की मालायें पहने, घुटनों से गले के कुछ नीचे तक धोतियाँ लपेटे, नहाने जा रहीं थीं। दो एक नवागत पुरुष इत्मीनान से दातून चबा रहे थे, तो कुछ स्वस्थ युवक तैल मर्दन कर तैरने की तैयारी कर रहे थे। चन्द्रनाथ ने देखा, वहाँ कोई अनावश्यक जल्दी में नहीं है।

इतने में नरेन्द्र ने बांह छूकर चन्द्रनाथ का ध्यान अपनी बाईं ओर आकृष्ट किया। एक देहाती व्यक्ति अभी आया था, और एक पंडे के पास चौकी पर उकड़ू बैठा था। पंडा कह रहा था, 'आज परब का दिन है, गोदान-ओदान करो; बछिया कि गौ ? गौ का सवा रुपया, समझे; और बछिया का आठ आना'। 'देहाती ने सिर हिला कर कहा, 'अच्छा आठ आना ले लेव।' फिर पंडा बोला, 'और भोजन ? ब्राह्मण को भोजन नहीं कराओगे ?' देहाती आनाकानी करने लगा, उसपर पंडे ने डपट कर कहा, 'अपने आप रोज खाते हो, ब्राह्मण को एक दिन नहीं खिलाय सकते; बोलो, ढाई रुपया? ?' 'ना महाराज इतना

नहीं, देहाती ने हाथ जोड़ कर कहा। 'अरे, तो सवा रुपया; इतने से कम में आजकल क्या भोजन होगा।' देहाती का मुंह अब भी अस्वीकार से मलिन था। पंडे ने शीघ्रता से कहा—'अच्छा दस आना, बस। लो संकल्प पढ़ो' और फिर उसने स्वयं पढ़ दिया.........'गंगा भागीरथ्यां अस्नान करिष्ये,' इत्यादि। देहाती बड़े भक्तिभाव से जल लिये हाथ जोड़े हुए था।

'देखते हो धर्म के नाम पर ये लोग कैसी लूट मचाते हैं? दुनिया में असली धर्म एक ही है, स्वार्थ-साधन। सब लोग इसी संघर्ष में लगे हैं।'

'देहातियों को तो ये और भी मूँडते हैं; सरकार की ओर से इन हरकतों पर प्रतिबन्ध होना चाहिये।'

'तुम भी क्या बातें करते हो; सरकार ने हमें धार्मिक आज़ादी जो दे रक्खी है। हिन्दुस्तानियों के भाग्य में बस यही आज़ादी रह गई है।'

सावित्री और सरोजिनी नहाकर निकल आई थीं। कपड़े पहिनते हुये सावित्री ने चन्द्रनाथ से कहा---'क्या आप भी नहीं नहायेंगे! नहा लीजिये, पर्व का दिन है?'

'क्या कहूँ, भाई नरेन्द्र की आज्ञा नहीं है। शिवसरन! तुम भी नहा आओ; और मुनिया! अरे मुनिया को नहीं नहलाओगी?'

'बस अब मुनिया को ही नहलाना है।'

सावित्री और सरोजिनी मुनिया को नहलाने ले गईं। थोड़ी देर बाद चन्द्रनाथ ने देखा कि तीनो मा-बेटियाँ चन्दन लगा रही हैं। मुनिया के चन्दन लगाना देख सरोजिनी ताली पीट कर हंसने लगी। सावित्री के अनुरोध से चन्द्रनाथ ने भी अपने माथे पर चन्दन लगवा लिया।

लौटते हुये चन्द्रनाथ ने देखा कि घाट पर एक चाय का होटल भी है। नरेन्द्र ने वहाँ रुककर चाय पी। सरोजिनी भी पीना चाहती थी पर सावित्री ने उसे डांट दिया।

सड़क के किनारे एक पार्क के पास एक व्यक्ति तस्वीरें बेच रहा था। सरोजिनी ने मा के कहने से चाय नहीं पी थी, इसलिये और भी अधिकार से तस्वीरें खरीदने को मचलने लगी। चन्द्रनाथ की उसके साथ सहानुभूति थी, इसलिये, विलम्ब होने के बावजूद, सबको रुक जाना पड़ा। अधिकांश चित्र पौराणिक थे---चौरासी देवताओं वाली गाय, राम-लक्ष्मण कन्धे पर लिये हनुमान, शिव-पार्वती और गणेश जी, चतुर्मुख ब्रह्मा, विचित्र मुख जगन्नाथ जी, शेषशायी विष्णु, तपस्वी विश्वामित्र और उनके सामने नाचती अप्सरा, इत्यादि---पर साथ ही कुछ नेताओं के चित्र भी थे। सरोजिनी ने पसन्द की गाय, और हनुमान जी, और पं० जवाहर लाल नेहरू तथा गांधी जी; इन दो नेताओं के नाम से वह सुपरिचित थी।

फिर सब लोग तेजी से विश्वनाथ जी के मन्दिर की ओर चले। गोधोलिया जाने वाली सड़क के प्रारम्भ में ही वे दाईं ओर मुड़ गये। कोने पर ही हलवाई की दूकान थी, सावित्री ने वहां से कुछ चीनी के बताशे खरीदे। बाज़ार अभी बन्द ही था, पर जाने वालों की, जिनमें स्त्रियां ही अधिक थीं, काफी भीड़ थी। उन सँकरी गलियों में, जहां न जाने कहाँ से ठंडी हवा पर्याप्त मात्रा में आ रही थी, स्त्रियां काफी द्रुत गति से चल रही थीं। उनमें बुढियें भी थीं, किशोरियां भी और शिशु बगल में दबाये कुछ युवतियां भी। उनकी वेश-भूषा और बात-चीत पर आधुनिक सभ्यता की प्रायः कुछ भी छाप न थी; उनका रूप-रंग और सौन्दर्य भी अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द, अनावृत और अकृत्रिम था। उनमें से अधिकांश के माथों पर बनारसी टिकुलियां और कुछ की मांगों में सिन्दूर झलकता देखा जा सकता था। द्रुत गति से चलती हुई वे सहज ही एक-दूसरे को और यात्रियों को ठेल या छू देती थीं।

चन्द्रनाथ ने देखा कि उन गलियों में सावित्री के कदम भी अधिक स्वच्छन्दता से उठ रहे हैं।

मन्दिर के पास पहुँचते-पहुँचते एक पंडा उनके साथ चलने लगा। वहीं एक फूलों की दूकान थी, पंडे ने 'माई जी' और 'बाबू लोग' को फूल खरीदने की राय दी। 'जूता भी बाबू लोग यहीं छोड़ दें', उसने कहा।

नरेन्द्र को यह अन्तिम प्रस्ताव एकदम पसन्द नहीं आया। बोला—मैं हर्गिज़ इस गन्दे रास्ते में नंगे पैर नहीं चल सकता; देखते नहीं कितनी कीचड़ है।

'इसका मतलब यह है कि तुम मन्दिर में नहीं चलोगे; तो फिर यहाँ आये ही क्यों थे?'

'सारा षड्यन्त्र रचने के बाद अब पूछ रहे हो, आये क्यों थे। यह अच्छी रही!' कह कर नरेन्द्र सिगरेट सुलगाने लगा।

नरेन्द्र की कुछ भी पर्वाह न करके सावित्री आगे बढ़ गई थी। चन्द्रनाथ ने इसे लक्ष्य किया। नरेन्द्र बोला—'देखते हो परलोक की चिन्ता में भारतीय नारी पति को कैसा भूल जाती है। तभी तो कहता हूँ दुनिया में अपनी चिन्ता ही मुख्य है।

'अरे भई, विश्वनाथ जी के सामने वे तुम्हारी ही तो मंगल-कामना करेंगी।'

'इसे कहते हैं जान-बूझ कर यथार्थ की ओर से आंखे मोड़ने की कोशिश करना। हिन्दुस्तान की धार्मिक स्त्रियों की मनोवृत्ति से तुम अभी परिचित नहीं हो; उनकी गिनती दुनिया के सबसे स्वार्थी जीवों में होनी चाहिये। पति की मंगल-कामना वे वहीं तक करती हैं जहां तक वह उनकी जीविका और सुख का साधन है।'

'अच्छा जी, तुम यहीं रहो; मैं उन्हें दर्शन कराके लौटता हूँ।'

राह में दो सांड़ घूम रहे थे और इधर-उधर कतार बाँधे भिख-मंगे बैठे थे; यात्रियों की भीड़ तो थी ही। बड़ी मुश्किल से वह कुछ गजों की दूरी पार करके सब लोग विश्वनाथजी के द्वार तक पहुँचे। दोनो ही पन्डे साथ आ रहे थे, जैसे उनमें समझौता हो गया हो।

चन्द्रनाथ ने दो-दो आना दोनों को देकर कहा—आप लोग अब जाइये, हम दर्शन स्वयं कर लेंगे।

मंदिर में बहुत भीड़ थी। चन्द्रनाथ सरोजिनी का हाथ पकड़े हुये था; सावित्री भी उसके साथ थी। शिवसरन घुसा साथ ही था पर थोड़ी ही देर में न जाने किधर बहक गया। भीड़ के धक्के में सावित्री कई बार चन्द्रनाथ के पार्श्व से सट गई और एक बार तो उसने बड़ी कठिनाई से उसे गिरते हुये संभाला। सरोजिनी को संभालना और भी कठिन था। बड़ी मुश्किल से सावित्री विश्वनाथ जी पर जल चढ़ा सकी।

बड़े प्रयत्न से सावित्री को भीड़ के दबाव से बचाते हुए चन्द्रनाथ ने भी प्रख्यात शिव-मूर्ति के दर्शन किये; और फिर बाहर निकलने पर वह सोचने लगा—क्या इसी के लिये यहां दिन-प्रतिदिन इतनी भीड़ इकट्ठी हुआ करती है? आखिर ऐसी उस मूर्ति में क्या विशेषता है? क्या सचमुच परलोक का अन्धा लोभ ही लोगों को यहाँ नहीं खींच लाता? अथवा इस आकर्षण का कारण मनुष्यों की पारस्परिक गर्मी अनुभव करने की वासना है?

लौटते समय यह सोचा गया कि दो रिक्शा ले ली जायँ क्यों कि सरोजिनी थक गई थी और देर भी हो गई थी। चन्द्रनाथ का घर आने पर सावित्री ने उससे कहा—कॉलिज जाने का समय पास है, शिवसरन आपको खाना बनाकर न खिला सकेगा। आप कुछ देर में हमारे ही घर पर आ जायँ। मैं कुछ-न-कुछ बना ही लूंगी।

चन्द्रनाथ ने स्वीकार कर लिया।

आज की यात्रा में चन्द्रनाथ ने जितने दृश्य देखे थे उनमें से कोई भी उसे शुद्ध अर्थ में धार्मिक नहीं लग रहा था। किन्तु यात्रा उसे अच्छी लगी थी। बहुत दिनों बाद आज उसे भीड़ में चलने का अनुभव मिला था। उससे भी महत्वपूर्ण था एक दूसरा अनुभव—बहुत काल बाद मिले हुये नारी

के निकट स्पर्श का अनुभव, जिसकी स्मृति उसकी कल्पना को अभी तक रोमाञ्चित किये हुये थी। और आज मानो उसने फिर विशेष तीव्रता से महसूस किया कि जीवन में पत्नी की समीपता का क्या अर्थ होता है, और पत्नी की मृत्यु में उसने क्या खो दिया है।

१२

सांझ में मदन का आना आज उसे कुछ ज्यादा प्रिय लगा; वह किसी से भी प्रेम और नारी-विषयक बातें करने को उत्सुक था।

'आओ भाई मदन! उस दिन तुम ऊपर से उतर कर तुरन्त ही क्यों चले गये थे?' वह अब मदन को तुम कहने का अभ्यस्त हो चला था।

'यों ही, रुकने से कोई फ़ायदा न था।'

'माधुरी ने ऊपर क्या बातें की थीं? सुना कि तुम्हें बहुत डांट रही थी।'

'किसने कहा? नरेन्द्र की "वाइफ" ने? यह कोई नई बात न थी।' इतने में मदन की मुद्रा सुखपूर्ण मुस्कान से उदासी में परिवर्तित हो गई।

'आखिर क्या बातें की उसने?' चन्द्रनाथ ने अधैर्य से पूछा।

'कहती थी तुम सबसे मेरी बात क्यों कहते फिरते हो; तुम्हें बिल्कुल बुद्धि नहीं है।'

'फिर?'

'मैंने कहा बुद्धि तो सब तुमने छीन ली है। फिर कहीं तो अपना जी हल्का करूं।'

'उसके बाद?'

'उसके बाद, तुम्हारे बारे में पूछती रही।'

'क्या पूछती थीं?'

'यही कि मिस्टर चन्द्रनाथ कैसे आदमी हैं, घर की स्थिति कैसी है।'

'तब तुमने क्या कहा ?'

'मैंने कहा बहुत अच्छे आदमी हैं, कविता करते हैं और "सिम्पैथिटिक नेचर" (सहानुभूति शील स्वभाव) के हैं।'

'हूँ; उस दिन से आये क्यों नहीं ?'

'फुर्सत नहीं मिली।' कहकर मदन चुप हो गया। फिर कुछ देर में बोला—मेरा सवाल जहाँ का तहाँ है ; कोई लाभ नहीं हुआ। समझ में नहीं आता क्या करूँ।

'क्यों, क्या शादी तय हो गई ?'

'तय करने एक सज्जन गये हैं; लेकिन उससे मुझे क्या ?'

'माधुरी तुम्हारा प्रस्ताव नहीं मानती ?'

'नहीं।'

'बड़ी हठी लड़की है।'

'हठी है न ? यही आपका भी अनुभव है। मैं उससे कहता था तो मानती न थी।' वह उदास चिन्तन की मुद्रा में था। कुछ देर में बोला--'शी विल रुइन मी (वह मुझे नष्ट करके छोड़ेगी)' और फिर उठने लगा।

'अरे बैठो।'

मदन बैठ गया।

'माधुरी की छोटी बहिन कैसी लड़की है ?'

'अच्छी है; कुछ ईर्षालु स्वभाव की है। लेकिन है स्नेह करने वाली।'

'हूँ। तुम्हारे प्रति उसका कैसा व्यवहार है ?'

'मुझे शक है कि वह भी मुझ से प्रेम करती है, लेकिन वह स्वीकार नहीं करती।'

'वह क्या कहती है ?'

कहती है "मैं आपको प्रेम करती हूँ—लेकिन एक बहिन की,

तरह," बाद में यह जरूर जोड़ देती है।...किन्तु वह मेरी मदद नहीं करती, उलटे मेरे और माधुरी के बीच में विघ्न खड़े करती है।

'मा से तुम्हारी और माधुरी की शिकायत भी कर देती होगी?'

'नहीं, ऐसा उसने कभी नहीं किया। इस मामले में तो उसने मदद ही की है।'

और फिर मदन ने यकायक कहा—तुम उसके साथ शादी करोगे! कर लो, अच्छी लड़की है।

'अरे, यह क्या सिर्फ मेरी इच्छा पर निर्भर करता है।'

'नहीं; मेरा खयाल है वे प्रस्ताव भेजेंगे; माधुरी जो मुझ से प्रश्न पूछ रही थी उसका और क्या मतलब हो सकता है?'

'लेकिन तुम तो कहते हो वह तुमसे प्रेम करती है?'

'हाँ...लेकिन मेरा अनुमान है कि उसका प्रेम माधुरी जैसा नहीं है। क्योंकि मैं माधुरी की ओर ज्यादा ध्यान देता हूं, इसलिये उसे ईर्षा होती है; इस ईर्षा को ही वह समझती है कि प्रेम है।'

प्रेम-सम्बन्धी प्रश्नों में मदन काफी अभिरुचि लेता है, और वहां उसका मस्तिष्क भी सूक्ष्मता से काम करता है। किन्तु माधुरी के स्वयं चन्द्रनाथ से सम्बद्ध प्रश्नों का अर्थ समझने में उसे इतनी देर क्यों लगी?

मदन की कुछ बातों से लगता है जैसे वह सीधा सादा प्रेमी मात्र है जिसके मस्तिष्क के कल-पुर्जे कुछ ढीले हैं; दूसरी बातों से लगता है कि उसकी बुद्धि पूर्णतया सामान्य अथवा सामान्य से कुछ अधिक है। माधुरी जैसी तीक्ष्ण बुद्धि की लड़की उससे प्रेम करती है इससे भी सिद्ध होता है कि वह प्रतिभाशून्य नहीं है। किन्तु अपनी बुद्धि का वह कुछ सन्दिग्ध उपयोग कर रहा है।

१३

एक दिन प्रकाशचन्द्र माथुर ने चन्द्रनाथ के घर पदार्पण किया।

चन्द्रनाथ प्रायः किसी के घर नहीं जाता, इसलिये कोई दूसरा भी उसके घर नहीं आता। ऐसा स्वभाव के ही कारण है, क्योंकि इन दिनों वह विशेष व्यस्त नहीं रहा है। नरेन्द्र से सम्बन्ध ही उसके इस नियम का अपवाद है। प्रकाशचन्द्र को देखकर उसे प्रसन्नता से अधिक विस्मय हुआ।

'बहुत दिनों से इधर आने का विचार था, लेकिन करते-करते आज आ सका हूं। मैं आपके काम में विघ्न तो नहीं डाल रहा हूँ?'

'अरे नहीं, ऐसा क्या काम होगा'

नहीं मैं जानता हूँ आप काफी व्यस्त रहते हैं। सच पूछो तो हमारे कालेज में असली अर्थ में "स्कालर" (विद्याव्यसनी विद्वान) आप ही हैं।'

चन्द्रनाथ संकोच से गड़ गया। सचमुच इन दिनों उसने कुछ भी पढ़ना-लिखना नहीं किया था।

'आपकी उस दिन की स्पीच मुझे बहुत पसन्द आई,' प्रकाश ने आंखों की गम्भीर नाटकीय मुद्रा के साथ कहा; लड़कों ने भी बहुत पसन्द की। प्रिन्सिपल भी प्रशंसा कर रहे थे। आपने जो सुन्दर और उदात्त का भेद किया वह एक नई चीज़ थी। उस दिन काफ़ी देर तक प्रिन्सिपल साहब के घर पर उसी की चर्चा होती रही।

चन्द्रनाथ को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। बोला—हरी जी का भाषण भी बहुत सुन्दर हुआ था।

'अरे, उसे छोड़िये', प्रकाश ने अवज्ञा-सूचक स्वर में कहा, 'वैसे भाषण तो यहां काशी में आये दिन सुनने को मिलते रहते हैं।'

प्रकाश के भाव से स्पष्ट था कि वह इस सम्बन्ध में आगे बात करने को तैयार नहीं है। नरेन्द्र की भांति वह भी हरी जी के दृष्टिकोण से सहानुभूति करने में असमर्थ है यह सोचकर चन्द्रनाथ चुप हो रहा।

'एक संस्कृत के स्कालर से यह आशा नहीं की जाती कि उसका दृष्टिकोण इतना मॉडर्न हो और वह हिन्दी साहित्य की ऐसी गहरी

जानकारी रखता हो', कहकर प्रकाश आकर्षक मुद्रा में मुस्कराया।

'आपने रोमाण्टिक काव्य का विशेष अध्ययन किया है?' चन्द्रनाथ प्रसंग बदलने की इच्छा से बोला। प्रकाश की प्रशंसा ने उसे अस्वाभाविक स्थिति में डाल दिया था।

'अध्ययन तो क्या किया, हाँ मैं रोमाण्टिक कवियों विशेषतः शैली और कीट्स का प्रेमी अवश्य हूं। इन्हें पढ़ाते समय ही अनुभव होता है कि वास्तव में काव्य पढ़ा रहे हैं।' प्रकाश के होंठों पर फिर पहले जैसी मुस्कराहट थी।

'रोमाण्टिक कवि मुझे भी प्रिय रहे हैं। लेकिन मैं अबतक ठीक से नहीं समझ पाया कि रोमाण्टिसिज़्म वास्तव में है क्या।'

'आह! न पूछिये; रोमाण्टिसिज़्म की परिभाषा नहीं हो सकती। वह केवल हृदय में महसूस करने की चीज़ है। एक लेखक के शब्दों में रोमाण्टिसिज़्म वह सितारा है जो रोता है; वह हवा है, जो क्रन्दन करती है; वह आकाश है जो आहें भरता है……'

रोमाण्टिसिज़्म का यह विवरण सुनकर चन्द्रनाथ मन-ही-मन मुस्कराया।

थोड़ी देर बाद प्रकाशचन्द्र ने उठते हुए कहा—अच्छा, अब फिर बातचीत होगी; एक दूसरे मित्र के यहाँ "इन्गेजमेन्ट" है। कभी समय मिले तो मेरे ग़रीबखाने पर आइयेगा।

'अच्छा……अवश्य चेष्टा करूँगा', चन्द्रनाथ ने बड़े संकोच से कहा।

प्रकाशचन्द्र के उसके पास आने का क्या उद्देश्य या मतलब था यह चन्द्रनाथ की बिल्कुल समझ में नहीं आया। कालेज-प्रवेश के दिन ही चन्द्रनाथ का उससे परिचय हुआ था, तभी से वह कालेज में प्रकाश के मुस्कराते दैनिक स्वागत अथवा प्रतिनमस्कार का अभ्यस्त हो गया है। उसने कभी इस व्यापार को, उसकी अतिरिक्त कृपा का चिन्ह नहीं समझा क्योंकि उसका प्रायः सभी के प्रति ऐसा

भाव रहता है। जिन हरीजी के आज वह कुछ विरुद्ध मालूम पड़ता था उनसे भी वह कालेज में उतना ही मीठा व्यवहार रखता है। पर आज उसके सहसा चन्द्रनाथ के घर आने और अप्रत्याशित प्रशंसा करने से उसे लगा कि यह अतिसंस्कृत युवक उस पर कुछ ज़्यादा मेहरबान है; इसके कारण का वह कुछ भी अनुमान न कर सका।

प्रकाशचन्द्र एक हॉस्टल का अध्यक्ष या सुपरिण्टेण्डेण्ट है और उसके पास ही एक छोटे किन्तु सुन्दर मकान में रहता है। कालेज के रास्ते में ही यह मकान है। शनिवार के दिन चन्द्रनाथ को अन्तिम घंटे में पढ़ाना पड़ता है; उस दिन कालेज से लौटते समय वह प्रकाश के घर पहुँच गया।

प्रकाश को कालेज से लौटे अभी प्रायः एक घंटा हुआ था, यह उसी ने बतलाया, और सहज मुस्कान से चन्द्रनाथ का स्वागत किया। फिर बोला—अभी कुछ मिनटों में मैं यह पत्र लिख दूं, फिर आपसे बातें होंगी।

'ज़रूर लिखिये', कहकर चन्द्रनाथ उसके बैठक-रूम का निरीक्षण करने लगा। वहां चार-पाँच कुर्सियों के अतिरिक्त दो मेजें थीं जिनमें एक पर कलमदान, दो सुन्दर छपे पैड, और दो-तीन कालेज के पाठ्य-ग्रंथ थे। दूसरी बड़ी मेज पर जो कोने में पड़ी थी, एक सितार रक्खा था। एक सुन्दर अलमारी में जिसका एक पट अधखुला था, पुस्तकें और मासिक-पत्र दिखाई दे रहे थे। कमरे के फ़र्श पर एक पुरानी दरी पड़ी थी। एक ओर को मसहरी लगी थी। दीवारों पर प्रकाश बाबू के तीन फ़ोटो जिनमें एक अकेला, और शेष मित्रों सहित थे, तथा चार चित्र, जिनमें दो प्राकृतिक दृश्यों के पेन्सिल स्केच थे, और दो विदेशी फिल्म स्टारों के फ़ोटो टंग रहे थे। कुल मिलाकर कमरा स्वच्छ और सुसज्जित था।

शायद प्रकाश को यह आभास था कि चन्द्रनाथ कमरे का

पर्यवेक्षण कर रहा है। पत्र समाप्त करके कहा—'बस अब मैं मुक्त हो गया, क्या कहूँ एक ज़रूरी पत्र था।' और यह कहकर उसने नौकर को आवाज़ दी।

'देखो, यह चिट्ठी तुरन्त लेटर बक्स में डाल आओ, और ग्वाले से कहना कि कल सवेरे पांच सेर दूध का प्रबन्ध कर दे, ज़रूर, कह देना पिछले रविवार की तरह न हो नहीं तो बाबू बहुत नाराज़ होंगे, समझा?'

नौकर 'जी हां' कहकर चल दिया। उसके जाने पर प्रकाश ने कहा—हॉस्टल को लेकर भी बड़ी परेशानी रहती है। फिर अपने हॉस्टल में सब बात असाधारण होती है। हमारे हॉस्टल जैसा भोजन आपको कहीं दूसरी जगह नहीं मिलेगा। खेलों में भी अपना हॉस्टल सर्वप्रथम है।

'आप सितार भी बजाते हैं?' चन्द्रनाथ ने कोने की ओर दृष्टि करके पूछा।

'हां, कुछ बजा लेता हूँ। संगीत से मुझे शुरू से ही बहुत शौक है। वास्तव में ललित कलाओं में अपनी विशेष रुचि है। और फिर जिसे संगीत और कला (चित्रकला) से प्रेम नहीं वह साहित्य का अध्यापक भी क्या होगा। यों कहने को तो अपने कालिज में पं० सीतानाथ चतुर्वेदी भी धुरन्धर साहित्यिक हैं।'

'चतुर्वेदी जी बड़े हँसमुख हैं', चन्द्रनाथ ने मुस्कराकर कहा।

'बड़े मजेदार आदमी हैं; उनके हास्यरस का पूरा आनन्द तो आपको हॉस्टल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर मिलेगा।'

थोड़ी देर में नौकर लौटकर आया; प्रकाशचन्द्र ने उससे कहा—जल्दी से एक "पॉट" चाय तैयार करो, और देखो (एक रुपया देते हुये) भंडारी की दूकान से ताजी बनी हुई मिठाई और नमकीन लेकर आओ।

चन्द्रनाथ इस आतिथ्य की सम्भावना से संकुचित हो उठा, पर

उससे कुछ कहते न बन पड़ा। उस दिन अपने घर पर वह प्रकाशचन्द्र की कोई भी खातिर नहीं कर सका था, जिसका एक कारण उसका वहाँ बहुत थोड़ी देर रुकना था, और दूसरा शिवसरन की शिथिल प्रकृति।

'आप यहाँ क्या अकेले ही रहते हैं?' उसने प्रकाश से बात करने की इच्छा से पूछा।

'हाँ, बात यह है कि परिवार को लेकर बड़ी झंझटें खड़ी हो जाती हैं जिन्हें बर्दाश्त करने का अपने को अभ्यास नहीं। फिर मुझे अकेले रहना प्रिय भी है; एकान्त में संगीत और साहित्य की साधना निर्विघ्न सम्पन्न होती है। अच्छा, आप भी तो अकेले ही रहते हैं?'

'मेरी पत्नी का दो वर्ष पहले देहान्त हो गया।'

'ओह! सुनकर बहुत दुःख हुआ। क्षमा करें, कोई बच्चा है?'

'हां, एक लड़का उसी समय पैदा हुआ था। आपके?'

'ओह; बच्चा होने में आपकी पत्नी की मृत्यु हो गयी', कहकर माथुर कुछ क्षण को खामोश हो गया। फिर यकायक ऐसे भाव से मानो वह किसी भूली बात का स्मरण कर रहा हो कहा—मेरे दो बच्चे हैं, एक लड़का लगभग तीन वर्ष का, और एक बच्ची छै या सात मास की।...अच्छा नरेन्द्र से आपका कब का परिचय है?'

'वे अपनी बहिन की शादी में इलाहाबाद गये थे, तभी थोड़ा-सा परिचय हो गया था।'

'समझा, मिस प्रेमलता की शादी में।'

'आप उन्हें जानते हैं?'

'भला प्रयाग-विश्वविद्यालय का कौन छात्र उन्हें नहीं जानता था... मैं उन दिनों एम० ए० प्रीवियस का विद्यार्थी था। आश्चर्य है कि तब आप से परिचय न हो सका।'

चन्द्रनाथ ने समझा था कि प्रकाशचन्द्र के परिचय करने के चाव में कोई अन्तरंग हेतु रहा होगा। यह सोचकर कि उस दिन किसी कारणवश प्रकाश खुलकर उससे बातें नहीं कर सका होगा, वह स्वयं

आज उसके घर चला आया था। पर आज भी प्रकाश ने कोई अन्तरंग बातचीत नहीं की। चाय-पानी के बाद उसने प्रकाश से कहा—यदि आपको असुविधा न हो तो थोड़ी देर सितार बजायें।

'नहीं-नहीं असुविधा क्या होती, बल्कि मुझे बड़ी प्रसन्नता होती; लेकिन बात यह है कि यह इन्स्ट्रूमेन्ट (यंत्र) जरा आर्डर में नहीं है; फिर कभी मौका रहेगा,' कहकर प्रकाश हलके स्वर से हंसा।

थोड़ी देर बाद चन्द्रनाथ चलने को उठा; प्रकाश भी उठ खड़ा हुआ और दर्वाजे तक चन्द्रनाथ के साथ आया। फिर उसने बड़े मधुर भाव से मुस्कुराते हुये हाथ ऊंचे उठा कर चन्द्रनाथ को नमस्कार किया।

चन्द्रनाथ ने इस स्नेह-प्रदर्शन के लिए मन-ही-मन कृतज्ञ महसूस किया।

१४

एक दिन मदन ने आकर उतावली के स्वर में चन्द्रनाथ से कहा—मैं एक ज़रूरी काम में आपकी मदद चाहता हूँ, करेंगे न!

'अरे, ऐसा क्या काम है? मेरे बस की बात होगी तो अवश्य मदद करूँगा। क्या फिर माधुरी को बुलवाना चाहते हो?'

चन्द्रनाथ की कल्पना में मदन को कोई दूसरा काम, जिसका माधुरी से सम्बन्ध न हो, हो ही नहीं सकता था।

'बुलवाने का सवाल नहीं है, उससे कुछ होगा भी नहीं। आपके कालेज में अंग्रेजी डिपार्टमेन्ट में जगह का "एडवरटाइज़मेन्ट" (विज्ञापन) हुआ है। मैंने अर्ज़ी देने का निश्चय किया है, लेकिन सिर्फ अर्ज़ी देने से कुछ होगा नहीं।'

'क्यों? बनारस के निवासी होने के नाते तुम्हारा कुछ दावा होना चाहिये, फिर यहीं के विश्वविद्यालय के सेकन्ड क्लास एम॰ ए॰ भी हो।'

'वह सब बेकार है। बात यह है कि कालेज के सर्वेसर्वा हैं उसके सेक्रेटरी साहब और वे मुझ से कुछ नाराज़ हैं क्योंकि एक बार म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव में मैंने उनका विरोध किया था।'

'किन्तु इससे क्या, चुनाव में विरोध करना तो उतना बड़ा अपराध नहीं है। आखिर आपकी योग्यता का ध्यान तो किया ही जायगा।'

'मुझे उम्मीद नहीं। इस बात में आप चाहें तो मदद कर सकते हैं।'

'मैं? भला मेरे हाथ में क्या है!'

'आप खुद ही नहीं; लेकिन दूसरों के ज़रिये से। मैंने सुना है कि प्रकाश बाबू आपके मित्र हैं; हरीजी भी आपका बहुत आदर करते हैं। यदि ये दोनों चाहें तो मेरी नियुक्ति करा सकते हैं।'

चन्द्रनाथ जिज्ञासु भाव से मदन को देख रहा था। मदन ने कहा—प्रकाश बाबू बहुत दिनों से सेक्रेटरी साहब के घर ट्यूशन पढ़ाते हैं; सेक्रेटरी साहब उन्हें बहुत मानते हैं। वे डिपार्टमेंट के हेड भी हैं। इसलिये उनकी सिफ़ारिश का जरूर असर होगा। हरीजी तो गवर्निंग बाडी (प्रबन्ध समिति) के मेम्बर ही हैं।'

'मेरा इन दोनों में से किसी से भी उतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है, मदन बाबू; किन्तु फिर भी उनसे कहकर देखूँगा। तुम सेक्रेटरी साहब से खुद क्यों नहीं मिल लेते।'

'बाद में मैं उनसे मिल लूंगा, पर अभी नहीं।'

कुछ देर खामोशी रही। फिर मदन बोला—माधुरी कहती है कि तुम पहले अपनी स्थिति मजबूत कर लो ताकि जब मैं तुम्हारे पास आऊँ तो कोई मुझे तुमसे छीन न सके।······कम से कम कालेज में प्रोफेसर तो हो ही जाओ।

चन्द्रनाथ ने अब समझा कि कालेज की नौकरी मदन के लिये अपने में प्राप्य नहीं है, वह माधुरी की प्राप्ति का साधन मात्र है।

बोला—माधुरी ज़मींदार की लड़की है, और सोचती है कि सामाजिक स्थिति ही सब कुछ है। भला इस युग में यह कहाँ सम्भव है ?

'लेकिन फिर भी कालेज में नौकर हो जाना तो अच्छा ही होगा''''अगर आप हरी जी और प्रकाशबाबू से मेरे लिये दो शब्द कह दें......'

'मैं उनसे अवश्य आपके लिये कहूँगा। लेकिन देखिये, आपको कुछ समय पढ़ने-लिखने में भी देना चाहिये। अध्यापक का मुख्य काम है पढ़ना और पढ़ाना।'

'मैं कोई खराब विद्यार्थी नहीं था, चन्द्रनाथ बाबू ; और अब भी ट्यूशन पढ़ाने में मेरा नाम है।'

'नहीं, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।'''मैं कह रहा था कि जैसे भी हो, जीवन में अध्ययन की आदत अच्छी चीज है।'''तो ट्यूटर (प्राइवेट शिक्षक) के रूप में आपका नाम है ?'

'माधुरी के घर बार-बार नियुक्त किये जाने की एक वजह यह भी है,' मदन ने सन्तुष्ट हास से कहा।

अगले दिन चन्द्रनाथ ने अध्यापक-रूम में खड़े हुये प्रकाशचन्द्र से कहा—मुझे आपसे कुछ ज़रूरी बात करनी है।

प्रकाश के चेहरे पर यकायक व्यस्त होने का भाव आ गया। कहा—अच्छा, मुझे जरा आवश्यक काम है ; अभी दस मिनट में बात होगी। और हाथ की घड़ी पर दृष्टि डालता हुआ वह बाहर चला गया। वहां वह एक विद्यार्थी से बातें करने लगा, शायद एक निकट भविष्य में होने वाले "मैच" के सम्बन्ध में। उसके हाथ आगे की ओर बंधे थे, और माथे पर रेखायें बन रहीं थीं, जैसे किसी बड़ी समस्या से उलझ रहा हो। साथ ही कभी-कभी इधर-उधर भी आँखों की कोरों से देख लेता था जैसे मदन व्यक्तित्व अथवा बात करने की मुद्रा का प्रभाव देख रहा हो।

कुछ देर बाद आकर वह चन्द्रनाथ से दो कुर्सियों का बीच देकर खड़ा हो गया और उसे लक्ष्य करके बोला—हां मिस्टर चन्द्रनाथ, अब आप इत्मीनान से अपनी बात कह सकते हैं।

कमरे में दो-तीन अध्यापक और भी थे और चन्द्रनाथ चाहता था कि कोई तीसरा व्यक्ति उनकी बातें न सुने। अतः कुर्सियों का अन्तर पार करके वह प्रकाश की बगल में पहुँच गया।

'मेरे एक मित्र हैं, मदनमोहन प्रसाद; वे आपके विभाग में खाली जगह के लिये अर्जी दे रहे हैं। सुना है आपका कालेज के सेक्रेटरी साहब से काफी परिचय है; उनकी मदद कर सकेंगे ?'

प्रकाश बाहरवाली मुद्रा में ही हाथ बांधे खड़ा था। उसका चेहरा सामने मेज की ओर और कान चन्द्रनाथ की दिशा में था। पहले की भाँति ही माथे पर रेखायें बन रही थीं। गम्भीर भाव से मुख को थोड़ा-सा घुमा कर कहा—सेक्रेटरी साहब से अपना परिचय अवश्य है, और गाढ़ा परिचय है; लेकिन इस मामले में उनकी सफलता की आशा कम है; क्यों कि वास्तव में सेक्रेटरी साहब उनसे नाराज़ हैं।

'नाराज क्यों हैं ?' चन्द्रनाथ ने अज्ञान के भाव से कहा।

'यह एक लम्बा किस्सा है', प्रकाश ने स्वर कुछ ऊंचा करके कहा, 'वास्तव में मदनमोहन कुछ बेवकूफ किस्म के आदमी हैं। एक बार म्यूनिसिपैल्टी के 'इलेक्शन' में आपने सेक्रेटरी साहब का काफी विरोध किया था।...पिछले वर्ष भी वह इस कालेज में उम्मीदवार थे।'

'इलेक्शन का विरोध ऐसी गम्भीर बात तो नहीं है। खैर, जहां तक हो सके आप उनके लिये सेक्रेटरी साहब से कहें। वे अंग्रेजी के सेकन्ड क्लास एम० ए० हैं और यहीं के निवासी हैं।'

'मैं जानता हूँ' प्रकाश ने मुस्कराते हुये कहा, 'और मुझे यह भी मालूम है कि वे एक सफल प्राइवेट ट्यूटर हैं। लेकिन सफल ट्यूटर

होना एक बात है और कालेज का सफल प्रोफेसर होना दूसरी।........ एक और बात है—पिछले वर्ष मदनमोहन के सम्बन्ध में एक दूसरी अफ़वाह भी उड़ी थी, मेरा मतलब है उनके चरित्र के सम्बन्ध में। इसलिये भी राय साहब उनकी नियुक्ति के विरुद्ध थे।'

'फिर भी मैं भरसक प्रयत्न करूँगा,' प्रकाश ने अन्त में कहा।

प्रकाशचन्द्र से बात करके चन्द्रनाथ को बड़ी निराशा हुई। उसे प्रकाश के घर से चलते समय का दृश्य याद आया। कहाँ वह स्नेह-प्रदर्शन और कहाँ इतनी रुखाई। चन्द्रनाथ को उससे कुछ काम है यह जान पाते ही प्रकाश के रुख में सहसा कितना परिवर्तन हो गया! तब क्या शिष्टता और मीठा व्यवहार सिर्फ दिखावे के लिये है?

मदन के सम्बन्ध में हरीजी से बात करने वह ज्यादा विश्वास के साथ गया, और तब उसे महसूस हुआ कि इस युग में बाहर और भीतर की एकता कितनी दुर्लभ हो गई है।

हरीजी ने कहा—प्रबन्ध-समिति में हम लोग यथाशक्ति योग्यतम व्यक्ति को लेने की कोशिश करते हैं।...अकेले सेक्रेटरी साहब किसी को नियुक्त होने-न-होने से नहीं रोक सकते। और अब क्योंकि आपने कह दिया है, मैं श्री मदनमोहनप्रसाद का विशेष ध्यान रखूंगा।

'वे गत वर्ष भी उम्मीदवार थे', चन्द्रनाथ ने कहा।

'मुझे मालूम है', हरीजी ने आश्वस्त स्वर में कहा।

'सम्भव है इस सम्बन्ध में आपको सेक्रेटरी साहब का विरोध करना पड़े; सुना है बहुत बड़े आदमी हैं।'

'मैं विरोध करने से नहीं डरता; लेकिन इसकी नौबत नहीं आयेगी। सेक्रेटरी साहब बड़े आदमी है तो अपने घर के लिये; प्रबन्ध-समिति में जैसे अन्य सदस्य हैं वैसे वे हैं।'

हरीजी को अपनी शक्ति की चेतना है और उसका उपयोग करने लायक दृढ़ता भी यह जानकर चन्द्रनाथ को विस्मयपूर्ण सन्तोष हुआ।

और क्योंकि हरीजी का प्रिन्सिपल पर भी काफी प्रभाव है, इसलिये उसे मदन की नियुक्ति सम्भव दिखाई पड़ने लगी।

१५

एक छुट्टी के दिन लगभग पाँच बजे चन्द्रनाथ ने सरोजिनी को बुलवाया। हाल ही में उसने उसके लिये एक नई गुड़िया खरीदी थी और वह जानना चाहता था कि सरोजिनी को वह पसन्द है या नहीं। सरोजिनी आज आई तो कुछ उदास-सी थी। चन्द्रनाथ ने उससे घर की बातें पूछनी शुरू कीं।

'नरेन्द्र क्या कर रहे हैं?'

'पढ़ रहे हैं, और क्या करेंगे।'

'बहुत पढ़ते हैं, है न? और माताजी क्या कर रही हैं?'

'माताजी चुपचाप लेटी हैं।'

'और मुनिया?'

'मुनिया उनके पास खेल रही है।...मुनिया अब बहुत दंगा करने लगी है। जरा देर खाट पर अकेले छोड़ दो तो किनारे आकर गिर पड़ती है। रात तो सोते-सोते गिर पड़ी।'

'हूँ, मुनिया को अक्ल नहीं है; भला नीचे गिर जाने से कोई फ़ायदा है!'

'बिलकुल अकिल नहीं है', सरोजिनी ने मुक्त कंठ से हंसकर कहा, 'और बड़ी गन्दी है; मुत्ती करती है तो उसी में हाथ दे देती है और फिर वही हाथ मुंह से लगा लेती है...आज सवेरे उसने खाट में ही टट्टी कर ली; माताजी चौके में थीं और मैं पढ़ रही थी। बड़ी परेशानी हो गई।' फिर कुछ रुककर कहा—थोड़ा-थोड़ा सरकने भी लगी है। क्या करूँ हर वक्त मुझे ही उसका ध्यान रखना पड़ता है; माताजी काम में रहती हैं और बाबूजी कहते हैं कि ले जाओ हमारे काम में डिस्टर्ब करती है।'

और थोड़ी देर में उसने कहा—आज माताजी बाबूजी से गुस्से हो गईं।

'क्यों, गुस्से क्यों हो गईं?'

'बाबूजी ने नई दाई के लिये कहा कि सुन्दर है, इससे माताजी नाराज हो गईं।'

'तुम्हारे घर कोई नई दाई काम करने लगी है?'

'हां, उसके एक लड़का भी है श्यामू; मुझसे कुछ ही छोटा होगा।'

'तो इतनी बात से माताजी नाराज़ क्यों हो गईं?'

'क्या जाने', कहकर सरोजिनी उठकर खिड़की में से पीछे की ओर झांकने लगी।

सरोजिनी जब बातें करती है तो उसका सिर और दृष्टि बड़े आकर्षक ढंग से स्पन्दित होते हैं। उसका स्वर भी बड़ा प्यारा लगता है। अतः चन्द्रनाथ चाहता है कि वह उससे बातें ही करती रहे।

'यहाँ आओ सरोज, देखो हमने तुम्हारे लिए एक नई चीज खरीदी है।'

'क्या...दिखलाइये न,' कहती हुई सरोजिनी लौटी। चन्द्रनाथ ने पास के बक्स में से गुड़िया निकाली।

'हाँ अच्छी है, बहुत अच्छी है; साड़ी कैसी बढ़िया है और ब्लाउज़ भी पहने है···वाह गुड़िया रानी!' कहकर उसने गुड़िया को गोद में बिठा लिया। और फिर कहा—'बड़ी बढ़िया गुड़िया है, इसे कौन बनाता है?'

'यह बम्बई से बनकर आती है, वहाँ एक आदमी है जो···'

'बम्बई से! बाप रे, इतनी दूर से! माता जी गुड़िया बनाती है वह इतनी अच्छी नहीं होती।···कमला के पास भी एक अच्छी-सी गुड़िया है, उस गुड़िया का गुड्डा भी है।···तुमने गुड्डा नहीं खरीदा? बम्बई में गुड्डा नहीं बनता क्या?'

'वहां सिर्फ गुड़ियें बनती हैं; हमें गुड़िया ही पसन्द है।'

सरोजिनी का ध्यान दूसरी ओर चला गया था; वह गुड़िया के अवयवों की परीक्षा कर रही थी।

'अच्छा आदमी को कौन बनाता है, भगवान बनाते हैं? माता जी कहती हैं दुनिया को भगवान ने बनाया है लेकिन भगवान तो मिट्टी के होते हैं, जैसे विश्वनाथ जी हैं; वह दुनिया कैसे बनाते हैं?'

चन्द्रनाथ चकित होकर सरोजिनी को देखने लगा। बोला—भगवान मिट्टी के नहीं होते, उनकी मूर्ति मिट्टी की होती है।

'मैं जानती हूँ। श्यामू कह रहा था हमने भगवान देखे हैं। मैंने कहा भगवान मिट्टी के नहीं होते, उन्हें कोई नहीं देख सकता। आदमी पैदा करने के भगवान दूसरे होते हैं, पूजा करने के दूसरे। श्यामू कहता है भगवान आदमी जैसे होते हैं; उनके हाथ होते हैं, गोड़ होते हैं...'

'नहीं, भगवान आदमी जैसे नहीं होते; भगवान सब जगह हैं।'

'हां, जैसे हवा सब जगह होती है, तभी न हम सांस लेते हैं। मास्टर साहब कहते थे कि बिना हवा के कोई सांस नहीं ले सकता।' फिर कुछ रुक कर, 'लेकिन भगवान आदमी को कैसे बनाते हैं? उंगलियां भगवान ने कैसे बनाई? आँख कैसे बनाई, कान कैसे बनाये, और बाल कैसे बनाये?'

चन्द्रनाथ—सो तो भाई हम नहीं जानते।

'तुम भी नहीं जानते! अच्छा, बाबू जी जानते हैं?'

'यह तुम उन्हीं से पूछना।'

'बाबू जी हमारे बहुत बातें जानते हैं, वे बहुत-सी किताबें भी पढ़ते हैं। तुम्हारे पास तो बहुत थोड़ी किताबें हैं।

चन्द्रनाथ मुस्कुराने लगा।

थोड़ी देर बाद सरोजिनी को साथ लिये वह नरेन्द्र के घर पहुँचा। नरेन्द्र घर पर नहीं था, कहीं बाहर निकल गया था। चन्द्रनाथ ऊपर

पहुँचा। देखा कि सावित्री बैठी बर्तन मांज-धो रही है।

'अरे, यह क्या। क्या आज दाई नहीं आई?' चन्द्रनाथ ने आश्चर्य के साथ कहा।

'क्या जरूरत है दाई की जब कि मैं घर में मौजूद ही हूँ।' सावित्री का चेहरा श्रान्त और विशेष उदास था; लगता था जैसे वह रोती रही है।

'यह आज कैसी बातें कर रही हो; नरेन्द्र से झगड़ा तो नहीं कर लिया?'

'मैं भला किसी से किस बल पर झगड़ा करूंगी। झगड़ा करके रहूँगी कहां?'

'आप बहुत नाराज़ मालूम पड़ती हैं; नरेन्द्र कहां हैं?'

'होंगे कहीं, जहां उनका मन लगता होगा; घर में रहकर क्या मेरी मनहूस सूरत देखते रहेंगे।'

चन्द्रनाथ अवाक् रह गया; सावित्री आज कैसी बातें कर रही है। अवश्य ही उसे सरोजिनी से आभास मिला था कि पति-पत्नी में कुछ खटपट हुई है, पर वह इतनी दूर तक पहुँच चुकी है यह उसने अनुमान नहीं किया था। बोला—छोटी-छोटी बातों पर इतना नाराज़ नहीं होना चाहिये।

'आप नहीं जानते, यह छोटी बात नहीं है। उन्हें ज्यादा खूबसूरत बीवी चाहिये जो फैशन से रहना जानती हो। कोई पूछे कि ब्याह किया था तो क्यों नहीं देखा......'

'अरे तो आप में ऐसी कौन खराबी है।'

'उनकी नज़र में मुझ में खराबियां ही खराबियां हैं। सुन्दर मैं नहीं, रहन-सहन मेरी ठीक नहीं। वह तो चाहते हैं कि कल के आते मैं आज मर जाऊँ, पर क्या करें बस नहीं चलता।' यह कहते हुये सावित्री के मलिन मुख पर क्षण भर को विजय की चमक उठी। फिर घृणा-मिश्रित गर्व से बोली—और मेरे बिना काम भी नहीं चलता; यह

भी नहीं कि साल-छै महीने मायके छोड़ दें।

इसे न छोड़ सकने का क्या रहस्य है यह चन्द्रनाथ उस समय नहीं समझ सका। किन्तु सावित्री के मुख की वह घृणा-रेखा बहुत दिनों तक उसके मस्तिष्क पर अंकित रही।

थोड़ी देर में नरेन्द्र आया; चन्द्रनाथ को उसने नीचे ही बुला लिया।

चन्द्रनाथ ने सोचा था कि सावित्री के प्रति दुर्व्यवहार के लिये वह नरेन्द्र को आड़े हाथों लेगा, किन्तु नरेन्द्र ने उसका कुछ ऐसे मीठे भाव से स्वागत किया कि उसे बरबस बातचीत दूसरी दिशा में चलानी पड़ी।

'सरोजिनी कह रही थी नरेन्द्र, कि तुम हर समय पढ़ने-लिखने में लगे रहते हो, यहाँ तक कि छोटी मुनिया को दिन में दस-बीस मिनट भी नहीं देते। भला इतना पढ़ने का कौन तुक है? जीवन की उष्णता का भी कुछ अनुभव करना चाहिये। गणित के सूत्र ही सब कुछ नहीं हैं।'

नरेन्द्र ने इत्मीनान से सिगरेट जलाया और कश खींचते हुए कहा—आजकल एक समस्या से उलझ रहा हूँ; बात यह है कि मैं जल्दी डी० एस० सी० की डिग्री ले लेना चाहता हूँ ताकि इस थर्ड रेट (तीसरी श्रेणी) कालेज से छुटकारा पा सकूँ।

'क्या सचमुच अपना कालेज इतनी खराब संस्था है?'

'और खराब संस्था किसे कहते हैं। जहाँ के साहित्य के अध्यापक बीसवीं सदी में मध्ययुगीन मनोवृत्ति पर नाज़ करते हैं, चन्दन और तिलक लगाकर छात्रों में भक्तिभाव उत्पन्न करते हैं; मज़े में "फ़ॉरवर्ड" का "फारवर्ड" उच्चारण करते हैं; और पुराने टाइप की अलंकृत अंग्रेजी बोलकर धुरन्धर स्कालर होने की ख्याति पा जाते हैं।'

अन्तिम कटाक्ष प्रकाशचन्द्र पर था; हाल ही में उनका एक अंग्रेजी कवि पर व्याख्यान हुआ था। चन्द्रनाथ ने कहा—अरे

भाई ! यह कौन कहता है कि कालेज के अध्यापकों से ही सम्बन्ध रक्खो, काशी में बौद्धिक सम्पर्क तो दुर्लभ नहीं है।

'हाँ, गीता और वेदान्त पर लेक्चर झाड़नेवाले भी काफ़ी संख्या में मिल सकते हैं।' फिर कुछ रुककर कहा—'बात यह है कि मैं जल्दी-से-जल्दी किसी विश्वविद्यालय में घुस जाना चाहता हूँ और वह सिर्फ इसीलिये नहीं कि मैं ऊँचे बौद्धिक सम्पर्क का भूखा हूँ—गणित में सबसे अलग रहकर भी काम हो सकता है—बल्कि इसलिये भी कि वहाँ आर्थिक "प्रॉस्पेक्ट्स्" रहते हैं और प्रतिभाशाली व्यक्ति "लाइम लाइट" (ख्याति के आलोक) में आ जाता है।···मैं तो तुम्हें भी यही राय दूँगा कि किसी तरह "डाक्टरेट" के लिये थीसिस तैयार कर डालो।'

'ना भाई, मुझसे रिसर्च न होगी। जीविका के लिये इतना कर लिया यही क्या थोड़ा है। ईश्वर ने उतना "डिसिप्लिन्ड" (नियंत्रित) मस्तिष्क नहीं दिया है।' कुछ देर बाद उसने विषय बदलते हुये कहा—नरेन्द्र, तुम्हें अपनी पत्नी से कुछ ज्यादा अच्छा व्यवहार करना चाहिये।

नरेन्द्र—मुझसे पत्नी का जिक्र मत करो ; वह एकदम मूर्ख है, स्टूपिड।

चन्द्रनाथ—कैसी गड़बड़ बातें करते हो।

'मैं तुमसे साफ कहता हूँ, मिस्टर चन्द्रनाथ, मैं उससे ऊब गया हूँ। उसे इतनी बुद्धि तो है ही नहीं कि थोड़ा-सा मज़ाक़ समझ ले। कल सुबह से एक नई दाई नियुक्त की गई है ; सवेरे मेरी उस पर नज़र पड़ी थी। मैंने कहा—"दाई तो सुन्दर छोटी है", बस इतनी बात पर उनके गाल फूल गये, नाराज़ हो गई और न जाने क्या-क्या बड़बड़ाने लगी। और अब देखता हूँ तुमसे भी शिकायत की।'

'क्या सिर्फ इतनी ही बात थी?'

'हाँ, बस यही बात थी, और क्या।'

'मैं समझता हूँ कि विना पिछले कटु इतिहास की पृष्ठभूमि के वे सिर्फ़ इतने से नाराज़ न होतीं।'

'असलियत यह है कि पहले मैं उनसे काफी "एटैचड" (आसक्त) था, अब वैसा नहीं हूँ। शी हैज़ सीज़्ड टु एट्रैक्ट मी (अब वह मुझे आकृष्ट नहीं करती)'

'लेकिन ऐसा क्यों है ? ऐसा नहीं होना चाहिये।'

'फैमिलियारिटी ब्रीड्स कन्टैम्प्ट (अति परिचय से अवज्ञा होती है) यह प्रकृति का नियम है। अब उनमें कोई नयापन नहीं रह गया है।'

'देखो जी यह नियम प्रेम के क्षेत्र में नहीं चलना चाहिये। इसका अर्थ तो यह हुआ, कि कोई किसी को बहुत दिनों प्यार करते नहीं रह सकता। और हर दो-तीन वर्ष बाद प्रेम का पात्र बदल जाना चाहिये।'

'बिलकुल यही ; लेकिन मेरा विश्वास है कि चतुर पत्नी लगातार अपने को नया बनाये रख सकती है।'

'बनाव-शृङ्गार से ?'

'सिर्फ उसी से नहीं ; वह कभी पति को अपने से अतिपरिचित होने ही न देगी।'

'इसके विपरीत मेरा विचार है कि पूर्ण परिचय के बिना पूर्ण प्रेम संभव ही नहीं है...तुम वास्तव में एक भारतीय नारी के पूर्ण समर्पण का महत्व समझ ही नहीं सकते।'

'इसके अलावा', नरेन्द्र ने लापरवाही के भाव से कहा, 'शी इज़ टू पैसिव (वह बहुत शिथिल-प्रकृति है) ; समझे ?'

चन्द्रनाथ ने प्रश्न-सूचक भाव से उसे देखा।

नरेन्द्र—मैं समझता था तुम साहित्यिक हो कुछ समझते होगे ; लेकिन तुम बहुत 'सिम्पिल' (सरल-बुद्धि) हो।

चन्द्रनाथ ने नरेन्द्र का संकेत न समझा हो, सो नहीं ; पर वह उससे इतना चकित था कि उसे कुछ कहने को नहीं सूझ रहा था। यह नरेन्द्र कितना निर्लज्ज और साहसी है !

बोला—देखो नरेन्द्र, यह सब फिजूल की बातें हैं। विशेषतः बच्चों के सामने पति-पत्नी में इस तरह का झगड़ा होना बड़ी भद्दी बात है।""भला सरोजिनी मन में क्या समझती होगी। क्या-क्या तो वह मुझसे कह रही थी।

सिगरेट के आखिरी तीन-चार कश खींच कर उसे फेंकते हुये नरेन्द्र ने कहा—क्या तुम सचमुच यह विश्वास करते हो कि विवाह के बाद पुरुष को किसी दूसरी स्त्री से प्रेम नहीं करना चाहिये ?

चन्द्रनाथ—मैं सोचता हूँ कि बच्चों के रहते पति-पत्नी में झगड़ा या विच्छेद होना वाञ्छनीय नहीं।

नरेन्द्र—इसका मतलब यह हुआ कि हम बच्चों के लिए ही जियें, अपने व्यक्तिगत आनन्द की परवाह न करें।

चन्द्रनाथ—आपका प्राणिशास्त्र भी तो यही कहता है; जीवन की परम्परा बनाये रखना ही जीवधारियों का लक्ष्य है।

नरेन्द्र—लेकिन यह क्या ज़रूरी है कि सब-कुछ जानते हुये व्यक्ति अपने को अपनी जीवयोनि की सुरक्षा का साधनमात्र बन जाने दे ? मेरे बाद क्या होगा इसकी चिन्ता में क्या करूँ ? क्यों मैं मानव जाति के भविष्य के लिये अपने मौजूदा आनन्द को छोड़ूँ ? क्यों न मैं आज इसी क्षण के लिये जिन्दा रहूँ ? मेरी बला से कल बच्चों का और दूसरों का कुछ भी हो—ऑफ्टर मी द डिल्यूज !

चन्द्रनाथ--तुमसे बहस करने से कोई फायदा नहीं।"'कृपा करके एक भारतीय नारी से जो दिन-रात तुम्हारी सेवा करती और तुम्हारे ही लिये जीती है, और कुछ नहीं तो कृतज्ञता के नाते, भलेमानुसों का-सा व्यवहार किया करो।

'मैं न तो विश्वास ही करता हूँ और न चाहता ही हूँ कि कोई मेरे लिये जिये।'

'जी हाँ, तभी चाय मिलने में जरा-सी देर हो जाने पर दिमाग़ का पारा चढ़ जाया करता है।'

'जब तक पत्नियाँ अपने भरण-पोषण के लिये पतियों पर निर्भर रहेंगी तब तक उन्हें उनका काम करना ही पड़ेगा।....मैं नहीं समझता कि इसमें शिकायत की गुंजायश है।'

'पति-पत्नी के सम्बन्ध का तुम्हारा यही आदर्श है?'

'सवाल मेरे आदर्श का नहीं, वस्तुस्थिति का है। पत्नियों को यह बात समझनी चाहिये, यदि वे अभी नहीं समझती हैं। और मैं तो इस बात के लिये तैयार हूँ कि वे यदि मुझसे सन्तुष्ट नहीं हैं तो सम्बन्ध-विच्छेद कर लें।'

'हूँ; ऐसी बातें तुम उनसे किया करते हो?'

'कभी-कभी', नरेन्द्र के स्वर में व्यंग्य-मिश्रित लापरवाही थी।

'भला सम्बन्ध-विच्छेद होने पर—जिसकी फ़िलहाल क़ानून इज़ाज़त नहीं देता—बच्चे कहां जायँगे, किसके साथ रहेंगे?'

'बच्चे वे रख सकती हैं, मुझे उनका मोह नहीं है।'

'तुम्हें किसी का मोह भी है..., न जाने ईश्वर ने तुम्हें किस धातु से गढ़ा है।'

नरेन्द्र-(हंसकर)—शायद ईश्वर ने मुझे गढ़ा ही नहीं है।... असल बात यह है कि बच्चों का पिता से कोई नैसर्गिक सम्बन्ध नहीं होता। दुनिया में ऐसी जातियां रही हैं, और सौभाग्य से आज भी हैं, जिनमें कुटुम्ब माता में केन्द्रित होता है। उसमें पिता का कोई स्थान नहीं होता; यहाँ तक कि पिता यह भी नहीं जानता कि सन्तान की उत्पत्ति में उसका कोई हाथ है; और बच्चे मा और मामा की सम्पत्ति के माने जाते हैं।

'तुम कहना चाहते हो कि उन जातियों में पिता को बचों से स्नेह ही नहीं होता? क्या यह सम्भव है।'

'स्नेह हो सकता है, लेकिन उसका कारण यह चेतना नहीं होती कि वे उसके अपने बच्चे हैं बल्कि यह कि वे उसकी प्रेमिका के बच्चे हैं। ऐसा स्नेह तो किसी दूसरे की सन्तान से भी सम्भव है।'

'किन्तु सभ्य देशों में तो पुरुष इतने अबोध नहीं हैं; वहां बच्चों को पिताओं से कैसे अलग किया जा सकता है।'

'अलग करने में मैं कोई बाधा नहीं देखता, यदि झूठी भावुकता को बीच में न आने दिया जाय। हमारे समाज में पिता के दो ही मुख्य काम होते हैं, बच्चों की रक्षा करना और उनके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होना। ये दोनो ही काम बखूबी सरकार द्वारा अंजाम दिये जा सकते हैं, जैसा कि काफी हद तक रूस आदि सभ्य देशों में होता है। सच पूछो तो पिचानवें फी-सदी अपढ़ या बेवकूफ पिताओं की अपेक्षा राज्य कहीं अच्छा अभिभावक बन सकता है।'

'इस तर्क से तो शिशुओं को माताओं से अलग करना भी बुरा न होगा।'

'मैं इसमें कोई आपत्ति नहीं देखता। आपके अध्यात्मवादी दार्शनिक प्लेटो ने तो साफ़ ही लिखा है कि बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति समझे जाने चाहियें। मेरा खयाल है कि बच्चों की झंझट दूर हो जाने पर लोग ज़्यादा अच्छी तरह और ज़्यादा काम कर सकेंगे।'

सरोजिनी नीचे आई हुई है और नरेन्द्र से कह रही है कि—'बाबू जी, माता जी पूछ रही हैं कि खाना खाने आप ऊपर चलेंगे या मैं नीचे ले आऊँ।'

'मेरे खाने की फिक्र पड़ गई और चन्द्रनाथ बाबू से चाय तक के लिये नहीं पूछा,' नरेन्द्र ने रूखे स्वर में कहा।

'चलो, यह अभी ऊपर आ रहे हैं', चन्द्रनाथ ने सरोजिनी से कहा।

'और आपको भी बुलाया है', कहकर सरोजिनी ऊपर चलने लगी।

कभी-कभी लगता है कि, शायद काम के भार से, सरोजिनी की चपलता बहुत कम हो गई है। विशेषतः आज वह जब से घर आई है तब से बड़ी गम्भीर दिखाई दे रही है, जैसे उसे पद-पद पर डांट या मार खाने का भय हो। चन्द्रनाथ जानता है कि नरेन्द्र सरोजिनी को

प्रायः कभी नहीं पीटता, लेकिन कुछ दिनों से बच्ची की ओर असावधानी दिखाने के अपराध में सावित्री उसे कभी-कभी थप्पड़ लगा देती रही है। एक दिन चन्द्रनाथ ने उससे शिकायत भी की थी। उत्तर में सावित्री ने कहा था—'क्या करूँ अकेले काम करते-करते परेशान हो जाती हूँ। यह लड़की भी खेलना पसन्द करती है, मुनिया की रखवाली करना नहीं। खास तौर से जब वह रोती होती है तो सरोजिनी उसे बिल्कुल नहीं रखना चाहती।'

सरोजिनी के चले जाने पर चन्द्रनाथ ने नरेन्द्र से कहा—तुम्हें यह लड़की प्यारी नहीं लगती, आश्चर्य है।

नरेन्द्र—मैं तुम्हारी तरह भावुक नहीं हूँ; भला सिर्फ मेरे प्यार करने से सरोजिनी का क्या फायदा होगा यदि मेरे पास इतने साधन न हों कि उसके व्यक्तित्व का ठीक से विकास कर सकूं!

चन्द्रनाथ—मेरा विचार है कि तुम्हारे प्यार से स्वयं सरोजिनी का ही नहीं, तुम्हारा भी फायदा है! पारस्परिक प्यार से जो आनन्द मिलता है वह क्या कम लाभ है? क्या उसका मानवता के लिये कोई उपयोग नहीं है? राज्य बच्चे को आराम दे सकता है, सुविधायें दे सकता है, लेकिन वह उसे उस निगूढ़ प्रेम की शिक्षा कहाँ से देगा जो मा-बाप और सन्तान में होता है? और जो पुरुष बच्चों की ओर से माया-ममता शून्य है वह कहाँ तक एक या अधिक प्रियतमाओं को प्यार कर सकेगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। उसकी सहृदयता का लोप एक खास दिशा में ही तो नहीं होगा।

नरेन्द्र—अच्छा भई चलो, अब ऊपर चलें; जोर की भूख लगी है। जरा मिहरबानी करके उन्हें समझा देना कि छोटी-छोटी बातों का बतंगड़ न किया करें।

१६

घर पहुँचकर चन्द्रनाथ बरबस अपने शिशु सुधीर के बारे में

सोचने लगा। पहली बार जब वह प्रयाग से लौटा था तो सुधीर प्रायः तीन-चार मास का था; दूसरी बार वह लगभग वर्ष भर का हो चुका था। क्यों उन दिनों, पूर्व परिचय के अभाव में, उसने सुधीर के प्रति विचित्र आकर्षण और ममत्व का अनुभव किया? क्यों वह मन-ही-मन चाहता कि सुधीर उसके पास आये? क्या यह भावना इस बात का प्रमाण नहीं थी कि पिता का सन्तान से एक नैसर्गिक सम्बन्ध होता है?

उसे सरोजिनी भी बहुत प्रिय है, रमेश भी और सरला भी; वे बालक भी उससे प्रेम करते हैं। पर न जाने सुधीर के प्रति उसके मनोभाव में क्या विशेषता है जिसका उतना तीव्र अनुभव अन्यत्र नहीं होता, और न जाने क्यों, उसके खिंचे रहने के बावजूद, सुधीर उसके प्रति गहरे स्नेह का प्रदर्शन करता है।

और आज यदि सुशीला जीवित होती तो, उससे पूर्ण सन्तुष्ट न होने पर भी, क्या वह उसका परित्याग कर सकता? वह स्वयं सुधीर को छोड़ सकता, अथवा क्या सुशीला ही ऐसा कर सकती? और क्या सुधीर का सामान्य प्रेम उन दोनों को ही निकट न खींचे रहता?

दूसरे दिन, अकेलेपन से ऊबकर, उसने फिर सरोजिनी को बुलवाया। उसने आकर खबर दी कि—'रात बाबूजी ने फिर माताजी को डाँटा था और माताजी बहुत देर तक रोती रही थीं।'

सुनकर चन्द्रनाथ को नरेन्द्र पर बहुत रोष हुआ। सरोजिनी से कहा—'तुम्हारे बाबूजी को अक्ल नहीं है।' फिर पूछा, 'तुम्हें नरेन्द्र ज्यादा अच्छे लगते हैं या माताजी?'

सरोजिनी ने दबे स्वर में स्वीकार किया कि उसे माताजी ज़्यादा अच्छी लगती हैं।

'यह पहली बार माताजी और बाबूजी में झगड़ा हुआ है?'

'नहीं, कई बार हो चुका है। एक दिन मुनिया खाट पर से गिर गई तो बाबूजी माताजी पर नाराज़ हो गये। तो बतलाइये माताजी

घर का काम करें कि मुनिया को देखें। मेरी भी आफ़त हो जाती है। मुनिया मुझे पढ़ने भी नहीं देती, किताबें फाड़ देती है।'

'मुनिया बहुत शैतान है; है न?'

'हाँ, बहुत शैतान हो गई है। माताजी जरा छोड़कर चलती हैं तो रोने-चीखने लगती है। माताजी ने बाबूजी से कहा कि मुनिया के लिये नौकर रक्खो तो कहते हैं मेरे पास इतने रुपये नहीं हैं।' कहकर सरोजिनी क्षण भर को उदास हो गई।

नरेन्द्र आर्थिक चिंताओं को पत्नी और अपने ही बीच सीमित न रखकर सरोजिनी तक पहुँचने देता है यह उसका कैसा अविचार है। वह सरोजिनी को दूसरी बातों में भुलाने की चेष्टा करने लगा।

सरोजिनी के जाने के कुछ ही देर बाद मदन आया। मदन के भी बच्चा है, वह भी अपनी पत्नी की ओर से विरक्त है और उससे नरेन्द्र जैसा व्यवहार करता होगा यह सोचता हुआ चन्द्रनाथ उसके प्रति मन ही मन असहिष्णु हो उठा।

'आपने प्रकाश बाबू से कहा था?' मदन ने पूछा।

'आपकी नियुक्ति के सम्बन्ध में? हां कहा था।'

'परसों ही उसका फैसला हो जायगा।'

कहकर मदन चुप हो गया। उसके चेहरे की उदासी चन्द्रनाथ का मनोभाव बदलने लगी। किन्तु फिर भी उसने कुछ रूखे स्वर में कहा—मदन बाबू, तुम्हारा "लव अफेयर" (प्रेम का लगाव) एकदम अनुचित है; मुझे उससे बिलकुल सहानुभूति नहीं है। तुमने कभी सोचा है कि तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के आपसी झगड़े का तुम्हारे लड़के पर क्या असर पड़ता है और पड़ेगा?

'लड़के को तो मा से ही ज्यादा मुहब्बत है; वह मेरे पास बहुत कम ठहरता है।'

'इससे तुम्हें तकलीफ नहीं होती?'

'कुछ तकलीफ होती है, पहले ज़्यादा होती थी; लेकिन उसके लिये मैं क्या करूं ?'

'पत्नी का प्रेम मिलने पर ही बच्चे का प्रेम मिल सकता है; बच्चा मा से तो अलग हो ही नहीं सकता।'

'मैं तो पत्नी से प्रेम करता था; पत्नी ही प्रेम न करे तो क्या किया जाय।'

'उन्हें तुम्हारे प्रेम-सम्बन्ध का पता है!'

'ज़रूर पता है; कभी-कभी शिकायत भी करती है।'

'ओह! तो उनकी विरक्ति का यही प्रधान कारण है; दोषी तुम हो जो इस तरह प्रेम करते फिरते हो।'

'प्रेम पर किसी का वश नहीं है, चन्द्रनाथ बाबू।'

चन्द्रनाथ ने चौंककर मदन की ओर देखा। उसका उत्तर जितना ही साधारण था, स्वर और मुद्रा उतनी ही सरल और व्यंजक थी। जैसे वह अनुभव कर रहा हो कि उसमें तर्क करने की योग्यता या शक्ति नहीं है और शायद इसीलिये उसकी निरपराधता प्रमाणित न हो सकेगी।

चन्द्रनाथ का रोष सहसा सहानुभूति में परिवर्तित होने लगा। कहीं-कहीं अपने मंडन की अप्रवृत्ति ही हमारा कवच बन जाती है।

'मैंने हरी जी से भी तुम्हारे सम्बन्ध में कहा है,' वह जैसे अपने परिवर्तित मनोभाव को छिपाने की चेष्टा करते हुये बोला।

'कहा है? आप मेरे लिये बहुत-कुछ कर रहे हैं। लेकिन देखो भाग्य में क्या है।'

'तुम्हें भाग्य में विश्वास है, मदन बाबू?'

'पक्का विश्वास है; नहीं तो ज्योतिषी कैसे आगे-पीछे की बात बतलाते। पुराने ऋषि-मुनि जो लिख गये हैं वह बिलकुल ठीक है।'

'क्या ज्योतिषी लोग सही-सही भविष्य बतला देते हैं?'

'अच्छे ज्योतिषी ज़रूर बतला देते हैं। भृगु-संहिता के बारे में आपने सुना होगा?'

'नहीं मैंने नहीं सुना। मेरी कभी समझ में नहीं आया कि कैसे इतने बड़े-बड़े ग्रह-पिंड हर व्यक्ति को अलग-अलग प्रभावित कर सकते हैं। मेरी मा ज़रूर ज्योतिष में विश्वास करती थीं, और भाई साहब भी करते हैं।'

'भृगु-संहिता में हर आदमी के सारे भूत-भविष्य का हाल लिखा है। बड़ी अनोखी चीज़ है।'

'अच्छा! तुमने कभी अपने बारे में कुछ पूछा।

'पहले पूछा था; पिछली बातें तो करीब-करीब सभी ठीक बतला दी थीं; आगे की बातें भी कुछ ठीक हुईं।'

'कुछ ठीक हुईं, कुछ नहीं?'

'हाँ, लेकिन पिछली बातें बहुत ठीक बतला दी थीं?'

'अपने और माधुरी के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किया था?'

'नहीं; अब किसी दिन जाकर पूछूँगा।'

'मदन बाबू, मेरी सच्ची राय है कि तुम उस लड़की का पीछा छोड़ दो।'

मदन ने उत्तर नहीं दिया।

उसके चले जाने पर चन्द्रनाथ उसकी विवशता का विचार करने लगा। प्रेम के आह्वान को स्वीकार करना क्या सचमुच खराब चीज़ है? क्या मदन दोषी है? क्या स्वयं उसने साधना के प्रति उतना स्नेह महसूस करके कोई अपराध किया था?

१७

तुलसी जयन्ती के दिन से चन्द्रनाथ को भाषणार्थ मिलने वाले निमंत्रणों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। कालेज के वाद-विवादों और विभिन्न परिषदों की बैठकों में तो उसे बोलना ही पड़ता है, इसे वह अपना कर्त्तव्य भी मानता है, इधर बाहर से भी निमंत्रण मिलने लगे हैं, और उसे लग रहा है कि यदि यही क्रम चला तो वह लिखने-

पढ़ने का ठोस कार्य कुछ भी न कर सकेगा। कुछ दिनों से उसने नरेन्द्र की पुस्तकें पढ़ना शुरू कर दी हैं जिससे वह सहसा व्यस्त महसूस करने लगा है।

वक्तृताओं के दौरान में एक विचित्र परिस्थिति चन्द्रनाथ के समाने आई है। अधिकांश अवसरों पर जहाँ वह बोला है वहाँ हरी जी का भी भाषण हुआ है; और प्रायः सदैव हरी जी का दृष्टिकोण उससे भिन्न ही रहता है। जहाँ उसके अपने भाषणों में सर्वत्र संशयात्मक बौद्धिकता का पुट रहता है वहाँ हरी जी सर्वत्र अटल विश्वास से विभोर आवेगात्मक व्याख्यान देते हैं। हरी जी से उसका स्नेह पूर्ववत् है, बल्कि बढ़ता ही गया है, इसलिये यह मतभेद उसे और भी रोचक लगता है। उसके दृष्टिकोण से सहमत न होते हुये भी हरी जी उसके प्रति आदर और स्नेह का प्रदर्शन करते हैं इसे उनकी महत्ता का प्रमाण मानता हुआ वह बहुत कृतज्ञ महसूस करता है।

कालेज पूजा की छुट्टियों के लिये बन्द होने वाला था। काम के आखिरी दिन हरी जी ने उसे सुनाया कि, उनके प्रयत्न के बावजूद, मदनमोहनप्रसाद की नियुक्ति न हो सकी। चन्द्रनाथ ने मनमें सोचा कि मदन अभागा है।

नरेन्द्र को हरीजी एक आंख नहीं भाते. इसका कारण है; दोनों के जीवन एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। हरी जी सदा प्रसन्न रहते हैं; हंसते हुए, मुक्त; इसके विपरीत नरेन्द्र प्रायः तना हुआ, चिन्तामग्न-सा रहता है; खुलकर हंसना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। निष्प्रयोजन बात करना भी उसे पसन्द नहीं है। हरी जी को देखकर लगता है, कहीं कोई जल्दी नहीं है, जीवन-प्रवाह मन्द-मधुर गति से बह रहा है; जीवन में और बातों में काफी रस है। इसके विपरीत नरेन्द्र की दिन-चर्या अनवरत व्यस्तता और रूखी प्रयोजनलीनता का भाव जगाती है। चन्द्रनाथ से नरेन्द्र को काफ़ी सौहार्द है; फिर भी वह उसके पास अधिक ठहरते संकोच का अनुभव करता है। उसे डर रहता है कि

कहीं वह उसकी गणित की पढ़ाई में विघ्न न डाले।

दोनों के जीवन-दर्शन भी कितने भिन्न हैं! जहां हरी जी सरल विश्वास की मूर्ति हैं वहां नरेन्द्र कुटिल सन्देह का अवतार; एक को अखिल विश्व में भगवान की सार्थक लीला दिखाई पड़ती है तो दूसरे को सर्वत्र विशृंखल अर्थहीनता, एक के लिये जीवन प्रेम और रस का रंगस्थल है तो दूसरे के लिये स्वार्थ और संघर्ष की क्रीड़ाभूमि। हरी जी की जीवन-गति में सामञ्जस्य है; उन्हें देखकर लगता है कि शान्ति और सुख का सुलभ स्रोत मनुष्य के भीतर है; इसके विपरीत नरेन्द्र का जीवन निरन्तर क्रियाशीलता, परिस्थितियों पर विजयी होने की अदम्य आकांक्षा और प्रयत्न मालूम पड़ता है। वह शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का गणितशास्त्री बन जाना चाहता है!

चन्द्रनाथ को हरी जी प्रिय लगते हैं, और वह नरेन्द्र का आदर करता है। एक ओर जहां हरी जी का अखंड विश्वास उसे मुग्ध करता है, वहां, दूसरी ओर, नरेन्द्र का हटीला भौतिकवाद, उसकी अनास्था और नास्तिकता भी, उसे कम आकृष्ट नहीं करती। उसका हृदय हरी जी की भावनाओं में रमता है तो बुद्धि नरेन्द्र की तर्कनाओं में; दोनों के बीच उसकी चित्तवृत्ति पेण्डुलम की भांति घूमती रहती है। और वह कभी-कभी सोचता है, इन दो विरोधी छोरों के बीच जीवन का सत्य कहां है?

नरेन्द्र की बातों का विरोध करते हुये भी उसे लगता है कि उनमें सचाई का अंश है, और हरी जी से मतभेद प्रकट न करते हुये भी उसे उनकी मान्यतायें आधार की दृढ़ता से वंचित मालूम पड़ती हैं। फिर भी रह-रहकर एक प्रश्न उसे पीड़ित करता है—नरेन्द्र की अपेक्षा हरी जी अधिक आनन्दित और सन्तुलित क्यों हैं? क्यों वे इतने निश्चिन्त रहते दीखते हैं!

कालेज पूजा की छुट्टियों के लिये प्रायः एक महीने बन्द रहेगा, अतः अध्यापक लोग एक-दूसरे से छुट्टियों के प्रोग्राम के सम्बन्ध में

पूछ रहे थे। नरेन्द्र ने कई दिन पहले चन्द्रनाथ से प्रश्न किया था कि वह पूजा में घर जायगा या वहीं रहेगा। उत्तर में उसने कहा था कि 'अभी निश्चय नहीं किया है।'

आज प्रकाशचन्द्र ने उससे यही प्रश्न किया। अनिश्चय की बात सुनकर उसने कहा—'तब आप यही निश्चय करें कि यहीं रहेंगे। यहाँ का पूजा-समारोह देखने लायक होता है, विशेषतः अपने कालेज का।' और चन्द्रनाथ के मौन का स्वीकृति अर्थ लगाते हुये प्रकाश ने जोड़ा—'एक और आवश्यक कार्य है। अपने गाजीपुर में एक प्रसिद्ध वागीश्वरी पुस्तकालय है, उसका वार्षिकोत्सव होगा। मुझसे प्रार्थना की गई है कि काशी से कुछ साहित्यिकों को बटोर कर वहाँ पहुँचूँ। मेरी तीव्र इच्छा है कि आप अवश्य चलें।'

'भला मेरा जाना क्या ज़रूरी है, आप अकेले क्या कम हैं।'

प्रकाशचन्द्र ने हंसकर कहा—बात यह है कि मैं वहीं का हूँ; ऐसे अवसरों पर बाहर के लोगों से विशेष शोभा होती है।...तो बात पक्की रही ?

चन्द्रनाथ ने उत्तर नहीं दिया। पर उसने महसूस किया कि उसे प्रकाशचन्द्र का निमंत्रण स्वीकार करना ही पड़ेगा। जिस शिष्टता और चतुरता से वह बात करता है उसका तिरस्कार या अवहेलना करना सहज नहीं है।

१८

पच्चीस अक्टूबर की सांझ को प्रकाशचन्द्र ने चन्द्रनाथ से भेंट करके कहा कल ही हमें गाज़ीपूर चलना है, कल शाम में वार्षिकोत्सव का प्रोग्राम है।

चन्द्रनाथ ने कहा—अच्छा ; क्या मुझे आपके डेरे पर आना होगा ?

'नहीं', प्रकाश ने हंसकर कहा, 'मैं ही रिक्शा में इधर आऊंगा

और यहां से हम लोग स्टेशन चलेंगे। ग्यारह बजे आप बिलकुल तैयार रहें।'

दूसरे दिन निश्चित वक्त पर दोनों स्टेशन पहुँचे। प्रकाशचन्द्र ने सेकण्ड क्लास के दो टिकट लिये और फिर दोनो छोटी लाइन के प्लेटफार्म पर पहुँच गये। प्रकाशचन्द्र ने कहा—आइये, वेटिंग रूम में बैठें।

चन्द्रनाथ चुपचाप उसके साथ हो लिया।

वेटिंग रूम इस समय प्रायः खाली था। केवल चार व्यक्ति वहां थे, जिनमें एक संभ्रान्त महिला और उनके पति भी सम्मिलित थे। उनके साथ एक ढाई-तीन वर्ष की लड़की भी थी।

आदमी कम होने पर भी कोई आरामकुर्सी खाली न थी। चन्द्रनाथ इस समय साधारण कुर्ता-धोती पहने था, इसके विपरीत प्रकाश बाक़ायदा सूट में था। चन्द्रनाथ की पीठ और प्रकाश का मुख महिला की दिशा में थे। बैठने से पहले प्रकाश ने अपनी कुर्सी रूमाल से झाड़ी थी।

'ओफ़! काठ की कुर्सी पर बड़ी सख्त तकलीफ़ होती है। यह रेलवेवाले "पैसेन्जर्स" (मुसाफिरों) के आराम का कुछ भी खयाल नहीं रखते'—प्रकाचन्द्र ने कहा।

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। प्रकाश ने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया। 'वागीश्वरी देवी जिनके नाम से पुस्तकालय स्थापित हुआ है, एक महान् महिला थीं; बड़ी अद्भुत नारी; गाज़ीपुर वाले आज भी उनकी याद करके रोते हैं।' चन्द्रनाथ का औत्सुक्य जागरित हो रहा था और उसका ध्यान वक्ता की ओर था। किन्तु इतने में ही प्रकाशचन्द्र की दृष्टि दूसरी ओर चली गई थी।

चन्द्रनाथ कह रहा था—सचमुच! ग़ाज़ीपुर तो एक छोटा-सा शहर है न!

प्रकाश छोटी बच्ची को मुस्कराकर बुला रहा था। बच्ची उसकी ओर

देख रही थी पर आगे नहीं बढ़ रही थी। 'मुझे बच्चे और उनमें भी लड़कियाँ बहुत अच्छे लगते हैं', प्रकाश ने कहा।

चन्द्रनाथ ने अपनी दृष्टि फेरी। प्रकाश ने फिर कहना शुरू किया—'वागीश्वरी देवी ग़ाज़ीपुर की पहली महिला थीं जिन्होंने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की, और जाति के बन्धन को ठुकराकर एक उत्साही आर्यसमाजी नवयुवक से विवाह किया।' प्रकाश की दृष्टि दूसरी ओर थी, जहाँ बालिका अपनी मा से उलझ रही थी।

सहसा बालिका को उसके पिता ने बुला लिया जो मेज़ के दूसरी ओर बैठे थे। प्रकाश ने फिर कहना शुरू किया—'वागीश्वरी देवी ने प्रथम बार पर्दे के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की और "प्रबुद्ध-नारी-मंडल" की स्थापना की। आज गाज़ीपुर की महिलाओं में जो कुछ भी जागृति है उसका श्रेय वागीश्वरी देवी को है।' प्रकाश की दृष्टि बार-बार सामने बैठी महिला की ओर चली जाती थी, और बार-बार वह रूमाल से अपना मुंह पोछता जाता था। प्रकाश के कुछ देर चुप रहने पर चन्द्रनाथ ने समझा कि अब वागीश्वरी देवी का परिचयात्मक विवरण समाप्त हो गया। उसकी दृष्टि बालिका और उसके पिता की ओर गई; इतने में प्रकाश ने फिर कहना शुरू कर दिया—'वागीश्वरी देवी की असमय मृत्यु से ग़ाज़ीपुर की पब्लिक लाइफ़ (सामाजिक जीवन) विशेषतः महिला-समाज को बड़ा धक्का पहुंचा। उनकी जैसी साहसी और क्रान्तिकारी महिला वहाँ दूसरी पैदा नहीं हुई। बड़ी स्नेह करने वाली थीं वे, मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा रहती थी। कभी कोई उनसे रुष्ट नहीं हुआ, न छोटा, न बड़ा।'

उसी समय कुली ने आकर खबर दी—बाबू जी चलिये, गाड़ी आ गई।

'अच्छा चलते हैं,' कहकर प्रकाश उठकर खड़ा हुआ, और उसने पैंट सँभालते हुये रूमाल से मुँह पोछा। फिर कहा—'वागीश्वरी देवी के पति बाबू जानकीशरण वकील उनसे इतना प्रेम करते थे कि

उनके मरने के बाद उन्होंने चार वर्ष तक दूसरी शादी नहीं की, यद्यपि वागीश्वरी देवी ने कोई सन्तान नहीं छोड़ी थी।'

कुली कह रहा था—बाबू, चलिये गाड़ी आ गई।

चन्द्रनाथ आगे बढ़ते-बढ़ते रुक गया था। प्रकाश ने हंसते हुये कहा—'ठहरिये, इत्मीनान से सवार होंगे। आपको जगह बखूबी मिल जायगी क्योंकि आप मेरे साथ हैं।' वह अपना सुनहरे फ्रेम का चश्मा उतार कर साफ करने लगा था। चश्मा साफ़ करके पहनने के बाद प्रकाश ने फिर एक बार रूमाल मुख पर फिराया और पहली दिशा में दृष्टि डाली।

'और अब भी बाबू जानकीशरण ने हम लोगों के बहुत कहने-सुनने से शादी की है; दूसरी पत्नी भी अच्छी हैं, लेकिन वागीश्वरी देवी से…कोई मुकाबला नहीं।' कहते-कहते प्रकाश अर्थपूर्ण ढंग से निःस्वर हँसा। फिर वह धीरे-धीरे दरवाज़े की ओर बढ़ने लगा।

चन्द्रनाथ वेटिंग रूम के वातावरण से ऊबने लगा था। ट्रेन के डिब्बे में बैठकर उसने जैसे मुक्ति की सांस ली।

वह आकर प्रकाश से कुछ पहले डिब्बे की पिछली दीवार से सटकर बैठ गया था। प्रकाश पास की सीट के पास खड़ा था। कुछ देर वह झुककर खिड़की से बाहर झांकता रहा। फिर उसने रेस्ट्रां के नौकर से चाय लाने को कहा। चाय आने पर वह खड़े-ही-खड़े पीने लगा।

चन्द्रनाथ के पैर नीचे ही लटके हुये थे, उसने जूता भी नहीं खोला था। गाड़ी सीटी दे चुकी थी। प्रकाश ने जो अभी तक खड़ा था यकायक चन्द्रनाथ से कहा—यदि आपको आपत्ति न हो तो इधर बैठें।

'नहीं, कोई हर्ज नहीं', कहकर चन्द्रनाथ खिड़की के आगे सरक आया। प्रकाश दो क्षण यों ही बैठा, फिर उसने जूते उतार दिये और क्रमशः पैर ऊपर करके दीवार से पीठ सटाकर बैठ गया।

'आप इस सीट का ठीक उपयोग नहीं कर रहे थे', प्रकाश ने हंसकर कहा, 'मुझे आपकी तरह बैठने में बड़ी तकलीफ़ होती है।'

कुछ देर बाद चन्द्रनाथ ने प्रकाश से वागीश्वरी देवी तथा उनके पति के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किये; प्रकाश के उत्तर देने के ढंग से उसने देखा कि अब उसे उक्त देवी जी में उतनी अभिरुचि नहीं रह गई है। थोड़ी ही देर में वह ऊँघने लगा।

प्रायः तीन घंटे की यात्रा के बाद गाड़ी गाज़ीपुर के निकट पहुँची।

'क्या हम वागीश्वरी देवी के पतिदेव के साथ ठहरेंगे?' चन्द्रनाथ ने पूछा। उसे मालूम था कि स्वयं प्रकाशचन्द्र का घर वहां नहीं है।

'शायद,' कहकर प्रकाश संभला और पैर नीचे कर जूता पहनने लगा। स्टेशन आ गया था।

दो-तीन छात्र उन्हें लेने आये हुये थे।

वागीश्वरी देवी के पति वकालत करते थे और अब उन्होंने दूसरी गृहस्थी जमा ली थी। प्रकाशचन्द्र का उन्होंने बड़ी खातिर से स्वागत किया और फिर चन्द्रनाथ का परिचय पूछा।

'आप हैं मेरे सहयोगी अध्यापक श्री चन्द्रनाथ; संस्कृत के एम॰ ए॰ हैं और हिन्दी के भी बड़े प्रेमी हैं। आप ही के आश्वासन पर मैंने लिखा था कि एक-दो मित्रों को भी साथ लाऊँगा।' और फिर उसने चन्द्रनाथ से कहा—'आप ही श्री जानकीशरण वकील हैं, स्वर्गीय देवी जी के पति; आप जैसे महाशयों पर गाज़ीपुर को फ़ख्र है।'

'वाह प्रोफेसर साहब! वास्तव में फ़ख्र के क़ाबिल तो आप ही हैं। (चन्द्रनाथ से) साहित्य का इतना अच्छा जानकार और ऐसा सुन्दर वक्ता गाजीपुर में दूसरा नहीं है।'

'आप हमारे कालेज के रत्नों में से हैं', चन्द्रनाथ ने कुछ कहने की आवश्यकता महसूस करते हुये कहा।

थोड़ी देर में चाय और मिठाई आई। प्रकाशचन्द्र ने मिठाई की तश्तरी अलग हटाते हुये कहा—माफ़ कीजिये, पिछले छै मास से मैंने मिठाई खाना बिलकुल छोड़ दिया है।

'इसका कारण, प्रोफ़ेसर साहब?' वकील साहब ने पूछा, 'पहले तो आप खूब मिठाई खाते थे।'

'इधर अपना रुझान कुछ अध्यात्म की ओर हुआ है, कुछ प्राणायाम आदि साधना शुरू की है, और मिठाई, पान वग़ैरह खाना एकदम बन्द कर दिया है।'

'अच्छा! पहले तो आप पान बहुत खाते थे। और फिर बनारस में तो पानों का बहुत रिवाज़ है, बनारस के पान मशहूर हैं।'...

'यही तो खूबी है; संयम का आनन्द ऐसी ही परिस्थितियों में मिलता है।'

'बड़ा कठिन काम है, साहब।'

प्रकाश के मुँह से अध्यात्म और संयम की चर्चा सुनकर चन्द्रनाथ क्षण भर चकित रहकर मन में विनोद का अनुभव कर रहा था।

'आपके लिये फल मँगवाऊँ?' वकील साहब ने पूछा।

'फल लेने में अपने को कोई एतराज़ न होगा।'

तुरंत ही नौकर पास की एक दूकान से सेब और शंतरे ले आया।

घड़ी में चार बज रहे थे। वकील साहब ने प्रकाशचन्द्र को लक्ष्य कर कहा—अब आप लोग कुछ देर विश्राम करें प्रोफ़ेसर साहब, क्योंकि छै बजे उत्सव की कार्यवाही शुरू होगी।

जब प्रकाश ने चन्द्रनाथ से ग़ाज़ीपुर आने का पहली बार अनुरोध किया था तो उसने अनुमान किया था कि शायद इस अवसर पर उसे सभापति बनाने का आयोजन हुआ है। ग़ाज़ीपुर पहुँचने पर, यह देखकर कि प्रकाशचन्द्र स्वयं ही सबके अवधान का केन्द्र हैं,

उसकी उक्त भावना बदल गई । उसने सोचा कि सभापतित्व का भार संभवतः प्रकाशचन्द्र पर ही पड़ेगा ।

किन्तु उत्सव-भवन में पहुँच कर उन्हें यह मालूम हुआ कि सभापति कोई तीसरा ही व्यक्ति है, अर्थात् एक स्थानीय डिपुटी साहब। चन्द्रनाथ ने पाया कि इससे प्रकाशचन्द्र असंतुष्ट हैं ।

'हम लोगों की ग़ुलामी का यह नमूना देखिए', प्रकाश ने धीमे किन्तु आस-पास के लोगों के सुनने योग्य स्वर में कहा, 'एक साहित्यिक संस्था के वार्षिकोत्सव में भी सभापतित्व के लिये डिपुटी साहब को खोजा जाता है । कब हम लोग सीखेंगे कि विद्वत्ता की तुलना में डिपुटी कलेक्टर का पद कुछ भी नहीं है ।'

प्रकाश के स्वर में वीरता का दर्प था । चन्द्रनाथ ने उत्तर में केवल मुस्करा दिया ।

अब जलसे की कार्यवाही शुरू हो रही थी ।

१९

दूसरे दिन सवेरे ही प्रकाशचन्द्र और चन्द्रनाथ गाज़ीपुर से चल दिये । चन्द्रनाथ प्रकाश के संसर्ग से ऊबने लगा था । उसके कला-प्रेमी व्यक्तित्व की आत्म-केन्द्रित संकीर्णता और प्रदर्शनप्रियता उसमें विकर्षण जगा रही थी । संगीत और रोमांटिक काव्य दोनों क्या मनुष्य को केवल अपने से ही प्रेम करना सिखाते हैं ?

घर पहुँच कर वह एक घण्टे सोया, और फिर उठकर सीधा नरेन्द्र की तरफ चल दिया । उसे विश्वास था कि नरेन्द्र के घर किसी भी दशा में पहुंच कर उसका मन लग जायगा । उस घर में जहाँ एक ओर तर्कना-कुशल नरेन्द्र है वहाँ दूसरी ओर विश्वासमयी सावित्री और सरल-कोमल सरोजिनी भी हैं ।

दरवाजा भीतर से बन्द था, यह इस बात का संकेत था कि नरेन्द्र घर पर नहीं है । दो बार दरवाजा खटखटाने के बाद चन्द्रनाथ

की इच्छा हुई कि लौट चले, पर इतने में ही सरोजिनी ने आकर किवाड़ खोल दिए।

'नरेन्द्र नहीं है ?'

'नहीं वे मोटर में चढ़कर कहीं गए हैं। ऊपर चलिये न।'

चन्द्रनाथ ने कुछ अनिच्छा से क़दम अंदर रक्खा।

'जानते हैं आजकल हमारे घर कौन आया है ?' सरोजिनी ने सांकल लगाते हुए कहा।

'नहीं तो, कौन आया है ?'

'बुआ जी, इलाहाबाद वाली।'

चन्द्रनाथ सकपका कर खड़ा हो गया।

'अरे ! आप बुआ जी को नहीं जानते, वह तो आपको जानती हैं। चलो न।'

इतने में ऊपर से सावित्री ने पुकारकर कहा—आइये, ऊपर आइये।

चंद्रनाथ जीने की ओर चला, और फिर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा। सरोजिनी की कोई बुआ भी हो सकती हैं यह कभी उसकी कल्पना में ही नहीं आया था।

ऊपर रसोईघर में वह फिर ठिठक रहा। सावित्री आगे बढ़ आई थी और हंकारती हुई उसे कमरे तक ले गई। कमरे की चौखट में वह पहुँचा ही था कि सामने पलंग पर से एक नारी-मूर्ति उठी और उसने चन्द्रनाथ को नमस्कार किया।

'अरे, आप !' चन्द्रनाथ ने प्रतिनमस्कार करके आशा को पहचानते हुये कहा।

आशा ने कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—'बैठिये,' और फिर सावित्री से, 'बैठो भाभी।'

'पहले से मोटी हो गई हूं, इसलिये आपने कुछ देर में पहचाना,' आशा ने चन्द्रनाथ के बैठ जाने पर कहा।

'अरे नहीं, मोटी किधर से हो ; एक तो बहुत दिनों में देखा और

फिर अप्रत्याशित जगह में ।'

आशा अवश्य ही कुछ अधिक स्वस्थ हो गई थी, पर उसे किसी भी परिभाषा के अनुसार मोटा नहीं कहा जा सकता था। चन्द्रनाथ को लगा कि उसका रंग भी कुछ निखर गया है ।

'कब आई आप?' उसकी दृष्टि से यह पता चलना मुश्किल था कि वह सावित्री से पूछ रहा है या आशा से।

'कल ही तो आई हैं,' सावित्री ने कहा, 'उधर आप ग़ाज़ीपुर गये और इधर यह आई। मैं पहले नहीं जानती थी कि आपका इनसे परिचय है ।'

आशा—मुझे एक बार भैया ने लिखा था कि आप यहाँ हैं।

चन्द्रनाथ—मैं भी सोचता था कि एक बार प्रयाग आऊं, लेकिन बिना किसी बहाने के पहुँचना कठिन होता है ।

आशा—यह तो ठीक है ; मैं भी यहाँ आनेवाली न थी, यदि भाभी की चिट्ठी न पहुँची होती ।

चन्द्रनाथ आशा का मुँह देखने लगा। आशा ने कुछ विलम्ब से कहा—आप भैया को समझाते नहीं, क्यों वे भाभी से ऐसा व्यवहार करते हैं।

'क्या इन्होंने नरेन्द्र की शिकायत लिखकर भेजी थी?'

'शिकायत की बात होगी तो ज़रूर शिकायत की जायगी ; अब पुरुषों के मनमानी करने के दिन गये', आशा ने सावित्री पर दृष्टि डालते हुये कहा।

'भई मुझे चूल्हा जलाने को देर हो रही है', कहती हुई सावित्री बाहर निकल आई ।

'क्या सचमुच आप इनकी शिकायत सुनकर आई हैं?'

'जी हाँ, भाभी ने बहुत खराब-खराब बातें लिखकर भेजी थीं ; मैं तो डर गई थी ।'

'आपने नरेन्द्र से कुछ पूछा?'

'कल कुछ बातें हुई थीं, भाभी के सामने ; लेकिन उन्होंने ठीक उत्तर नहीं दिया। चुपचाप सुनते रहे।'

'कुछ-कुछ तो मुझे इन लोगों के झगड़े का आभास है। लेकिन बात इतनी गम्भीर हो गई है, यह मैं नहीं जानता था।'

'न जाने भैया को क्या हो गया है, पहले तो ऐसे न थे।...भाभी से उन्होंने यहाँ तक कहा कि...!' आशा कहते-कहते रुक गई, फिर बोली—देखिये आप तो गैर नहीं हैं, भला यह कहने से क्या लाभ कि यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो कहीं दूसरी जगह चली जाओ।.... भाभी दूसरी जगह कहाँ जा सकती हैं।

'भारतीय नारी को तो पति के अतिरिक्त कोई आश्रय ही नहीं है', चन्द्रनाथ ने कहा।

आशा—उन्हें शुरू से शिक्षा ही ऐसी दी जाती है कि वे पति से अलग अस्तित्व की कल्पना तक नहीं कर सकतीं। मैंने भाभी से कहा था कि कुछ दिन चल कर मेरे साथ रहो ; मैं घर पर अकेली भी हूँ।

'तो उन्होंने क्या उत्तर दिया ?'

'कहने लगीं, कुछ दिन की बात थोड़े ही है, यह तो सारे जीवन का सवाल है,'

'आखिर इस झगड़े का मूल कहाँ है ?'

'भाभी कहती हैं कि भैया का मन उनकी ओर से फिर गया है। बात गम्भीर न होती तो वे मुझे पत्र न लिखतीं।'

'क्या आप इसे ठीक समझती हैं कि वे नरेन्द्र से अलग रहें ?'

'क्यों नहीं, यदि मैं उनकी जगह होती तो हर्गिज़ इतना सहन न करती। स्वाभिमान भी तो कोई चीज़ है।'

'आप में स्वतन्त्र और स्वावलम्बी होकर रहने की शक्ति है क्योंकि आप मुक्त वातावरण में पली हैं और शिक्षित हैं, किन्तु उन्हें ऐसी शिक्षा नहीं मिली है।'

'यही तो कठिनाई है ; वास्तव में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा में

आमूल परिवर्तन की जरूरत है। उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वे पुरुषों से स्वतन्त्र होकर जीविका कमा सकें।

सहसा छोटी बची जो आशा के पीछे सोई हुई थी जागकर रोने लगी। आशा ने उसे गोद में ले लिया। फिर उसके चुप न होने पर वह उसे खड़ी होकर हिलाने लगी।

'डाइवोर्स के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?' आशा के देर तक चुप रहने पर चन्द्रनाथ ने पूछा।

'सिद्धान्ततः मैं डाइवोर्स को बुरा नहीं समझती, लेकिन इस विशिष्ट "केस" में उसे कैसे उचित कहूँ; एक भाभी जैसी स्त्री डाइवोर्स के बाद कहाँ जायगी?'

बची लगातार रो रही थी। आशा उसे हिला और थपथपा रही थी, पर व्यर्थ।

चन्द्रनाथ यकायक उठकर खड़ा हो गया और हाथ बढ़ाता हुआ बोला—'इसे मुझे दे दीजिए।' उसे विश्वास था कि बची आशा की अपेक्षा उसे अधिक जानती है और शायद उसके पास चुप हो जाय।

आशा ने बची को चन्द्रनाथ की गोद में संक्रान्त किया। ऐसा करते हुये दोनों की दृष्टियाँ मिल गईं और संभ्रम में आशा का दाहिना हाथ जिस पर बची टिकी हुई थी चन्द्रनाथ के हाथ से छू गया।

आशा के चेहरे पर हलकी लज्जा की आर्द्रता झलक गई और वह शीघ्र ही पलंग की दिशा में मुँह करके साड़ी का आँचल संभालने लगी। मुक्त वातावरण में पली हुई उस ग्रेजुएट लड़की का यह व्यवहार चन्द्रनाथ को विचित्र लगा।

बची चुप नहीं हो रही थी, चन्द्रनाथ उसे लिये हुये रसोईघर की ओर चला। सावित्री चूल्हा जला चुकी थी और चढाने के लिये जल्दी-जल्दी एक साग काट रही थी। बोली—अभी लेती हूं, ज़रा साग काट दूं। तनिक इधर ही रहें, नहीं तो मुझे देखकर वह और भी रोने लगेगी।

कुछ मिनट में सावित्री उठकर आई और बच्ची को गोद में लेते हुये कहा—सरोजिनी कहां चली गई ?

'नीचे किसी सखी ने पुकारा था सो भाग गई।'

'देखिये यह लड़की कितनी लापरवाह है ; भला मैं अकेले घर का काम करूं या इसे रक्खूं।'

मा की गोद में पहुँचते ही बच्ची चुप गई। अब वह हंसती हुई बार-बार मा की बगल में मुंह छिपा रही थी। 'देखिये न, कितनी मक्कार हो गई है, सावित्री ने कहा। और वह कमरे में जाकर उसे दूध पिलाने लगी।

बच्ची लगातार दूध न पीकर बीच-बीच में सिर उठा कर मा को देखती और हंसती। सावित्री धीमे स्वर में कह रही थी, 'पी भई, जल्दी से पी ; मुझे इतनी फुर्सत कहां है।' इसपर आशा ने कहा—तुम मुनिया को रक्खो भाभी, मैं रसोई में जाती हूं।

चन्द्रनाथ अभी तक बाहर छज्जे पर खड़ा था, और सोच रहा था कि अपने घर चले ; इतने में नरेन्द्र की आहट सुनाई दी।

नरेन्द्र के उपर आते आते सावित्री बच्ची को पलंग पर छोड कर चौके में चली गई। बच्ची रोने लगी। आशा उसे गोद में लेकर चुप करने की चेष्टा करने लगी। नरेन्द्र को देखकर सहसा वह चुप हो गई।

आशा ने कहा—भैया, भाभी काम से बड़ी परेशान हो जाती हैं; मुनिया को रखने के लिये एक नौकर होना चाहिये।

नरेन्द्र—नौकर मिलता है ? ब्वाय सर्वेण्ट (बालक नौकर) की खोज में तो मैं काफी दिनों से हूं। एक दोस्त ने एक लड़का दिलाने का वादा किया था। लड़का आया, छै रूपये खाने-कपड़े पर तय कर गया, और कह गया कि तीन-चार दिन में घर से लौटूंगा। परसों मालूम हुआ कि उसने आठ रूपये पर एक मारवाड़ी के घर नौकरी कर ली। इसका क्या इलाज है ? (कुछ रुककर) और बड़े नौकर पर कम-से कम तीस पैंतीस रुपया खर्च पड़ जाता है, इतना कहां से

लाऊं! (चन्द्रनाथ से) तुम शिवसरन को क्या देते हो!

चन्द्रनाथ—पहले बारह देता था; अब उसने पन्द्रह कर लिए हैं।

नरेन्द्र—कहीं ठिकाना है! तुम भाई अकेले आदमी हो तो नौकर पर इतना खर्च कर सकते हो। भला सौ रुपए के वेतन में नौकर की इतनी तनख्वाह कहाँ से निकल सकती है।

आशा—सुना था शिक्षकों का वेतन बढ़ेगा।

नरेन्द्र—सुनती रहो। शिक्षकों की जैसी बेक़दरी इस देश में है वैसी कहीं न होगी। एक ओर आइन्स्टाइन की "रिलेटिविटी" पढ़िए और दूसरी ओर साग-तरकारी खरीदते फिरिए, और घी-दूध का नाम न लीजिए।

आशा—इस सम्बन्ध में भाभी अपने साथ बड़ी ज्यादती करती हैं; बहुत कम दूध पीती हैं, और घी तो नाम मात्र को ले लेती हैं।

नरेन्द्र—भाभी की बात कुछ न पूछो; देखती हो, किस तमीज से साड़ी पहने फिर रही हैं। हज़ार बार कहा है कि जरा तरीके से रहा करो।

आशा ने चुप रह कर चन्द्रनाथ की ओर देखा और चन्द्रनाथ ने आशा की ओर, जैसे दोनो नरेन्द्र के कटु वक्तव्य की सत्यता आँक रहे हों। और चन्द्रनाथ ने मानो पहली बार ठीक से लक्षित किया कि सावित्री वस्त्रों के सम्बन्ध में उतनी सावधान नहीं है। किन्तु इतनी बात बहुत गम्भीर शिकायत का कारण हो सकती है यह उसने कभी नहीं सोचा था।

आशा—लेकिन मैं कहूँगी कि सारा दोष भाभी का ही नहीं है, परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं कि उन्हें किसी काम की फुर्सत नहीं मिलती।

नरेन्द्र—प्रश्न परिस्थितियों का नहीं स्वभाव और ट्रेनिंग का है। अभ्यास से आदमी उतने ही समय में दस काम देख सकता है।

चन्द्रनाथ—ट्रेनिंग नहीं मिली है तो दी जा सकती है।

नरेन्द्र—मुश्किल यह है कि उनमें इतनी बुद्धि ही नहीं है कि कोई नई बात सीखें।

बच्ची शायद उपेक्षित महसूस कर रही थी और फिर रोने लगी। आशा उसे लेकर खड़ी हो गई। नरेन्द्र ने खीफ भरे स्वर में कहा—यह लड़की भी बहुत तंग करती है। सरोजिनी कहाँ है?

'कहीं खेलने चली गई है', आशा ने कहा। फिर बोली, 'अब सरोजिनी को किसी स्कूल में दाखिल होना चाहिए।'

नरेन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया। चन्द्रनाथ ने भी एक बार यह प्रस्ताव किया था। पर क्योंकि सरोजिनी गृहकार्य में सहायक होती थी इसलिए सावित्री नहीं चाहती थी कि वह स्कूल में नाम लिखाए। आजकल सुबह में एक ट्यूटर सरोजिनी को पढ़ाने आया करता था।

इतने में सरोजिनी नीचे से आई। नरेन्द्र ने उसे डांट कर कहा—कहां चली जाती है, मुनिया का खयाल नहीं रखती?

सरोजिनी के मुख पर भय के चिन्ह प्रकट हो गये। धीरे-धीरे वह बच्ची की ओर बढी और उसे लेकर नीचे चली गई।

२०

अगले दिन, इच्छा रहने पर भी, चन्द्रनाथ नरेन्द्र के घर नहीं गया। उसके इस संकोच का कारण आशा की उपस्थिति थी। न जाने कोई उसके पहुँचने का क्या अर्थ समझे। तथापि दिन भर वह सावित्री, नरेन्द्र आदि के सम्बन्ध में सोचता रहा। पहले मन न लगने पर वह सरोजिनी को बुला लेता था, किन्तु कल की घटनाओं ने उसे इस सम्बन्ध में सदा के लिये सचेत कर दिया। सरोजिनी उस घर की मशीन का एक आवश्यक पुर्जा है, उसे अलग कर देने पर वहां संकट उपस्थित हो जाता है।

साँझ में सहसा उसे खयाल आया—क्यों न आज सिनेमा देखने जाया जाय? इस प्रस्ताव को लेकर सहज ही नरेन्द्र के घर पहुँचा जा सकता है। किन्तु, यह सोचकर भी अन्ततः वह वहां गया नहीं--शायद

अपने को भुलावा देने का वह अभ्यस्त न था। यदि नरेन्द्र के घर पहुँचना उचित नहीं है तो क्यों वैसा करने का बहाना ढूंढा जाय?

उस दिन की परवर्ती घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि उसका सिनेमा न जाकर घर रुकना निष्फल नहीं हुआ।

रात के नौ बजे थे। पढ़ने-लिखने में विशेष जी न लगने के कारण चन्द्रनाथ सोने अथवा लेटने की तैयारी कर रहा था कि इतने में नीचे किसी ने दर्वाजे पर आवाज़ दी। चन्द्रनाथ ने दर्वाजा खोला। कुछ ही मिनट में उसने अपने सामने मदन को उपस्थित पाया।

आते ही मदन कुर्सी पर न बैठ कर खाट पर लेट रहा। चन्द्रनाथ ने देखा कि उसका चेहरा एकदम बदला हुआ है, जैसे उसपर किसी ने स्याही पोत दी हो। खाट पर लेटकर मदन रह-रह कर कराहने और आहें खींचने लगा।

'क्या बात है मदन बाबू; आप की तबियत ठीक नहीं मालूम पड़ती।'

'तबियत की क्या पूछते हो, मैं मर रहा हूं; मेरे लिये मर जाना ही बेहतर है।' कहता हुआ मदन खाट पर करवटें बदलने लगा।

सहसा चन्द्रनाथ अपनी सम्पूर्ण चेतना से प्रबुद्ध हो गया; मदन की दशा असाधारण थी। उठकर मदन के समीप पहुंचता हुआ बोला—क्या बात है मदन बाबू, आप बहुत अधिक बेचैन हैं? मुझे खेद है कि कालेज में आपकी नियुक्ति न हो सकी।

'ओह! मुझे उसकी परवाह नहीं है। मैं मर रहा हूँ।'

'तो क्या माधुरी की ओर से......'

'उसका जिक्र न कीजिये; वह मेरी कोई नहीं है, उसने मेरा सर्वनाश कर दिया।... मैं घर से निकला था आत्महत्या करने के लिये, लेकिन कैसे करूँ? कोई उपाय है? आपके पास कोई ऐसी चीज़ है?'

'कैसी बातें कर रहे हैं, मदन बाबू। आत्महत्या घोर पाप है।'

'पाप-पुण्य कुछ नहीं है ; मैं समझता था प्रेम करना अच्छी बात है, अब देखता हूँ वह सबसे बड़ा पाप है। वही मुझे मारे डाल रहा है।'

चन्द्रनाथ चुप रहा। मदन भी चुप रहा। फिर कुछ देर बाद बोला—पाँच नवम्बर को उसकी शादी हो रही है, चन्द्रनाथ बाबू, बतलाइये मैं क्या करूँ ?

'शादी कहाँ तय हुई है ?'

'वहीं इलाहाबाद में। मैं सोच रहा था अकेला ही इलाहाबाद चला जाऊँ और लड़के से सब बातें साफ़-साफ़ कह दूँ।'

'क्या कहेंगे आप, यह कि लड़की उनसे प्रेम नहीं करती। आपको विश्वास है कि माधुरी अभी तक आपसे प्रेम करती है ?'

'हाँ, मुझे विश्वास है। ऐसा न होता तो मैं इतना परेशान न होता। मेरे साथ उसकी भी ज़िन्दगी नष्ट हो जायगी।'

'यदि ऐसा है तो वह आपके साथ निकलकर क्यों नहीं भाग जाती ?'

'इसका तो वही पुराना उत्तर है; कहती है मैं मा-बाप को बदनाम नहीं करूँगी। बाद में कहीं से आपके साथ भाग जाऊँगी।'

'यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है, और न उचित ही है।'

'तो मैं क्या करूँ, ओफ़।' कहकर मदन फिर करवटें बदलने लगा।

थोड़ी देर में वह उठकर खड़ा हो गया और बोला—अच्छा तो चलूँ।

'बैठिये, कहाँ जायँगे आप' चन्द्रनाथ ने हाथ पकड़कर कहा।

'कहां जाऊँ ? गंगा जी जाना ठीक होगा न ?' वह बड़े भोले स्वर में पूछ रहा था। चन्द्रनाथ ने ज़बर्दस्ती उसे बिठाते हुये कहा—आप कहीं नहीं जायेंगे, यहीं सोने का प्रबन्ध हो जायगा।

मदन बैठ गया, और फिर पहले की भांति लेटकर करवटें

बदलने लगा।

'माधुरी को एक बार बुलाया जाय', चन्द्रनाथ ने एकाएक प्रस्ताव किया।

'बुलायेंगे ? बुलाना हो तो जल्दी बुलाइये क्योंकि दो-एक दिन बाद घर से निकलने की मनाई हो जायगी।'

'कल ही बुलाया जाय।'

'ज़रूर बुलवाइये ; आखिरी बार भेंट हो जायगी।'

'समझाने की कोशिश भी की जायगी, शायद कोई रास्ता निकले।'

'इसकी उम्मीद कम है, लेकिन बुलवाइये ज़रूर, बुलायेंगे न ?'

'कह तो रहा हूँ ; सुबह ही नरेन्द्र की पत्नी से भेंट करूँगा।'

'अभी नहीं चल सकते ? अभी उतनी देर तो नहीं हुई है।'

'नहीं भाई, इस समय नहीं ; दस बज रहा है। और फिर कोई लाभ भी तो नहीं ; बुलाया तो कल ही जा सकता है।'

'तो मैं अब चलूँ,' मदन ने बैठते हुये कहा।

'नहीं, आज तुम्हें यहीं सोना होगा ; हर्ज ही क्या है।'

सुबह को मदन काफ़ी देर से सो कर उठा। चन्द्रनाथ ने पूछा—रात में नींद आई ?

'हूँ', मदन ने उदासीन स्वर में कहा। वह कपड़े पहने ही सो गया था। उठते हुये बोला—तो अब मैं चलूँ।

'अरे अभी से ; नहा-धोकर निबट कर जाना। और आज यहीं ही रहो तो कोई हर्ज है ; माधुरी को बुलवाना है न।'

'किस समय बुलायेंगे, दोपहर में ?'

'यह नरेन्द्र की पत्नी पर निर्भर करेगा। मेरी समझ में सांझ को बुलाना ही ठीक होगा।'

'तो मैं शाम को आऊँगा', कहकर मदन चलने लगा। चन्द्रनाथ ने उसे रोकना ज़रूरी न समझा।

मदन के जाने के प्रायः एक घंटे बाद उसे नीचे सरोजिनी का स्वर सुनाई दिया। वह प्रसन्न हुआ, और सामने खुली पुस्तक पर से मुँह उठा कर बाहर की ओर देखने लगा। दो क्षण बाद सरोजिनी हँसती हुई उसके कमरे के आगे आ खड़ी हुई; उसकी गोद में बच्ची थी। बोली—जानते हो कौन आया है?

'कौन है? बतलाओ न।'

'नहीं बतलाऊँगी', कहते हुये सरोजिनी की आँखें जीने की दिशा में घूम गई। अगले ही क्षण चन्द्रनाथ की, जो उठकर खड़ा हो गया था, आशा पर दृष्टि पड़ी। उसके पीछे एक तरुण दाई थी।

'ओह, आप! आइये', चन्द्रनाथ के मुख से निकला।

'कल आप नहीं आये, इसलिये मैंने सोचा कि मैं ही मिल लूँ,' आशा ने कहा।

'कल मैं आने की सोच रहा था, पर आ न सका। एक मित्र आ गये थे।'

उधर दाई वक्रता से आँखों में मुस्कुराती हुई पूछ रही थी—अब मैं जाऊँ बीबी जी?

आशा ने कहा—हाँ तुम जाओ।

'आइये बैठिये', कहकर चन्द्रनाथ ने एक कुर्सी आशा की ओर खिसकाई। वह कुर्सी पर न बैठकर चन्द्रनाथ की खाट पर बैठ गई और समीपवर्ती मेज़ की पुस्तकें उठाकर देखने लगी।

चन्द्रनाथ को लगा कि आशा की पेशानी पहले से अधिक बौद्धिक और उसकी आँखें अधिक चमकीली हो गई हैं। उसके होटों में भी अब पहले जैसी निर्लिप्तता नहीं है, वे जैसे कठिनता से बोलने या मुस्कुराने की उष्णता को छिपा रहे हैं। आशा उसकी शय्या पर बैठी है यह प्रतीति उसके शरीर में विचित्र सिहरन पैदा करने लगी।

'आजकल आप बायालोजी (प्राणिशास्त्र) और एन्थ्रापालोजी (नर-विज्ञान) का विशेष अध्ययन कर रहे हैं?'

'हां...यों ही, असल में ये पुस्तकें नरेन्द्र की हैं; और कुछ न रहने के कारण उठा लाया हूँ।'

थोड़ी देर बाद सरोजिनी उठ कर रसोईघर में शिवसरन के पास चली गई। उसे शिवसरन से काफी स्नेह था।

सहसा आशा ने खड़े होते हुए पूछा—क्या आपको लगता है कि भैया किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करते हैं?

'नहीं, मुझे तो कुछ भी पता नहीं; आप ऐसा क्यों सोचती हैं?'

'मैं नहीं, भाभी ऐसा सोचती हैं।' आशा अब एक कुर्सी की पीठ पर हाथ रक्खे खड़ी थी।

'मुझे इतना आभास ज़रूर है कि नरेन्द्र पत्नी से विशेष संतुष्ट नहीं हैं।'

'भाभी यह भी शिकायत करती हैं कि भैया अपने ऊपर कितना ही खर्च कर लें, उन्हें कुछ देना नही चाहते। इधर तो वे चालीस-चालीस रुपये की दो ट्यूशनें भी करते हैं।'

'अच्छा! मुझे ठीक नही मालूम था।......वे कहेंगे कि खुद मेहनत करके कमाते हैं, इसलिये अपने ऊपर खर्च भी कर सकते हैं।

आशा—लेकिन यह तो स्वार्थ की बात हुई।

चन्द्रनाथ—सो तो स्पष्ट है।....नरेन्द्र का कहना है कि हर एक व्यक्ति स्वभावतः स्वार्थी होता है। और क्योंकि स्वार्थ स्वाभाविक है, इसलिए वह दोष नहीं है।

आशा—खूब, तब उन्होंने शादी ही क्यों की थी।

चन्द्रनाथ—यह उन्हीं से पूछना चाहिए।...असल में नरेन्द्र पक्के नास्तिक हैं; शादी भी उनकी दृष्टि में एक तरह का सौदा है...

वह आगे कुछ न कह सका। आशा भी चुप हो गई।

चन्द्रनाथ ने शिवसरन को समझा रक्खा है कि कोई मेहमान आये तो बिना कहे ही जलपान के लिये कुछ तैयार कर ले; अकेली सरोजिनी के लिये भी कुछ बनाकर खिलाने का स्थायी आदेश है।

जब सरोजिनी भी देर तक शिवसरन के पास रह गई तो चन्द्रनाथ ने अनुमान किया था वे लोग ज़रूर कुछ पाकशास्त्रीय तोहफा तैयार करने की धुन में हैं। अतः जब सरोजिनी दो तश्तरियों में कोटू की आलू-मिश्रित पकौड़ियाँ लेकर आई तो चन्द्रनाथ को आश्चर्य नहीं हुआ। किन्तु आशा ने चकित होकर कहा- यह क्या लाई हो सरोज, यहाँ की मालकिन क्या तुम्हीं हो ?

'खाइये', कहकर सरोजिनी ने तश्तरियाँ मेज़ पर रख दीं।

'अपने लिये नहीं लाईं सरोजिनी ? और मुनिया तुम्हारी कुछ खाती है कि नहीं ?'

'मुनिया कैसे खायगी ? अभी उसका अन्न-पराशन तो नहीं हुआ है। आज बुआ जी करेंगी तब न खायेगी।'

'जी हाँ, यह तो मैं आपसे कहना भूल ही गई ; आज मुन्नी का अन्न-प्राशन होगा ; शाम को आप हमारे यहां निमंत्रित हैं।'

'मेरे निमंत्रण का क्या, मैं तो वहाँ खाता ही रहता हूँ।'

चन्द्रनाथ के आग्रह से आशा ने पकौड़ी मुंह में रक्खी और स्वयं उसने भी ; खाते ही उसे आभास हुआ कि पकौड़ियों में नमक अधिक है। उसने आशा से कहा, 'ठहरिये', और फिर शिवसरन को पुकारा। उसके आने पर कहा—तुम से कितनी बार कहा है कि चीजों में नमक कुछ कम डाला करो। जाओ, बाज़ार से दही लेकर आओ।

शिवसरन के चले जाने पर आशा ने कहा—आपको भोजन ठीक नहीं मिलता, इसीसे आपका स्वास्थ्य पहले से गिरा हुआ लगता है।

चन्द्रनाथ—'क्या किया जाय लाचारी है।' फिर कुछ देर में बोला—मुझे आपकी भाभी के लिये एक सन्देश देना था। इस मकान के मालिक की लड़कियां उनकी मित्र हैं ; कहियेगा, आज शाम में उन्हें बुलवा लें, ज़रूर।

'भाभी ने मुझसे उनका जिक्र किया था। मैं भी उन्हें देखना

चाहती हूँ। आज तो यों भी उन्हें आना चाहिये।'

'सो किस लिये?'

'मुन्नी का अन्न-प्राशन है न, आप बहुत जल्द भूलते हैं; देखिये, शाम में आना न भूलें।'

'नहीं, वह नहीं भूलेगा, विशेषतः इसलिए कि माधुरी से कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।'

२१

शाम को लगभग साढ़े-पांच बजे जब चन्द्रनाथ नरेन्द्र के घर पहुँचा तो उसने पाया कि मदनमोहन वहां पहले ही से मौजूद है। सरोजिनी ने आकर बतलाया कि मुनिया का अन्नप्राशन हो चुका, और वह उस अभूतपूर्व घटना का विस्तृत विवरण देने लगी। 'जैसे ही बुआ जी ने कटोरी में से चम्मच में खीर मुनिया के मुंह में रक्खी वैसे ही उसने ऐसा हाथ मारा कि कुछ खीर गिर गई, और मुनिया का हाथ भी सन गया,' इत्यादि। फिर वह चन्द्रनाथ से खीर खाने के लिए ऊपर चलने का आग्रह करने लगी। चन्द्रनाथ ने मदन की ओर संकेत करके पूछा—इन्हें जानती हो?

'हूँ,' सरोजिनी ने सस्वर हंसते हुए कहा, और फिर "ऊपर चलिए न" की रट लगाने लगी।

'ऊपर कौन-कौन है?'

'कोई नहीं है, सिर्फ माता जी हैं और बुआ जी हैं।'

चन्द्रनाथ ने निराशा के भाव से मदन की ओर देखा, वह जैसे अपने में डूबा हुआ था। 'जरा पूछूँ क्या बात है,' कहता हुआ चन्द्रनाथ सरोजिनी के साथ ऊपर चल दिया।

'आइए,' आशा ने उसका स्वागत किया। 'अभी आपकी वे नहीं आई हैं, आती ही होंगी; फिर दाई को भेजा है,' सावित्री ने मुस्कुराते हुए जोड़ा।

सावित्री का अनुमान गलत नहीं था, थोड़ी ही देर में माधुरी और मालती ने घर में कदम रक्खा। सरोजिनी ने मा को खबर दी और सावित्री ने जीने में पहुँच कर दाई को वहीं से विदा कर दिया।

दोनों बहिनें आकर कमरे में बैठीं, चन्द्रनाथ और आशा भी वहीं थे।

आशा बड़े ध्यान से दोनों बहनों का निरीक्षण कर रही थी। कुछ देर में न जाने क्या सोचकर वह कमरे से बाहर चली गई।

'आप की मदन बाबू से कबसे भेंट नहीं हुई है?' चन्द्रनाथ ने माधुरी से पूछा।

'लगभग एक हफ्ते पहले मिले थे', माधुरी ने निम्न मुख हो उत्तर दिया। वह बड़ी सुस्त दिखाई दे रही थी।

'उनकी हालत बड़ी खराब है।'

'जानती हूँ, किन्तु लाचार हूँ। उन्हें मेरी बात का विश्वास ही नहीं होता।'

'रात मेरे पास आये थे, मेरे ही घर सोये थे।'

माधुरी चुप रही।

'कहते थे आत्महत्या करने निकला हूं, पर कोई उपाय नहीं दीखता।'

'आत्महत्या? आप सच कह रहे हैं?'

'इसीलिये मैंने उन्हें अपने घर से जाने नहीं दिया।'

'कहते तो मुझसे भी थे... ...लेकिन वे मेरी बात का विश्वास क्यों नहीं करते। मैं कहती हूँ.......'

'आपकी बात विश्वसनीय हो भी पर ठीक नहीं है।'

माधुरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत विचलित हो रही थी, लगता था जैसे रो देगी।

'आप किसी तरह उनकी जान बचाइये, चन्द्रनाथ बाबू; मैं जन्म-भर अहसान मानूंगी।' कहते-कहते माधुरी खड़ी हो गयी।

'मैं भरसक प्रयत्न करूंगा, लेकिन आप जानती हैं कि उन्हें

लगातार पकड़कर नहीं रखा जा सकता और न वे समझाने से मानने-वाले हैं।'

'आप उन्हें मेरी ओर से विश्वास दिलाइये कि विवाह के बाद मैं ज़रूर उनके पास पहुँच जाऊंगी.......।'

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सहसा मदनमोहन ने सरोजिनी को आवाज़ देकर कहा—मैं ऊपर आ सकता हूँ।

माधुरी ने आश्चर्य से कहा—क्या वे यहीं हैं ?

चन्द्रनाथ उठकर बाहर गया और उसने इशारे से मदन को ऊपर आने को कहा। इस सम्बन्ध में उसने सावित्री की अनुमति की कोई अपेक्षा नहीं की।

मदन आकर माधुरी के सम्मुख बैठ गया और उससे इस प्रकार बातें करने लगा जैसे तीसरा कोई है ही नहीं।

माधुरी ने कहा—आप आत्महत्या की बात सोचते हैं यह ठीक नहीं।

मदन—मेरे लिये दूसरा रास्ता ही क्या है; मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता। या तो मुझे तुम मिलो नहीं तो मेरा मर जाना ही बेहतर है।

माधुरी—लेकिन मैं कहती हूँ कि मैं आपके पास आ जाऊंगी; आप मेरा विश्वास क्यों नहीं करते ?

मदन—तुम्हारा विश्वास नहीं किया जा सकता, तुम झूठी हो। कोई और भी तुम्हारी बात का विश्वास नहीं करेगा।

माधुरी—तब तो आप से बात करना ही व्यर्थ है जब आप को मेरा विश्वास ही नहीं है तो।......लेकिन आप को मेरे सिरकी क़सम है यदि आपने अपनी जान को कुछ किया तो......

मदन—जब मैं ही न रहूँगा तो क़सम से क्या,.......आफ़्टर मी द डिल्यूज़।

मदन बड़े शान्त ढंग से बातें कर रहा था; जैसे कोई वैज्ञानिक

तर्कना का विषय हो। कुछ देर को दोनों चुप हो गये।

चन्द्रनाथ अपना ठहरना अनुचित समझ कर बाहर चला आया। उसके आते ही मदन बड़ी उत्तेजना से बात करने लगा; लगता था जैसे वह लड़ रहा है। माधुरी भी तेज स्वर में उत्तर दे रही थी। कुछ देर में दोनो खामोश हो गये। कुछ क्षण में मालती निकल कर बाहर आई; उसकी आंखों में आंसू थे। वह सीधी सावित्री के पास पहुँच गई। आशा और चन्द्रनाथ बीच में खड़े थे।

पांच-सात मिनट यों ही बीत गए। चन्द्रनाथ को आभास हुआ कि मदन और माधुरी दोनो खड़े हैं, और फिर यह कि दोनो काफी निकट हैं। माधुरी धीमे स्वर में कुछ कह रही है और मदन कुछ अधिक ऊंचे स्वर में "नहीं" और "हां" कर रहा है।

माधुरी कह रही थी—समझे, चिंता मत करो, बी ब्रेव (बहादुर बनो)।

मदन ने उत्तर में कहा—लेकिन एक हद तक, उसके बाद…

'नहीं बाद की नौबत न आयेगी……अच्छा, विदा……याद रहे कि माधुरी आपकी है, और आप की ही रहेगी।'

कुछ क्षण बाद मदन बाहर निकला; माधुरी ने 'सुनो' कह कर फिर उसे वापिस बुला लिया। दो मिनट बाद वह सिर लटकाये हुये निकला और चुपचाप नीचे उतर गया।

और उसी समय आशा और चन्द्रनाथ ने सुना कि माधुरी रो रही है। दोनों साथ ही कमरे की ओर बढ़े, माधुरी मुंह फेर कर आंसू पोछने लगी।

उस काल चन्द्रनाथ का कवि-हृदय उस दग्ध भारतीय रमणी के लिये, जो अपने संस्कारों के कारण प्रेमी के साथ भागने में अक्षम थी, हाहाकार करने लगा।

अपने कौमार्य की सम्पूर्ण कोमलता से मदन को प्यार करके उस बालिका ने ऐसा कौन-सा पाप किया था? किस अपराध में वह आज इस दुःसह वेदना की वाहक बन गई थी?

उधर मालती और उसके पीछे सावित्री भी कमरे में जा रही थी। मालती के कपोल आँसुओं से गीले थे।

सावित्री पहुँच कर माधुरी को सान्त्वना देने की कोशिश करने लगी।

माधुरी पलंग पर बैठ गई थी और अभी तक वस्त्र से आँखें मल रही थी। रुंधे स्वर में बोली—मैं नहीं जानती थी कि ऐसा नतीजा होगा। दोष उन्हीं का है, उन्होंने शुरू किया था। मैं छोटी थी, अबोध थी, पर वे तो समझते थे; क्यों उन्होंने इतना बढ़ जाने दिया।

बहिन के समक्ष मालती की आंखों से और भी अधिक आंसू बहने लगे थे।

आशा माधुरी के पास पहुँच कर उसे समझाने की कोशिश करने लगी, सावित्री फिर मालती के पास खड़ी हो गई। किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा चन्द्रनाथ कमरे के दर्वाजे में मुँह फेर कर खड़ा हो गया।

लगभग बीस मिनट में वातावरण कुछ शान्त हुआ। माधुरी ने उठकर चलने की इच्छा प्रकट की। मालती ने डबडबाई आंखों से चन्द्रनाथ से कहा—आप उनकी जान बचाने की जिम्मेदारी लेंगे, वे अपने को कुछ कर न डालें।

आशा ने उससे कहा—बहिन, हम सब लोग उन्हें समझाने की पूरी कोशिश करेंगे, मैं तुम्हें चन्द्रनाथ बाबू की ओर से विश्वास दिलाती हूं...

चन्द्रनाथ—आप लोग दो मिनट रुकें, मैं रिक्शा का प्रबन्ध करता हूं।

२२

'आपने तो आज यहाँ अच्छा नाटक रचा,' दोनों बहिनों के चले जाने पर आशा ने चन्द्रनाथ को लक्ष्य कर कहा।

'यह साधारण नाटक नहीं, भयंकर ट्रेजेडी है; पहले से परिचय न

रहने के कारण आपको उसका ठीक अनुमान नहीं हो सकता।'

'सचमुच; मैंने इतनी ही देर में बहुत कुछ देख लिया। लेकिन मेरी यह समझ में नहीं आया कि इन लोगों के विवाह में अड़चन क्या है, क्यों माधुरी दूसरी जगह शादी करने को तैयार हो रही है!'

'माधुरी को स्वतन्त्रता कहाँ है, भारतीय लड़की है न। दूसरे, मदन बाबू पहले से ही विवाहित हैं।'

'सच; तब माधुरी क्यों उनके पीछे परेशान है?'

'प्रेम सदा हिसाब लगाकर नहीं चलता, इसलिये।'

'क्या मदन बाबू अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नहीं हैं?'

'नहीं।'

'तो इसका क्या ठिकाना है कि वे माधुरी से प्रेम करते रह सकेंगे; ऐसे व्यक्ति का विश्वास ही क्या है।'

'लेकिन यह तो तुम मानोगी कि माधुरी के प्रति उनकी आसक्ति कृत्रिम नहीं है। वस्तुतः उन्हें उससे सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं है।'

'क्या माधुरी जानती है कि वे विवाहित हैं?'

'यही नहीं, वह यह भी जानती है कि उनके बच्चा है।.......तभी तो कहा गया है कि प्रेम अन्धा होता है।'

'मैं ऐसे प्रेम को पसन्द नहीं करती; कुछ सोचना-समझना भी तो चाहिए।'

'क्या आपका खयाल है कि सोचने-समझनेवाला व्यक्ति प्रेम कर सकता है?'

'क्यों, क्या ऐसे व्यक्ति के हृदय नहीं होता?'

'हृदय प्रायः प्रेमास्पद के व्यक्तित्व को अपार सुषमा और अनन्त गुणों का अधिष्ठान देखता है, इसके विपरीत विचारशील बुद्धि की दृष्टि में कोई नर-नारी निर्दोष और पूर्ण नहीं हो सकता। इसी से मैं अनुमान करता हूँ कि प्रेम और सोचना-समझना एक-दूसरे के विरोधी हैं।'

'आप जिसे प्रेम कह रहे हैं उसे तो उपासना कहना चाहिये।'

'कभी-कभी मुझे यह सोचकर आश्चर्य होता है कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे में कुछ प्रेम करने योग्य पाते हैं...आपही बतलाइये मदन या माधुरी में ऐसी क्या विशेषता है?'

'यह तो उन्हीं से पूछना चाहिए; अवश्य ही वे एक-दूसरे में कुछ देखते होंगे।'

'माधुरी ने एक पत्र में संकेत किया था कि वह मदन के सीधेपन पर मुग्ध है; मदन बाबू सचमुच बड़े सरल हैं।'

'मैं तो समझती हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ प्रेम करने योग्य होता है, देखने वाली आंख चाहिये।'

आशा के इस वक्तव्य ने चन्द्रनाथ को चकित कर दिया। यह लड़की राजनीति की छात्रा होते हुये भी इतनी सहृदय है। कुछ हँसकर बोला—कहाँ, मुझे तो अपने में कोई ऐसी चीज़ नहीं दीखती जिसे कोई प्रेम करे।

'कैसी बात करते हैं आप......जो आपसे प्रेम करेगा वही न देख सकेगा कि आप में क्या-क्या विशेषतायें हैं।'

चन्द्रनाथ—कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि यदि मुझे अपने जैसा आदमी मिले तो उसे पसन्द करूँ या नहीं। इतना संशयालु मस्तिष्क और........

'इतने सहृदय और सच्चे', आशा ने बीच ही में जोड़ा।

चन्द्रनाथ ने चकित होकर उसपर दृष्टिक्षेप किया। आशा उठकर खड़ी हो गई थी; दूसरी ओर से सावित्री आ रही थी।

आकर बैठते हुये सावित्री बोली—माधुरी की शादी तो अब हो ही जायगी, आप कब तक अपना घर आबाद करेंगे?

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। सावित्री ने आशा को लक्ष्य कर कहा—तुमने छोटी बहिन को देखा? मुझे तो वह माधुरी से भी सुन्दर लगती है।

माधुरी से भी, जैसे माधुरी सौन्दर्य और उत्कर्ष का एकमात्र प्रतिमान हो। किन्तु वह कुछ बोला नहीं। आशा ने कहा—अच्छी तो है। चन्द्रनाथ बाबू के योग्य है।

'मैं तो कब से कह रही हूँ, वे लोग भी तैयार हैं; सिर्फ इन्हीं के "हाँ" करने की देर है।'

'आपने कभी यह भी सोचा है कि मैं भी किसी की पसन्द या योग्य हूँ या नहीं?'

'लो सुनो इनकी बात, कहीं लड़कियाँ भी पसन्द करने जाती होंगी।......ऐसा ही है तो पहले से क्यों नहीं कहा, मैं मालती से कहला देती; अब सही; कहिये तो कल ही फिर बुला भेजूं।'

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया जैसे सावित्री की बात का कोई महत्व न हो। इतने में नीचे नरेन्द्र की पदचाप सुनाई दी। वह ट्यूशन पढ़ाकर आ रहा था।

ऊपर आते ही नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ से कहा—अच्छा आप आ गये, खाना-पीना भी हो चुका क्या?

आशा—अभी किसी का खाना-पीना नहीं हुआ है; बस तुम्हारा ही इन्तज़ार था।

नरेन्द्र—आज तो आशा ने तुम्हारे लिये कुछ खास चीजें बनाई हैं।

चन्द्रनाथ—मेरे लिये या मुनिया के लिये?

आशा—भैया यों ही कह रहे हैं; सब कुछ तो भाभी ने बनाया है, मैंने क्या बनाया है।

नरेन्द्र—वाह! अंडों की वह चीज़ तुमने बनाई है या भाभी ने; भाभी भला उसे छू भी सकती हैं। (चन्द्रनाथ से) भई, असली बात यह है कि बहुत दिनों से मीठी आमलेट खाने को नहीं मिली थी; सोचा, आशा हैं तो क्यों न इनसे काम लिया जाय।

जब थालियां परोसी जाने लगीं तो नरेन्द्र ने सुनने योग्य स्वर में

आशा से कहा—भई तुम अपनी चीज़ चन्द्रनाथ बाबू की थाली में पूछ कर रखना, यह शाकाहारी हैं।

'क्या सचमुच आप अंडों से परहेज़ करते हैं; अंडा तो मांस नहीं है ?' आशा ने चन्द्रनाथ से कहा।

चन्द्रनाथ ने तर्क की संभावना से घबरा कर कहा—मुझे उतनी सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं, लेकिन अपने संस्कारों से मजबूर हूँ; वैष्णव घर में पला हूँ।

आशा—मेरे विचार में शिक्षा का एक उपयोग यह भी है कि वह हमें संस्कारों की प्रान्तीयता से मुक्त करे।...यदि हम मांसभक्षी जातियों को घृणा की दृष्टि से देखें तो हमें तीन-चौथाई से अधिक मानवता से घृणा करनी पड़ेगी।

चन्द्रनाथ—मैं समझता हूँ किसी के संस्कारों को न अपना सकने का अर्थ उससे घृणा करना नहीं है।...रही प्रान्तीयता की बात सो मैं आपके अभियोग को स्वीकार करता हूँ। साथ ही मेरा अनुमान है कि हम सभी किसी-न-किसी अंश में प्रान्तीय हैं।

नरेन्द्र—मैं आपके वक्तव्य का विरोध करता हूँ। मेरा दावा है कि मैं इस प्रकार की प्रान्तीयता से बिलकुल मुक्त हूं।

चन्द्रनाथ—(हंसकर)—शायद इसलिये कि गणित एक निर्जीव विषय है।

नरेन्द्र—जी नहीं, मैं कोरा गणितशास्त्री नहीं हूं।

चन्द्रनाथ—सो तो स्पष्ट है, आप पति हैं, पिता और भाई हैं; और शायद इन सब सम्बन्धों को प्राणिशास्त्र की वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं।

नरेन्द्र—वही तो उचित दृष्टि है; बाकी दृष्टियाँ एकांगी और प्रान्तीय हैं।

चन्द्रनाथ—विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से तो (आशा से—आप क्षमा करेंगी) पत्नी और बहिन में कोई अन्तर नहीं है।

नरेन्द्र—नहीं, कोई अन्तर नहीं है। यह तो मात्र कन्वेन्शन (रूढ़ि) है। मुसलमान लोग तो बहिन से शादी कर लेते हैं।

'सगी बहिन को छोड़कर।' कहने के साथ ही चन्द्रनाथ को भान हुआ कि तर्क की दृष्टि से उसने कोई महत्त्व की बात नहीं कही। नरेन्द्र ने उत्तर दिया—'हां; यह भी मानव-जाति की अन्धी रूढ़ि है।'

आशा—आप लोग बहुत आगे बढ़े जा रहे हैं। प्रान्तीयता छोड़ने से मेरा मतलब यह न था कि हम सभ्यता के सारे प्रतिबन्धों को ही छोड़ दें। लेकिन इन प्रतिबन्धों के भीतर भी तो हमारा दृष्टिकोण व्यापक या सीमित हो सकता है।

नरेन्द्र—जब एक बहस छेड़ी जाय तो उसे आखिरी छोर तक ले चलना चाहिये। सभ्यता के प्रतिबन्ध दस देशों में दस तरह के होते हैं। इसका साफ़ निष्कर्ष यह है कि उनमें कोई भी 'एब्सोल्यूट' (निरपेक्ष) रूप में मान्य नहीं है। यह कहना कि एक देश की रूढ़ि या प्रथा अच्छी है और दूसरे देश की बुरी, बिलकुल ग़लत है।

आशा—तुम्हारे कहने का मतलब यह हुआ कि क्योंकि अच्छाई-बुराई का कोई सर्वस्वीकृत पैमाना नहीं है, इसलिये अच्छाई-बुराई का भेद बनावटी है।

नरेन्द्र—बिलकुल यही।

चन्द्रनाथ—तब तो मनुष्य का मनुष्य को मारकर खाना भी बुरा नहीं समझा जाना चाहिये।

नरेन्द्र—सिर्फ़ यह कि उससे हम सब को असुविधा हो जायगी।

चन्द्रनाथ—और मित्रता तथा सहानुभूति को अच्छा भी नहीं कहना चाहिए।

थालियाँ आ चुकी थीं। नरेन्द्र ने मुंह में ग्रास ठूंस लिया था। उसी दशा में कठिनाई से बोला—आज तुम 'डिबेट' (विवाद) के 'मूड' में मालूम पड़ते हो। अब खाना खाओ।···मित्रता और सहानुभूति का महत्त्व इसमें है कि वे हमारी जीवन-यात्रा को सुगम बना देते हैं; वे हेल्प

अस् टु सर्वाइव इन् द स्ट्रगिल फार एग्ज़िस्टेन्स। और फिर उसने आशा से कहा—अरे, तुम्हारी थाली नहीं आई ?

आशा—मैं भाभी के साथ खाऊंगी।

नरेन्द्र—भाभी खाती रहेंगी, खाओ न।

आशा ने कोई उत्तर नहीं दिया। चन्द्रनाथ से बोली—मैंने बहुत सोचने की कोशिश की है कि अच्छाई-बुराई के भेद का मूल क्या है, लेकिन समझ में नहीं आया। आपने दर्शन पढ़ा है, कुछ प्रकाश डालेंगे ?

चन्द्रनाथ—एक मत जिसका नरेन्द्र ने समर्थन किया यह है कि जो हमारी अस्तित्व-रक्षा में सहायक हो वह अच्छाई है। दूसरा मत यह है कि जो हमारी सुख-वृद्धि करे वह शुभ है, बाकी अशुभ। वैज्ञानिक समझे जाने वाले यही दो मत हैं।

नरेन्द्र—आपका अपना मत क्या है, आइडियेलिस्टक। (अध्यात्म-वादी) यानी यह कि परमात्मा की भक्ति या मोक्ष जीवन का लक्ष्य है ?

चन्द्रनाथ—मैं शायद किसी भी मत को स्वीकार नहीं कर सका हूं; मोक्ष और ईश्वर दोनों की वास्तविकता में मुझे सन्देह है। लेकिन मेरी धारणा है कि स्नेह और सहृदयता अच्छी चीजें हैं, भले ही इसे प्रमाणित न किया जा सके।

आशा—इस मन्तव्य को तो हर कोई स्वीकार करेगा।

नरेन्द्र—यह कोई सिद्धान्त नहीं है, मात्र सेण्टीमेण्ट (भावुकता) है।

चन्द्रनाथ—मनोवैज्ञानिकों का अनुमान है कि हमारी अधिकांश मान्यतायें बुद्धि के बाहर यानी भावना में जन्म लेती हैं। (आशा से) सहृदयता के विकास को कर्त्तव्य मान लेने पर यह प्रतिबन्ध कैसे लगाया जा सकेगा कि वह मानव-साथियों तक ही सीमित रहे, पशु-पक्षियों के प्रति न बरती जाय?

आशा—लेकिन पृथ्वी के कुछ-भागों में तो मांस-भक्षण जीवन-

रक्षा के लिए ज़रूरी हो जाता है; वहां दूसरा भोजन मिलता ही नहीं।

चन्द्रनाथ—मजबूरी का नाम कर्त्तव्य तो नहीं है। कहा जाता है कि रूस में हारकर नैपोलियन के सैनिकों को घोड़ों का मांस खाना पड़ा था...भयंकर अकाल में मनुष्य मृत मनुष्यों को भी खा सकते हैं। किन्तु साधारणतया यह ज़रूरी नहीं है। विज्ञान ने यह सम्भव कर दिया है कि अनाज की उपज दसियों गुनी बढ़ाई जा सके। और जो जातियाँ शिकार करके जीवन बिताती हैं वे एक-दूसरे की हत्या भी बड़ी आसानी से कर डालती हैं।

नरेन्द्र—हत्या तो सभ्य कहे जाने वाले देशों में भी खूब होती है, बल्कि बड़े स्केल पर; और हत्या कर्त्तव्य समझी जाती है। हत्या करने वालों की प्रशंसा में कवि लोग गीत लिखते हैं।

चन्द्रनाथ—जब तक मानव-समाज में युद्ध नाम की वास्तविकता है तब तक उसे सभ्य नहीं कहा जा सकता।

नरेन्द्र—इसके मानी हैं कि तुम्हारी परिभाषा के अनुसार मनुष्य कभी सभ्य न बन सकेगा क्यों कि युद्ध जीवन-संघर्ष का आवश्यक नियम है।

आशा—युद्ध आवश्यक नियम है यह मार्क्सवाद नहीं मानता। लेकिन युद्ध का अन्त तब तक नहीं होगा जब तक वर्गहीन समाज की स्थापना नहीं होगी।

नरेन्द्र—यह मार्क्सवादियों का स्वप्न है। संघर्ष प्राणिशास्त्र का नियम है, और प्राणिशास्त्र तुम्हारे अर्थशास्त्र और राजनीति से ज्यादा "फ़एडामेन्टल" (मौलिक) विज्ञान है।

चन्द्रनाथ—इसके विपरीत गांधी जी का विचार है कि मानव-जीवन का मेरुदंड नीतिधर्म है, क्यों कि वही उसे पशुओं से अलग करता है।

नरेन्द्र—पशुओं से जो चीज़ मनुष्य को अलग करती है वह है

उसकी वैज्ञानिक बुद्धि जिसने प्रकृति पर नियंत्रण करके हमारी अद्‌भुत सभ्यता का निर्माण किया है।

चन्द्रनाथ—गांधी जी कहेंगे कि यह निर्माण व्यर्थ होगा यदि हम अपने व्यवहार पर नैतिक नियंत्रण न कर सकें। कोरी वैज्ञानिक बुद्धि निर्माण से कितना अधिक ध्वंस कर सकती है, इसका प्रमाण यह युद्ध है।

आशा—किन्तु मनुष्य के व्यापारों पर नियंत्रण भी तो मानव-प्रकृति के वैज्ञानिक अध्ययन के विना नहीं हो सकता।

नरेन्द्र—विलकुल ठीक; मैं मानता हूँ कि इस दिशा में मनोविज्ञान ही हमें सहायता दे सकता है, गांधी बाबा का उपदेश नहीं।

आशा—मार्क्सवाद का विश्वास है कि समाज का आर्थिक ढाँचा बदल कर ही हम मानव-जीवन को बदल सकते हैं।

चन्द्रनाथ—लेकिन वह ढांचा भी तो कुछ आदर्शों को सामने रखकर ही बदलना होगा। वे आदर्श हमें वैज्ञानिक बुद्धि से प्राप्त होंगे या नैतिक बुद्धि से ?...

कुछ देर चुप रह कर आशा ने कहा—आपका यह प्रश्न सचमुच मार्मिक है। आप क्या सोचते हैं ?

चन्द्रनाथ—मैंने इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय कर लिया है, ऐसा नहीं। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि सिर्फ मनुष्य के ही सामने "है" और "होना चाहिये", वास्तविकता और कर्तव्य, की समस्या खड़ी होती है। ऐसा विकल्प न जड़ पदार्थों के सामने रहता है न पशु-पक्षियों के।

आशा—सचमुच यह विचित्र बात है। मैं कुछ कर रही हूँ वह अपनी प्रकृति के अनुसार; उसमें अच्छे-बुरे का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। पानी नीचे की ओर बहता है इसमें अच्छाई-बुराई की क्या बात है। क्यों भैया ?

नरेन्द्र—आदमी का यह खब्तीपन है कि वह समझता है कि वह

जो कुछ करना चाहता है या कर रहा है वही उसका कर्त्तव्य नहीं है।

आशा—क्या कर्त्तव्य का प्रश्न उठाना खब्तीपन है? यह निष्कर्ष कैसा तो लगता है।

चन्द्रनाथ—मूल समस्या यही है; क्यों मनुष्य इतनी भयंकर गम्भीरता से कर्त्तव्याकर्त्तव्य का प्रश्न उठाता है!

खा चुकने पर नरेन्द्र ने आशा से कहा—अच्छा भाई, अब तुम खाने जाओ न।

'जाती हूँ', आशा ने उत्तर दिया। फिर चन्द्रनाथ पर दृष्टि डाल कर बोली—आप यह न समझें कि मैं मांस खाती हूँ, यद्यपि पिताजी और जीजी दोनो ही इसके अभ्यस्त हैं। एक बार मुझे टाईफ़ाइड हुआ था, तब से डाक्टर की आज्ञा से अंडे खाने लगी हूं। अंडे में तो जान नहीं होती?

चन्द्रनाथ—छोड़िए इस प्रसंग को; यों तो प्राणिशास्त्र के अनुसार बनस्पतियों में भी जीव होता है।

आशा—आप कहें तो आज से मैं अंडे खाना भी छोड़ दूँ। आपको बतलाऊँ कि मेरी मा भी वैष्णव थीं; उनका खाना पिताजी से अलग पकता था।

चन्द्रनाथ—अरे नहीं, मेरे पीछे आप क्यों कोई चीज़ खाना छोड़ेंगी।

आशा—क्या ज़रूरत है जब बिना अंडे के भी हम स्वस्थ रह सकते हैं। अच्छा आप दूध के विरुद्ध तो नहीं हैं न?

नरेन्द्र—दूध भी तो "एनीमल फूड" है।

चन्द्रनाथ—भई, इतना नियमशील मैं नहीं हूँ। फिर दूध तो हम अपनी मा का भी पीते हैं।

भोजन करने जाने से पहले आशा चन्द्रनाथ से कह गई कि अभी आप जायँ नहीं। चन्द्रनाथ बैठा रहा। थोड़ी देर में नरेन्द्र उठकर नीचे चला गया।

चन्द्रनाथ ने प्रत्युत्तर में नमस्ते किया और मुँह लटकाकर चल दिया।

२३

माधुरी की शादी की तिथि निकट आ रही थी। दूसरी नवम्बर को चन्द्रनाथ को निमंत्रण-पत्र मिला।

इस विवाह में सम्मिलित होने की उसकी तनिक भी इच्छा न थी। किन्तु उसे खयाल था कि उसके प्रति मकानमालिक का व्यवहार बड़ा कृपापूर्ण रहा है। पांच तारीख की संध्या में नरेन्द्र ने पहुंच कर उसे निश्चय करने को विवश किया। कपड़े पहन कर वह नरेन्द्र के साथ हो लिया।

माधुरी के घर काफी धूमधाम और समारोह था। मेहमानों की जिनमें बालक, वृद्ध और तरुण सब थे, खासी भीड़ थी। घर के समीप एक कच्चे कम्पाउण्ड में दो-सौ-ढाई-सौ कुर्सियां पड़ी थीं। सब लोग बरात की प्रतीक्षा में थे।

चन्द्रनाथ ऐसी भीड़ में कभी स्वस्थ महसूस नहीं करता। उसकी समझ में नहीं आता कि किससे क्या बात करे। जहाँ पान चबाते हुये बालक-बालिकाओं का उल्लास उसे अच्छा लगता है, वहाँ उसकी समझ में यह कभी नहीं आता कि क्यों तरुण लोग इस उत्सव में इतनी गहरी अभिरुचि लेते हैं, और क्यों वे बूढ़े, जो पचासों विवाह देख चुके हैं, फिर एक बार नई उमंग से आन्दोलित हो उठते हैं। और क्यों सबसे अधिक स्त्रियाँ विवाह की घटना से हर्षोन्मद हो जाती हैं? विवाह उन्हें इतना अधिक रोचक क्यों लगता है?

आज सौभाग्य से नरेन्द्र उसके साथ था, अतः उसे इतनी ऊब नहीं हो रही थी।

सहसा नरेन्द्र ने उसका ध्यान एक संभ्रान्त प्रौढ़ व्यक्ति की ओर आकृष्ट किया जो एक क़ीमती सर्ज की शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहने हुए थे।

'मैं भरसक ध्यान रक्खूंगा।' कुछ देर में उसने कहा—तो अब मैं चलूं?

आशा—अच्छा……आप के होने से मेरा बहुत जी लगा। अब कब भेंट होगी?

चन्द्रनाथ—कैसे कहूँ।

आशा—आप कभी इलाहाबाद नहीं आते, एक्समस (बड़े दिन) में आइये न।

चन्द्रनाथ—आपके घर मैं किस बहाने आऊं; आपके पिताजी से विशेष परिचय भी नहीं है।

आशा—इससे क्या, घर में सिर्फ पिताजी ही तो नहीं हैं।

चन्द्रनाथ—लेकिन घर तो पिताजी का ही है। ……आपके अपने घर आया करूँगा यदि आप बुलायेंगी तो।

आशा—किन्तु आपकी परिभाषा के अनुसार तो स्त्री का कोई घर ही नहीं होता। एक घर पिता का होता है तो दूसरा पति का।

चन्द्रनाथ—आप ही यहाँ आयें न।

आशा—कहाँ, आपके घर, बुलायेंगे तो ज़रूर आऊँगी।

चन्द्रनाथ—ऐसा भाग्य कहाँ कि आपको बुला सकूँ।

आशा—क्यों, क्या शादी में नहीं बुलायेंगे? मैं तो अभी से उम्मीद कर रही हूँ।

चन्द्रनाथ—यह आपने कैसे विश्वास कर लिया कि मेरी शादी हो रही है?

आशा—क्यों, भाभी जो कहती हैं। लड़की भी अच्छी है।

चन्द्रनाथ—भाभी को अपनी समस्या हल कर नहीं मिलती, दूसरों की गुत्थियाँ सुलझाती फिरती हैं।

मुनिया को सुलाकर सावित्री आ रही थी। चन्द्रनाथ ने खड़े होकर कहा—अब विदा दीजिये।

आशा उठकर खड़ी हो गई और हाथ जोड़कर बोली—अच्छा नमस्ते।

चन्द्रनाथ को नरेन्द्र की ईर्ष्या-भावना बड़ी विनोदपूर्ण लगी। पूछा—जब कामता बाबू इतने बड़े आदमी हैं तो लड़की की शादी मदन के साथ क्यों कर दी ?

नरेन्द्र—वह लड़की को शहर में ही देना चाहते थे; दूसरे, मदन काफ़ी सुन्दर है। फिर चार-पाँच वर्ष पहले कामता बाबू की स्थिति इतनी अच्छी भी न थी; और मदन के घर की हालत इतनी खराब न थी।

प्रतीक्षा करते-करते लगभग साढ़े-सात बजे बरात आई। दूल्हा तथा बच्चे मोटरों में थे और शेष लोग पैदल आ रहे थे। बराती लोग क्रमशः कुर्सियों पर बैठने लगे। वर को उतार कर द्वार-पूजा के लिये लाया गया। चन्द्रनाथ ध्यान से उस युवक को देखने लगा। क्या माधुरी मदन की तुलना में उससे प्रेम कर सकेगी, और सुखी हो सकेगी ?

ऊपर ज़मींदार साहब के मकान के बड़े छज्जे पर स्त्रियों का जमघट था। बिजली की बत्तियों के तीव्र प्रकाश में कुछ मनचले युवक और प्रौढ़ व्यक्ति भी घूर-घूर कर ऊपर की दिशा में देख रहे थे। एक बार, दो बार, अनेक बार; चन्द्रनाथ देखता है कि कुछ लोगों की दृष्टि नीचे ठहरती ही नहीं। इन देखनेवालों में कतिपय संभ्रान्त सज्जन भी हैं, और कुछ साधारण बल्कि गरीब दीखने वाले आदमी भी। वह व्यक्ति शायद किसी आफिस का चपरासी है, और दूसरा जिसके दांत बहुत ज्यादा पान के व्यवहार से लाल और अशोभन हो रहे हैं शायद कोई छोटा-मोटा दूकानदार है; वह बरात के साथ नहीं, ज़मींदार साहब के मेहमानों में है। और उधर एक काले चमकीले रंग तथा केशवाला व्यक्ति है, वह शायद कहार है। कितनी लालसा और लगन से वे ऊपर देख रहे हैं। वे किन्हें देख रहे हैं ? किन्हीं आकर्षक, अल्हड़ यौवनवाली युवतियों को जिन्हें, शायद, अपने इन प्रशंसकों के

अस्तित्व का भी आभास नहीं है । क्यों वे इतने लोभ से उन ललनाओं को देख रहे हैं जिन्हें वे स्वप्न में भी पाने की आशा नहीं रखते ? नारीत्व का यह कैसा प्रबल आकर्षण है, कितना उद्दाम, कितना लाचार बनाने वाला । एक सर्वथा अप्राप्य नारी की मोहक छवि का क्षणिक आभास पा जाने से पुरुष को क्या मिल जाता है ? उससे उसका, उसमें प्रवाहित जीवन-शक्ति का, कौन-सा हित सम्पन्न होता है ? अरे ! किसने, और क्यों, मनुष्य की गठन में इन दुर्बल वासनाओं का समावेश किया है ?

वह देखो वर को एक काष्ठ के आसन पर बिठाया जा रहा है । ऊपर से स्त्रियाँ पुष्प-वर्षा कर रही हैं । और नीचे कुछ पंडित लोग रोली, अक्षत आदि हाथ में लिये मंत्र-पाठ कर रहे हैं...द्यौः शान्ति रन्तरिक्षं शान्ति-रापः शान्तिः""यह शान्ति-पाठ क्यों ! क्यों मनुष्य अपने नर-नारी के सम्बन्ध को, वह सम्बन्ध जो मुख्यतः वासना-पूर्ति के लिये है, बच्चों की उत्पत्ति के लिये है, क्यों मनुष्य उसे ब्राह्मणों, बुजुर्गों और देवताओं के आशीर्वादों से महिमान्वित, पवित्रता-मंडित करना चाहता है ? क्या उसे यह प्रच्छन्न आभास है कि पति-पत्नी का सम्बन्ध, जो देखने में मात्र वैयक्तिक घटना है, बृहत् विश्व के लिये कोई अनिवार्य्य सार्थकता रखती है ? अथवा यह बर्बर युग से आता हुआ भय और आशंका का संस्कार मात्र है ?

बरात लौटने लगी । चन्द्रनाथ ने नरेन्द्र को लक्ष्य कर कहा—विवाह किस समय होगा ?

'शायद रात के बारह बजे ।'

'तब तो हम लोग चलें !'

'कहां घर ! अभी एक महत्वपूर्ण आइटेम बाकी है; जनवासे में नाच का प्रोग्राम है ।'

'यह कुप्रथा अभी तक चली ही जाती है ।'

'मनोरंजन को कुप्रथा क्यों कहते हो ! काशी की नर्तकियां तो

दूर-दूर जाती हैं, फिर यहां उनका उपयोग क्यों न हो। चलो, हम लोग भी बरात के साथ हो लें।'

'भई मैं ऐसी जगह नहीं जाना चाहता; फिर हम लोग लड़की के पिता की ओर से आमंत्रित हैं, वरपक्ष की ओर से नहीं।'

'इन सब "फार्मेल्टीज़" को देखा जाय तो ज़िन्दगी मुश्किल हो जाय। चलो, वहां कुछ नई चीजें देखने को मिलेंगी।'

न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत हो चन्द्रनाथ साथ चल दिया। कन्या-पक्ष के कुछ दूसरे लोग भी खानपान के प्रबन्ध में उधर ही जा रहे थे।

२४

दूसरे दिन सवेरे ही चन्द्रनाथ के कमरे में मदन ने प्रवेश किया। चन्द्रनाथ इसकी आशा कर रहा था – माधुरी के विवाहोत्सव में भी वह उसे खोजता रहा था—और मदन की इस घटना के प्रति क्या मनोवृत्ति होगी इसका भी उसने अनुमान किया था; पर सहसा आज मदन की दशा देखकर वह हतबुद्धि रह गया। पाँच-सात ही दिन में क्या मनुष्य इतना परिवर्तित हो सकता है! मदन के चेहरे पर मानो रक्त का कोई चिन्ह न था—और देखने से लगता था जैसे वह महीनों का बीमार है।

मदन चुपचाप चन्द्रनाथ की खाट में पड़ रहा। कुर्सी छोड़कर चन्द्रनाथ उसके पास आ बैठा, पर वह मदन से कुछ बोला नहीं।

किंतु मदन को चैन न था। कुछ देर पेट के बल लेटे रह कर वह बार-बार करवटें बदलने लगा। कुछ देर बाद उसके मुँह से निकला—मैं क्या करूँ? क्या करूँ चन्द्रनाथ बाबू?

चन्द्रनाथ चुपचाप उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। फिर बालों को सुलझाने की चेष्टा करता हुआ बोला—क्या करोगे; धीरज के सिवाय चारा ही क्या है।

फिर कुछ देर में उसने कहा—मुझे अब भी विश्वास नहीं कि माधुरी तुमसे उतना प्रेम करती है जितना कि तुम उससे। वह ज़रूर तुम्हें भूल जायगी, और इसलिये तुम भी उसे भुला देने की चेष्टा करो।

'हो सकता है माधुरी मुझे भूल जाय, लेकिन मैं…मैं उसे हर्गिज़ नहीं भूल सकता। भूलना नामुमकिन है।…क्या उससे मिलने का कोई उपाय नहीं है? क्या एक बार भेंट भी नहीं हो सकती?'

'भेंट करने से कोई लाभ नहीं।'

'मैं सोचता हूँ आज उसके घर जाऊं और कोई उपहार लेता जाऊँ। यह ठीक होगा न?'

'यदि ऐसा था तो तुम्हें कल जाना था, कल क्यों नहीं गये?'

'कल मेरी हालत बहुत खराब थी, मैं पागल हो रहा था…मैं हर्गिज़ नहीं जा सकता था। आज जाने में कोई हर्ज है? विदा के मौके पर…'

चन्द्रनाथ ने उत्तर नहीं दिया।

'एक और तरकीब भी है, मैं सेकण्ड क्लास का टिकट ले लूँ और इलाहाबाद तक उसी डिब्बे में बैठकर साथ जाऊँ। इसमें तो कोई हर्ज नहीं है?'

'पूरा डिब्बा रिज़र्व भी तो हो सकता है,' चन्द्रनाथ ने सूखी हँसी से कहा।

मदन बिस्तर में मुँह दबाकर जैसे कुछ सोचने लगा। फिर वह यकायक उठ बैठा और बोला—गर्मी लग रही है, पंखा नहीं है?

चन्द्रनाथ चकित होकर उसे देखने लगा।

अखबार उठाकर हवा करते हुये मदन ने कहा—'बदन में आग फुँक रही है; मैं जल रहा हूँ।' और फिर गम्भीर मुद्रा से—'यह मुहब्बत की आग है।' फिर बोला—'मैंने एक तरकीब सोची है—माधुरी से कहा भी था; क्यों न मैं फटे-पुराने कपड़े पहनकर माधुरी के

साथ चला जाऊँ और कह दूँ कि मैं ज़मींदार साहब का नौकर हूँ, सेवा करने आया हूँ…'

चन्द्रनाथ—यदि उन्होंने ज़मीदार साहब से पूछा तो !

'तो क्या…तो दिक्कत होगी ; इससे अच्छा यह है कि कुछ दिनों बाद जाकर नौकरी करूँ ; माधुरी मुझे ज़रूर रखवा लेगी।'

चन्द्रनाथ ने क़िस्से-कहानियों में पढ़ा है कि कतिपय उत्कट प्रेमी धूनी रमा कर प्रियतमा के घर के सामने पड़े रहते थे, पर उसने अब तक कभी ऐसे प्रेमी को देखा नहीं था, और न देखने की आशा ही की थी। यह मदन सचमुच पागल है ; नरेन्द्र ठीक ही कहता है कि वह खब्ती दिमाग़ का है।

'अब मेरा बचना मुमकिन नहीं है,' मदन ने सहसा खड़े होते हुये कहा। चन्द्रनाथ का हृदय काँप उठा ; पर वह उठकर मदन का हाथ नहीं पकड़ सका।

'मदन बाबू', उसने नम्र स्वर में पुकारा ; मदन धम से कुर्सी पर बैठ गया। चन्द्रनाथ ने कहा—'तुम्हारे ऊपर बूढ़ी चाची और अपाहिज भाई के परिवार का भी बोझा है ; इसे न भूलना।'

'हूँ', कहकर मदन फिर उठ खड़ा हुआ। थोड़ी देर में वह घर से बाहर हो गया।

* * *

दूसरे दिन मदन फिर चन्द्रनाथ के पास आया, और फिर उसके अगले दिन भी। चन्द्रनाथ भरसक उसे समझाने और सान्त्वना देने की चेष्टा करता। मदन कभी उत्तेजना से बात करता, और कभी चुपचाप पड़ा चन्द्रनाथ का समझाना सुनता रहता। प्रायः पाँच दिन बीतने पर उसने आकर चन्द्रनाथ से कहा—क्या बात है, अभी तक पत्र नहीं आया !

'किसका पत्र, मदन बाबू ?'

'माधुरी का, उसने पक्का वादा किया था।'

'लिखने का मौका नहीं मिला होगा ; नई जगह पहुँची है।'

'यह नहीं हो सकता ; माधुरी काफी चतुर है। जब आप के घर लिखने का मौका पा जाती थी तो वहाँ क्यों नहीं पा सकती।'

'फिर क्या कारण हो सकता है ?'

'यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।'

'माधुरी ने आपसे वादा किया था ?'

'पक्का वादा किया था, और कई बार वादा किया था।'

'मदन बाबू, आप इधर नरेन्द्र के घर गये हैं कि नहीं ?'

'नहीं, क्यों ? (कुछ रुककर) क्या वहाँ नरेन्द्र की वाइफ के पास कोई चिट्ठी आई है ?'

'नहीं।'

'नहीं ? हाँ जब मेरे ही पास नहीं आई तो वहाँ कैसे आती।'

'क्या वजह हो सकती है ?'

'वजह क्या, उसे मेरी परवाह नहीं है, और क्या।'

'सावित्री कहती थी कि माधुरी को बहुत ज्यादा गहना दिया गया है।'

'दिया होगा, इससे मुझे क्या।'

'मुझे क्या, गहने का बहुत आकर्षण होता है, मदन बाबू।'

'हूँ। लेकिन माधुरी कहती थी कि मुझे गहने की परवाह नहीं है ; मैं सिर्फ मुहब्बत की भूखी हूँ।'

'प्रत्येक स्त्री गहने-कपड़े की परवाह करती है, मदन बाबू।'

मदन चुप रहा।

चार दिन और बीत गये ; माधुरी का पत्र नहीं आया। मदन ने कहा—अब कोई उम्मीद नहीं है। आप ठीक कहते थे, गहने-कपड़े ने मुहब्बत को भुला दिया है।

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह सोच रहा था—प्रेम क्या है, और किसलिये है ? प्रेम के लिये ऐश्वर्य और आराम को

क्यों छोड़ा जाय? क्यों इनके अतिरिक्त किसी वस्तु से प्रेम किया जाय?

रात को उसने अपनी डायरी उठाई—इन दिनों वह डायरी बहुत कम लिखता था। उसमें लिखा—'प्रेम छलना है, छलावा है; जीवन में ठोस चीज़ है—ऐश्वर्य, धन और संपत्ति। मदन ग़रीब है, और इसीलिये अभागा।.......ठोस वास्तविकता की अवहेलना कर वह छाया के पीछे दौड़ रहा है।.......साधना भी तो कभी प्रेम करती थी; हूँ...साधना चतुर है, माधुरी चतुर है; हरेक नारी चतुर होती है। मूर्ख पुरुष हैं जो प्रेम की मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता है।'

२५

अगले दिन नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ से कहा—जानते हो कालेज में प्रबन्धसमिति के लिये शिक्षकों के प्रतिनिधि का चुनाव होने वाला है?

चन्द्रनाथ—नहीं, मुझे अभी तक नहीं मालूम; क्या हरीजी सच-मुच हटना चाहते हैं!

नरेन्द्र—हटना क्यों चाहेंगे; उनका टर्म (अवधि) पूरा हो चुका है।

चन्द्रनाथ—अच्छा; वे कहते भी थे कि बड़ी झंझट का काम है।

नरेन्द्र—तो भी वे अलग नहीं होना चाहते, लेकिन अबकी बार होना ही पड़ेगा।...तुमसे मुझे कहना था कि मैं उम्मीदवार होऊँगा; किसी से वोट का वादा मत कर देना।

चन्द्रनाथ—जब तुम खड़े होगे तो भला दूसरे किसी को वोट क्यों दिया जायगा।

नरेन्द्र—वह तो मैं जानता हूँ; मैंने इसलिये कहा कि किसी को वचन न दे बैठो।

चन्द्रनाथ—और कौन-कौन खड़ा होगा?

नरेन्द्र—अभी तक तो हरीजी ही खड़े होने की सोच रहे हैं।

चन्द्रनाथ--लेकिन वे तो एक बार प्रतिनिधि बन चुके हैं न ; अब किसी दूसरे को अवसर मिलना चाहिये।

नरेन्द्र—वह चाहते हैं कि प्रतिनिधि का पद उनकी मोनापोली (एकाधिकार) रहे।

चन्द्रनाथ को नरेन्द्र की बात का विश्वास नहीं हुआ।

एक दिन अचानक चन्द्रनाथ को ज्वर हो गया। उसने कालेज से दो दिन की छुट्टी ले ली।

दूसरे दिन कालेज से लौटकर नरेन्द्र सीधा चन्द्रनाथ के घर पहुँचा। चन्द्रनाथ लेटा था, ज्वर के कारण उसने पिछले दिन से खाना छोड़ दिया था और कुछ दुर्बलता महसूस कर रहा था।

'क्या सो रहे हो ?' नरेन्द्र ने दरवाज़े में घुसते हुये कहा।

'नहीं आओ।' चन्द्रनाथ उठकर बैठ गया। नरेन्द्र उसके घर बहुत कम आता था। उसने समझा कि उसकी अस्वस्थता के कारण ही वह आज वहां आ पहुँचा है।

किंतु बात दूसरी ही थी। नरेन्द्र प्रबन्ध-समिति के चुनाव में हार गया था, और उसकी खबर देने आया था। वह स्पष्ट ही बहुत उदास था।

'कितने वोट से हारे ?' चन्द्रनाथ ने पूछा।

'सिर्फ दो वोट से, इसीलिये तो और भी अफसोस है। स्टाफ काउन्सिल (शिक्षक समिति) का मंत्री बड़ा धूर्त है, आज तुम्हें और साइन्स विभाग के एक साथी को अनुपस्थित जानकर चुनाव कर लिया।......फिर भी मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे दो वोट कहां चले गये।'

चन्द्रनाथ—क्या कुछ लोग तुमसे प्रतिज्ञा करके उधर चले गये ?

'कहते तो सब यही हैं कि उन्होंने मुझे वोट दिये हैं, लेकिन देते तो जाते कहां ?'

'भला लोगों को झूठा आश्वासन देने की क्या ज़रूरत थी।'

'झूठे आश्वासन के अलावा एक और बात भी है ; प्रिंसिपल साहब खुद हरीजी की उम्मीदवारी में अभिरुचि ले रहे थे। मुझे संदेह होता है कि उन्होंने कुछ निर्वाचकों को अपने प्रभाव से तोड़ लिया।'

'ऐसा उन्हें नहीं करना चाहिये, उन्हें तटस्थ रहना चाहिये।'

'तुम नहीं जानते, इस कालेज में यह सब खूब चलता है। हरीजी प्रिंसिपल और सेक्रेटरी के खास अपने ही आदमी हैं।...... खैर, अब तो एक वर्ष के लिए बात टल गई।'

नरेन्द्र बहुत परेशान था इसलिये चन्द्रनाथ को उससे सहानुभूति हुई। किंतु अगले दिन कालेज में हरीजी के दीखने पर वह सोचने लगा—क्या आत्म-केन्द्रित अहंकारी नरेन्द्र की अपेक्षा वे प्रतिनिधि होने के अधिक योग्य नहीं हैं?

हरीजी ने सदा की भांति प्रफुल्ल मुद्रा से उसका स्वागत किया। पं० सीतानाथ चौबे उनके पास ही मौजूद थे। चन्द्रनाथ को देखकर कहा—आइये मिस्टर चन्द्रनाथ, कल आप नहीं आये? बड़ा भारी चुनाव था। आज शाम को दावत है, खूब मौज रहेगी।

'किस समय है दावत?' चन्द्रनाथ ने पूछा।

'बस कालेज टाइम के बाद। हमने तो तय कर लिया है कि केवल चार हिस्सा मिठाई लेंगे और भगवान का भजन करेंगे।'

'भगवान का भजन करेंगे!' हरी जी ने ईषत् हँसकर दुहराया, 'क्या बिना मिठाई खाये भगवान का भजन नहीं हो सकता?'

'बिना खाये-पिये भला कैसे भजन होगा? लोकोक्ति है, भूखे भजन न होय गोपाला। भगवान ने भी गीता में कहा है कि भोजन न करने वाले को योग सिद्ध नहीं होता—न चैकान्तमनश्नतः। क्यों चन्द्रनाथ जी?'

चन्द्रनाथ हंसने लगा।

'चन्द्रनाथ जी, हम लोग एक बात सोच रहे थे; यह कि आपको कमच्छा वाले हॉस्टल का सुपरिन्टेन्डेन्ट बना दिया जाय; लड़कों के बौद्धिक जीवन के लिये अच्छा रहेगा,' हरी जी ने गम्भीर होते हुये कहा।

हरी जी को यह मालूम नहीं है कि चन्द्रनाथ ने चुनाव में नरेन्द्र को वोट देने का वचन दिया था, यह सोचकर वह संकुचित हो गया। बोला—क्षमा कीजिये हरी जी, मुझसे सुपरिन्टेन्डेन्ट का काम निभ न सकेगा।

'क्यों निभने को क्या है, यही बीस-तीस मिनट रात को घूमकर देख लेना और हाज़िरी ले लेना; ऐसा अधिक काम नहीं है। दो नौकर सदैव आपके अनुशासन में रहेंगे।'

चतुर्वेदी—अच्छा तो रहेगा; साल में एक बार मित्र लोगों की दावत करने का भी सौभाग्य मिलेगा।

हरी जी—(हँसकर)—दावत करना क्या इतना जरूरी है ?

चतुर्वेदी—ज़रूरी अवश्य है; सज्जन सुपरिन्टेन्डेन्ट लोगों का नियम रहा है; चन्द्रनाथ जी नियम का पालन न करें, यह सम्भव नहीं है।

चन्द्रनाथ—हरीजी, मैं सचमुच ही इस पद के योग्य नहीं हूँ... कुछ क्षेत्रों में मैं नितांत आलसी सिद्ध हो सकता हूँ।

कालेज-समय के बाद जो दावत हुई उसमें, चन्द्रनाथ ने आश्चर्य से देखा, नरेन्द्र नहीं था। उसकी इस अभद्रता पर उसे बड़ा क्षोभ हुआ। रात को नरेन्द्र के घर पहुँच कर चन्द्रनाथ ने उससे शिकायत की। नरेन्द्र ने कहा—डैम इट; ऐसे बदमाशों की पार्टी में भला मैं शरीक होता फिरूँगा।...मैं उनकी किसी की परवाह नहीं करता।

चन्द्रनाथ—तुम अपनी धारणा में ज़रूरत से ज्यादा अनुदार हो, नरेन्द्र।

नरेन्द्र—मैं अनुदार हूँ। तुम इन लोगों की मनोवृत्ति से ठीक

परिचित नहीं हो; एक-से-एक बढ़कर कूटनीतिज्ञ हैं।

चन्द्रनाथ--लेकिन तुम्हारे सिद्धांतों के अनुसार तो कूटनीति कोई बुरी चीज नहीं; हरेक को अपना स्वार्थ जोड़ने का अधिकार है।

नरेन्द्र—मैं स्वार्थ-साधन को बुरा नहीं कहता, स्वार्थी तो सभी हैं; मुझे जिस चीज़ से नफ़रत है वह है हिपोक्रिसी (दाम्भिकता)। एक ओर हरीजी कहते हैं कि प्रतिनिधि का पद बड़ी झंझट है; दूसरी ओर उसके लिये सब तरह के कर्म करने को तैयार रहते हैं।

नरेन्द्र को हरीजी से क्यों इतना द्वेष है यह चन्द्रनाथ कभी नहीं समझ पाया है। हरी जी आस्तिक हैं, विश्वासी हैं, इसीलिये तो उसे उनसे इतनी चिढ़ नहीं है ? और यदि प्रिंसिपल साहब ने हरीजी के चुनाव के लिये कुछ कोशिश की तो उसके लिये स्वयं हरीजी को कैसे दोषी ठहराया जा सकता है ?

और उसके मन में प्रश्न उठा—यदि चुनाव के दिन वह कालेज में मौजूद होता तो, हरीजी उपस्थिति में, क्या वह स्वयं उनके विरुद्ध वोट दे सकता ! हरीजी के व्यक्तित्व में सचमुच एक निराली आकर्षण-शक्ति है; अवश्य ही यह शक्ति उनके चरित्र की निर्मलता से सम्बद्ध है। आज कितने सरल भाव से वे उससे सुपरिण्टेण्डेण्ट बनने को कह रहे थे ! एक बात ज़रूर है--उन्हें अपनी शक्ति की चेतना है, और उसका प्रयोग भी कर सकते हैं, लेकिन सिर्फ दूसरों की भलाई के लिये ही। शायद वे समझते हैं कि दूसरा कोई व्यक्ति प्रबन्ध-समिति में पहुँचकर अधिकारी जनों का हित-साधन नहीं कर सकेगा।

२६

एक दिन हरीजी ने चन्द्रनाथ से कहा—आप जानते हैं, हमारे कालेज के सेक्रेटरी साहब बड़े धर्मप्राण व्यक्ति हैं। समृद्ध लोग प्रायः अहंकारी और धर्म-विमुख हो जाते हैं, पर सेक्रेटरी साहब के व्यक्तित्व में आपको ऐसी कोई चीज़ नहीं मिलेगी। इधर उन्होंने एक धार्मिक

संस्था की स्थापना की है जिसका एकमात्र उद्देश्य धर्म-प्रचार है। संस्था का नाम रक्खा गया है, "धर्म महामंडल"। शीघ्र ही उसका बड़े समारोह से उद्घाटन होगा। सेक्रेटरी साहब चाहते हैं, और यह स्वाभाविक भी है, कि उसमें कालेज के अध्यापक भी भाग लें। आप इसे कैसा समझते हैं?

'मैं तो इसमें कोई आपत्ति नहीं देखता।'

'कुछ लोगों को पुनीत से पुनीत कार्य में अभिसंधि की गन्ध आने लगती है। हमारे कालेज में भी ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, इसलिये मैंने आपकी सम्मति पूछ ली। आप किस विषय पर भाषण देना चाहेंगे?'

'मेरा विषय आप "धर्म की आवश्यकता" रख सकते हैं,' चन्द्रनाथ ने क्षण भर सोचकर उत्तर दिया।

हरीजी—विषय बढ़िया है और आप उसपर योग्यता-पूर्वक बोल भी सकेंगे।

सांझ को चन्द्रनाथ नरेन्द्र के घर की ओर चल दिया। इधर प्रायः एक सप्ताह से वह वहाँ नहीं गया था, कारण यह था कि इन दिनों सावित्री वहां नहीं थी, वह बच्चों के साथ मायके गई हुई थी। बच्चों के आभाव में चन्द्रनाथ को वह घर सूना-सूना जान पड़ता और वहां से उसका जी उचाट खाता।

पहुँचने पर चन्द्रनाथ ने पाया कि नरेन्द्र एक दूसरे सज्जन के साथ बैठा शतरंज खेल रहा है।

'आओ,' कहकर नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ को बिठा लिया, और वह खेल में व्यस्त हो गया।

जिस तल्लीनता से दोनो खेल रहे थे उससे लगता था कि परिस्थिति बड़ी नाजुक है। अपनी थोड़ी जानकारी के अनुपात में चन्द्रनाथ ने खेल को समझने की कोशिश की, दोनो ओर के बादशाहों पर नज़र डाली और यह देखा कि किधर कितने मोहरे बाकी हैं। पर इससे खिलाड़ियों की तल्लीनता का रहस्य नहीं खुल सका। हार कर उसने

अपनी दृष्टि अलग कर ली।

बरबस उसकी आंखें नरेन्द्र के साथी पर टिक गई। गौरवर्ण, लम्बा किन्तु मांसल चेहरा, कुछ बड़ी ठोड़ी; स्वस्थ, गुंथा हुआ शरीर। मुख पर सहज सौम्यता का भाव। चन्द्रनाथ उस व्यक्तित्व से विशेष प्रभावित हुआ।

इतने में नरेन्द्र ने एक चाल चली और दृढ़ता से पुकार कर कहा—अब ले लिया।

और फिर उसने चन्द्रनाथ को समझाते हुये कहा—देखो, इनका बज़ीर चक्कर में आ गया है, अब बच नहीं सकता।

दूसरे सज्जन ने उसका रुख मारते हुये कहा—लीजिये, आप फ़र्जी ले लीजिये।

नरेन्द्र अब कुछ तेजी से खेल रहा था। दूसरे सज्जन ज्यादा सोच-समझ कर चल रहे थे। थोड़ी देर में नरेन्द्र की मुद्रा गम्भीर होने लगी। चन्द्रनाथ ने देखा कि उसका बादशाह घिरता जा रहा है।

लगभग पन्द्रह मिनट में बाज़ी समाप्त हो गई। नरेन्द्र ने कहा—मैं जरा जल्दी कर गया इसी से बाज़ी खराब हो गई। वज़ीर पीटकर कुछ बेफिक्र हो गया था। एक बाज़ी और जमे?

'अब खत्म कीजिये; आपके मित्र को अच्छा नहीं लग रहा होगा।'

नरेन्द्र ने मोहरे सहेजते हुये दोनों का परिचय कराया। 'आप हैं मेरे सहयोगी, मिस्टर चन्द्रनाथ; और आप श्री योगेन्द्र मिश्र, प्रसिद्ध सोशलिस्ट लीडर।'

चन्द्रनाथ—आपका नाम तो बहुत दिनों से सुना था, परिचय का सौभाग्य आज मिला''' बड़ी प्रसन्नता हुई।

योगेन्द्र—मुझे भी''' मैं भी आपके नाम से अपरिचित न था।

नरेन्द्र—योगेन्द्र बाबू को साहित्य से भी काफी दिलचस्पी है।

चन्द्रनाथ—बड़ी सुन्दर बात है'''इस समय आप कहाँ हैं!

'इस समय तो मैं नरेन्द्र बाबू का मेहमान हूँ; वैसे खानाबदोश

हूँ,' कह कर योगेन्द्र मुस्कराया।

नरेन्द्र—यह कहीं एक जगह नहीं रहते, जब तक कि जेल में न पहुँच जायँ ; पार्टी के काम से इधर-उधर घूमते रहते हैं।

थोड़ी देर बाद चन्द्रनाथ ने पूछा—क्या आप समझाने की कृपा करेंगे कि कम्यूनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियों में क्या मुख्य भेद है ?

योगेन्द्र—आप सिद्धान्त की बात पूछते हैं तो दोनों में कोई खास भेद नहीं है। खुद कार्लमार्क्स ने अपनी पुस्तकों में कम्यूनिज़्म और "साइंटिफिक सोशलिज्म" (वैज्ञानिक समाजवाद) शब्दों का एक अर्थ में प्रयोग किया है। दोनों ही का लक्ष्य है ऐसी व्यवस्था क़ायम करना जिसमें उत्पादन और वितरण के साधनों पर व्यक्तियों के बदले पूरे समाज का अधिकार होगा।

चन्द्रनाथ—कहा जाता है कि कम्यूनिज़्म निजी सम्पत्ति के विरुद्ध है जब कि सोशलिज़्म उसके विरुद्ध नहीं है।

योगेन्द्र—कम्यूनिज़्म का आदर्श तो यही है, यानी ऐसे समाज की स्थापना जहाँ सब चीजें समान रूप में सब की होंगी, लेकिन...

नरेन्द्र—यहाँ तक कि लोगों की बीवियाँ भी अलग-अलग नहीं होंगी, है न ? मुझे कम्यूनिज़्म की यह चीज़ पसंद है।

योगेन्द्र—जी हाँ, और इसका मतलब यह है कि नारी पुरुष-विशेष की संपत्ति नहीं रहेगी, जैसा कि आज है। कम्यूनिस्ट न होते हुये भी मैं इस व्यवस्था को इतना ख़राब नहीं समझता।

नरेन्द्र—मैंने तो यह नहीं कहा कि यह व्यवस्था खराब है। मैं तो ईमानदारी से चाहता हूँ कि ऐसी व्यवस्था हो। मिस्टर चन्द्रनाथ, तुम्हारी क्या राय है ?

चन्द्रनाथ—मैंने इस बारे में कभी ठीक से सोचा नहीं। (योगेन्द्र से) आप कुछ कह रहे थे ?

योगेन्द्र—मैं कह रहा था कि यद्यपि कम्यूनिज़्म का आदर्श निजी

सम्पत्ति का लोप है लेकिन, जैसा कि मार्क्स ने भी "मैनीफैस्टो" में कहा है, उसकी खास विशेषता है उस निजी सम्पत्ति को मिटा देना (मार्क्स उसे बूर्जुआ सम्पत्ति कहता है) जिसके ज़रिये एक व्यक्ति दूसरों का शोषण करता है, यानी उत्पादन और वितरण के साधनों पर के निजी प्रभुत्व को। इस संबंध में सोशलिज़्म और कम्यूनिज़्म में कोई भेद नहीं है।

चन्द्रनाथ—तो फिर भारत की सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट पार्टियाँ एक क्यों नहीं हो जातीं ?

योगेन्द्र—यह एक दिलचस्प सवाल है। उत्तर है—दो कारणों से। एक, कम्यूनिस्टों का खयाल है कि पूँजीवादी व्यवस्था को खत्म करने के लिये सशस्त्र क्रांति ही एक मात्र रास्ता है जब कि सोशलिस्टों का विचार है कि वैधानिक यानी जनतंत्र की प्रणाली से भी समाजवादी व्यवस्था क़ायम हो सकती है।

नरेन्द्र—इस मामले में कम्यूनिस्ट लोगों की राय ही ठीक है, आप लोग सिर्फ खयाली पुलाव पकाते हैं।

योगेन्द्र—(गम्भीरता से) हो सकता है।······ (चन्द्रनाथ से) दूसरा और ज़्यादा महत्त्व का अन्तर—जिसके कारण दोनों पार्टियों-वाले कभी एक नहीं हो सकते—यह है कि कम्यूनिस्ट पार्टी की नीति हमेशा रूस से संचालित होती है और वे लोग अपने देश के भले-बुरे का विचार नहीं करते। इसी का फल है कि आज युद्ध-विरोधी मोर्चा बनाने में वे देश की जनता और कांग्रेस के साथ नहीं हैं। जब से रूस ने युद्ध में प्रवेश किया है तब से कम्यूनिस्ट इस समर को लोक-युद्ध कहने लगे हैं; इससे पहले वे इसे साम्राज्यशाही युद्ध कहते थे।

नरेन्द्र—सच पूछो तो यह युद्ध न साम्राज्यशाही युद्ध है, न लोक-युद्ध; वह कोई लम्बा-चौड़ा हिसाब लगाकर शुरू नहीं किया गया है। इट् इज़ जस्ट अ नैसेसिटी ऑव् ह्यूमैन नेचर (युद्ध एक मानवी

आवश्यकता है, उसकी जीव-प्रकृति की आवश्यकता); युद्ध हमेशा से होता आया है और हमेशा होता रहेगा।

योगेन्द्र—(नरेन्द्र से) अब मैं आपके उस आक्षेप का जवाब दूँ जो आपने वैधानिक तरीकों के खिलाफ उठाया था। पिछले महा-युद्ध के बाद वैधानिक तरीकों से ही ब्रिटेन की मज़दूर पार्टी अपनी सरकार बना सकी थी, और मेरा खयाल है कि इस लड़ाई के बाद फिर वैसा ही होगा।

नरेन्द्र—अगर ब्रिटेन ज़िन्दा बचा तब, वर्ना तो सम्राट के भवन पर हिटलर का झंडा लहरायेगा।

योगेन्द्र—इसके विपरीत मेरा खयाल है कि अब हिटलर की हार निश्चित है, और होनी चाहिए—हिटलर इतिहास की शक्तियों के विरुद्ध लड़ रहा है।

नरेन्द्र—यह सब माइथालॉजी (पौराणिक कल्पना) है। अभी तक तो इतिहास हिटलर के साथ ही रहा है।

चन्द्रनाथ ने देखा कि दोनों मित्र झगड़े के मूड में आ रहे हैं अतः उसने "धर्म महामंडल" के उद्घाटन की चर्चा छेड़ दी।

इसका इच्छित प्रभाव पड़ा। नरेन्द्र ने उठते हुए कहा—अच्छा! तो अब सेक्रेटरी साहब "धर्म महा मंडल" की स्थापना करेंगे। जितना धर्म अब तक कमाया है उससे सन्तुष्ट नहीं हैं क्या?

यह कह कर वह चाय बनाने के लिये स्टोव जलाने लगा।

चन्द्रनाथ उसके व्यंग्य को बिलकुल ही नहीं समझ सका। नरेन्द्र ने योगेन्द्र को लक्ष्य कर कहा—रायसाहब रामसुभग सिंह को तुम जानते हो, वही अपने कालेज के सेक्रेटरी हैं। उनकी मिल में तुम्हीं ने एक बार हड़ताल कराई थी।

योगेन्द्र—मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ।

नरेन्द्र—वे ही महाशय अब "धर्म महामंडल" की स्थापना कर रहे हैं। बेईमान, ये पूंजीपति एक नम्बर के बेईमान हैं। यहाँ मैं मिस्टर

योगेन्द्र से पूरी तरह सहमत हूँ। (चन्द्रनाथ से) जानते हो, कुछ वर्ष पहले तक रायसाहब के साथ .....

योगेन्द्र—इस सबके कहने से फ़ायदा।

नरेन्द्र—फायदा यही कि यह हमारे दोस्त आगाह हो जायँ।... हाँ तो दो-तीन वर्ष पहले तक एक परम सुन्दरी वेश्या—उसे वेश्या ही कहना चाहिये या कुछ और?

योगेन्द्र—अँग्रेजी में एक शब्द है "कान्कुबिन"

नरेन्द्र—वही सही, जो किसी देशी नरेश के यहाँ से नाराज़ होकर चली आई थी, रायसाहब के पास एक अलग मकान में रहती थी। पाँच-सौ रुपये मासिक उसे खर्च के लिये दिये जाते थे। याद रखिये सस्ती के समय में पांच-सौ रुपये बहुत होते थे। दो-ढाई वर्ष पहले उसकी अचानक मृत्यु हो गई। तबसे, सुनते हैं, सेक्रेटरी साहब को दुनिया से वैराग्य होने लगा है।

चन्द्रनाथ चुप रहा।

नरेन्द्र—लेकिन एक बात रायसाहब के पक्ष में कही जा सकती है। सुना है—यद्यपि मुझे विश्वास नहीं—कि इस सम्बन्ध के बाद वे किसी दूसरी परकीया से नहीं फँसे।

चन्द्रनाथ—उन्होंने विवाह तो किया होगा न?

नरेन्द्र—जरूर किया, लेकिन पत्नी से सम्बन्ध का नाम तो प्रेम नहीं है, प्रेम तो परकीया से ही होता है, क्यों मिस्टर योगेन्द्र!

योगेन्द्र—मुझे इस दिशा में कोई अनुभव नहीं। अच्छा अब आज्ञा दीजिये।

नरेन्द्र—अरे अभी! चाय तो पीते जाओ।

योगेन्द्र रुक गया। नरेन्द्र ने चाय उड़ेल कर एक प्याला योगेन्द्र को और दूसरा चन्द्रनाथ को दिया। फिर योगेन्द्र से पूछा—चाय के साथ आमलेट लोगे, आज ठंड का दिन है?

योगेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं'

'क्यों, क्या तुम पर भी वैष्णवों का असर पड़ गया !' कहते हुये नरेन्द्र ने मेज के ड्राअर में से दो अंडे निकाले और उन्हें प्याली में फोड़ कर फेंटने लगा।

चन्द्रनाथ के लिये अब यह नया दृश्य न था; धीरे-धीरे वह इसका अभ्यस्त हो गया था। अपने इस परिवर्तनपर उसे आश्चर्य था क्योंकि पहली बार जब नरेन्द्र ने उसके सामने अंडा फोड़ा था तो वह जुगुप्सा के भाव को बड़ी मुश्किल से प्रकट करने से रोक सका था।

योगेन्द्र के चले जाने के बाद कुछ देर को खामोशी हो गई।

कुछ क्षण बाद चन्द्रनाथ ने मौन भंग किया—योगेन्द्र बाबू को तुम कब से जानते हो, नरेन्द्र ?

'बहुत दिनों से। क्यों, तुम्हें कैसे लगे ?'

'देखने से तो बड़े सौम्य जान पड़ते हैं।'

'लेकिन हैं बड़े कर्मठ और लड़ाके, सरकार इनसे बहुत घबराती है। और बड़े दिमाग़दार हैं, शतरंज काफ़ी अच्छी खेलते हैं।'

अन्तिम बात पर चन्द्रनाथ मन-ही-मन हंसा। नरेन्द्र अपने को शतरंज का बड़ा खिलाड़ी लगाता था, आज उसके सामने ही वह योगेन्द्र से हार गया। उसकी दृष्टि में योगेन्द्र की बुद्धिमत्ता का यही बड़ा प्रमाण था।

थोड़ी देर में चन्द्रनाथ उठने लगा।

'अरे क्यों, बैठो। तो तुमने "धर्ममहामंडल" में व्याख्यान देने का निश्चय ही कर लिया क्या ?'

'हरीजी को वचन दे दिया है।'

'अच्छी बात है, लेकिन मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ कि इन रईसों से ज़्यादा अन्तरंग होना ठीक नहीं, विशेषतः तुम जैसे स्वाभिमानी आदमी के लिये। ये लोग दूसरे की इज्जत कुछ नहीं समझते, और इनका धर्म और विद्या का प्रेम तो सिर्फ ढोंग है।'

'अन्तरंग होने का प्रश्न ही नहीं उठता, मुझे तो सिर्फ व्याख्यान

दे देना है । वैसे तो मैं सेक्रेटरी साहब की शक्ल से भी ठीक परिचित नहीं हूँ, यद्यपि इंटरव्यू में वे ज़रूर उपस्थित रहे होंगे ।'

नरेन्द्र—मैं जानता हूँ, और मैं यह भी जानता हूँ कि हरीजी का तुम पर कितना असर है । सम डे यू विल् बी डिस् इल्यूज़एड (किसी दिन तुम्हारी आंखें खुलेंगी) ।

चन्द्रनाथ—शायद हरीजी सेक्रेटरी साहब के बारे में यह सब नहीं जानते ।

नरेन्द्र—कौन हरीजी, वह तो सेक्रेटरी साहब की सात पुश्त का हाल जानते होंगे । लेकिन सेक्रेटरी साहब ने कोई ऐसा खराब काम थोड़े ही किया है, बड़े लोग सब ऐसे शौक करते हैं । ये सब विधि-निषेध तो ग़रीब मिडिल क्लास (मध्यवर्ग) वालों के लिये ही हैं ।

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

२७

नरेन्द्र की प्रकृति के जिस एक तत्व से चन्द्रनाथ विशेष सन्तुष्ट और प्रभावित है वह है उसका खरापन । नरेन्द्र कभी लगी-लिपटी बात नहीं करता, जो कुछ कहता है स्पष्ट और निर्भ्रान्त । उसे स्वयं भी अपनी बात में किसी प्रकार की दुविधा या शंका नहीं रहती । उसका दावा है कि वह बड़े सुलझे दिमाग का आदमी है, सिर से पैर तक वैज्ञानिक । और योगेन्द्र ? आज चन्द्रनाथ रह-रह कर इस नव-परिचित व्यक्ति के बारे में सोच रहा था । अवस्था पैंतीस के आस-पास होगी, चन्द्रनाथ से बड़ा ही होगा ।''''कितनी दीप्ति है उसके चेहरे पर । पूर्ण स्वास्थ्य की सम्पूर्ण कान्ति । मस्तिष्क सुलझा हुआ मालूम पड़ता है । विचारों में दृढ़ता है, पर नरेन्द्र की कर्कश हठवादिता नहीं । चन्द्रनाथ ने पाया उसके मन में योगेन्द्र को अधिक जानने की उत्सुकता है ।

जाड़े की रातें जैसे काटे नहीं कटतीं । कितनी जल्दी सांझ हो

जाती है। अकेला घर, एकान्त का सन्नाटा, काटे खाता है। गर्म रजाई के भीतर लेटा चन्द्रनाथ एक अनिर्वाच्य वेदना से आकुल हो कर बार-बार करवटें बदलता है।

कितनी रातें उसने इस प्रकार काटी हैं।...आखिर उसे कष्ट क्या है? नौकरी उसे मिली हुई है, भोजन-वस्त्र का अभाव नहीं है; और कला-साधना के लिये समय भी है। इधर उसने काफ़ी कवितायें लिखी हैं। उनमें से अधिकांश का विषय किसी की याद है। वह किसे याद करता है? सुशीला को? पर उससे तो उसे ऐसा गहरा अनुराग न था। फिर क्यों उसका संगीत बारम्बार विरह की तानों में फूट पड़ता है?

नरेन्द्र कहता है कि संसार के सारे विधि-निषेध गरीब मध्यवर्ग वालों के लिये हैं; समृद्ध लोगों के लिये कुछ भी वर्जित नहीं है।

नरेन्द्र अविश्वासी है, नास्तिक; उसने कभी किसी धार्मिक साधना की आवश्यकता महसूस नहीं की। शायद इसका कारण है कि वह जीवन में कोई अभाव ही महसूस नहीं करता। लेकिन यह सच नहीं, नरेन्द्र निरन्तर प्रयत्नशील है....उच्च पद के लिये, बढ़िया नौकरी के लिये। छिः! यह भी कोई अभाव है।

नरेन्द्र के व्यक्तित्व में किसी गहरे अभाव का आलोड़न नहीं। तभी तो वह व्यक्तित्व छिछला मालूम पड़ता है, कम महत्वशाली। यह गहरा अभाव क्या है? उसकी पूर्ति कहाँ है! धार्मिक खोज के मूल में शायद ऐसे ही अभाव की प्रेरणा रहती है।

और वह सोच रहा है—धर्म-महामंडल के उद्घाटन पर एक ऐसा भाषण दिया जाय कि जिसमें नास्तिकता के सारे तर्क कट जायँ....जिसका तर्कनाशील नरेन्द्र पर प्रभाव पड़े और...योगेन्द्र पर भी।

क्या योगेन्द्र उस दिन उपस्थित होगा? चन्द्रनाथ इस दिशा में प्रयत्न करेगा।

दुर्भाग्यवश, अगले दस-बारह दिनों में, चन्द्रनाथ की योगेन्द्र से भेंट न हो सकी। अपने भाषण के बारे में विचार-रूप तैयारी करता हुआ चन्द्रनाथ इस बात से उदास था, जैसे उसके व्याख्यान का मुख्य श्रोता योगेन्द्र ही हो। फिर वह यह सोचकर सन्तोष करता कि चलो नरेन्द्र तो होगा। उसे यह प्रच्छन्न विश्वास था कि नरेन्द्र के माध्यम से उसके भाषण की विचार-शृंखला, और प्रशस्ति, योगेन्द्र तक पहुंच ही जायगी।

क्यों वह अपना भाषण योगेन्द्र को सुनाने को इतना उत्सुक था वह वह स्वयं भी न जानता था।

एक दिन मदन उसके पास आया—इधर मदन ने चन्द्रनाथ के पास आना एकदम कम कर दिया था; चन्द्रनाथ ने उससे "धर्म-महामंडल" के उद्घाटन की चर्चा छेड़ी। मदन ने उसमें कोई अभिरुचि नहीं ली। यह मदन निरा सिड़ी है, खब्ती और बुद्धू, एक साधारण लड़की के लिये वह इतना परेशान हो सकता है और धर्म जैसे महत्त्वपूर्ण विषय में उसे तनिक भी रुचि नहीं है। फिर भी चन्द्रनाथ ने मदन को इस बात के लिये राजी कर लिया कि वह उद्घाटन के समारोह में सम्मिलित हो।

वह स्वयं उक्त अवसर की बड़े मनोयोग से प्रतीक्षा कर रहा था। व्याख्यान की तैयारी के सिलसिले में उसकी इच्छा थी कि एक बार हरी जी से भेंट और वार्तालाप कर ले, पर, दुर्भाग्यवश, ऐसा संयोग मिल न सका। एक दिन वह इस काम के लिये हरी जी के घर भी गया, पर भेंट न हो सकी। फलतः वह अपने ही भीतर घुसकर धर्म-प्रेरणा के तत्व का मंथन करने लगा।

२८

'सज्जनो! भारतवर्ष जैसे धर्मप्राण देश में, और काशी जैसी पवित्र नगरी में, यह प्रश्न उठाना कि क्या जीवन में धर्म की कोई

आवश्यकता, उसके लिये कोई जगह है, विचित्र लगता है। लेकिन आज के युग में यह प्रश्न उठाना बड़ा ज़रूरी हो गया है, वह अनिवार्य रूप से उठ रहा है। आज के युग का वातावरण इस प्रश्न-चिह्न की उपस्थिति से संक्षुब्ध है...

'यहाँ मैं यह स्पष्ट कर दूं कि धर्म से मेरा अभिप्राय कोरी नैतिकता से नहीं है; मेरा मतलब उस मनोवृत्ति से है जो इस लोक से कुछ ज़्यादा ऊंची चीज़ की खोज करती है। उस ऊंची चीज़ को आप मोक्ष कह सकते हैं, अमरता कह सकते है, ईश्वर कह सकते हैं।

"धर्ममहामंडल" के उद्घाटन का समारोह एक विशाल भवन के बृहत् हाल में हो रहा था। कई वक्ता बोल चुके थे, और अब चन्द्रनाथ बोलने को खड़ा हुआ था। सभा में नरेन्द्र तो मौजूद था ही, चन्द्रनाथ ने आश्चर्य और प्रसन्नता से देखा कि योगेन्द्र भी है। मदन भी अन्यमनस्क-सा एक ओर बैठा था। कालेज के प्रिंसिपल, भुवन बाबू, अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे थे। इन सब परिचितों की उपस्थिति वक्ता को प्रभावित और उत्तेजित कर रही थी।

'आज के अधिकांश विचारक,' चन्द्रनाथ ने आगे बढ़ते हुये कहा, 'इस परिणाम पर पहुँचे हुये, अथवा पहुँचते हुये, मालूम पड़ते हैं कि जीवन में धर्म का कोई स्थान नहीं है। धर्म मात्र छलना है, एक सुखद स्वप्न, मन को बहलाने का एक दुर्बल साधन; वास्तव में धर्म की, परलोक की, ईश्वर की, अमरत्व की कोई सत्ता या स्थिति नहीं है। धार्मिक विश्वासों और संस्थाओं का इतिहास, तथा-कथित धार्मिक लोगों का जीवन और विज्ञान की प्रगति सब इस बात की साक्षी देते हैं कि धर्म मिथ्या है, ढोंग है, छलावा है...।

'पिछली चार शताब्दियों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि

धर्म ने हमेशा ज्ञान का, वैज्ञानिक अन्वेषकों का विरोध किया है, सदैव धर्माचार्यों ने साइंस को कोसा है और उसके अन्वेषकों को भीषण यातनायें दी हैं....धर्म ने गेलिलियो को जेल में सड़ाया, और ब्रूनो को जीवित जलाया। सदा से धर्म स्वतन्त्र चिन्तन का विरोधी रहा है जिसका मतलब है कि वह सत्य का विरोधी है। यदि धर्म का वश चलता तो वह विज्ञान की एक भी खोज या अविष्कार को अस्तित्व में न आने देता और न मनुष्य की नई सभ्यता का निर्माण ही होने देता।

'और हुआ यह कि कालान्तर में सदैव विज्ञान की जीत हुई है और धर्म की हार; क्रमशः धर्म या तो अपने पुराने मन्तव्यों का परित्याग करता आया है या उनकी नई विज्ञान-सम्मत व्याख्यायें...

'दूसरे, धर्माचार्यों और धार्मिक संस्थाओं ने सदैव अत्याचारी शासकों का साथ दिया है, कभी दलितों और पीड़ितों का नहीं। धर्म ने राजा को ईश्वर का अंश घोषित किया, और ग़रीबों को सिखाया कि उनके कष्ट पिछले जन्मों के फल हैं।...इसीलिये लेनिन ने कहा कि धर्म जनता की अफीम या शराब है, जनता को बेहोश कर देने का ढंग, जिससे ग़रीब जनता अपने अधिकारों के लिये न लड़े, और चुपचाप अपना शोषण कराती रहे.......

'हमारा समाज, हमारे पंडित और पादड़ी, उन पूंजीपतियों को धार्मिक कहकर प्रशंसा करते हैं, खुशामद करते हैं, जो लाखों मज़दूरों के परिश्रम से नाजायज़ फायदा उठाकर अपने लिये बड़ी-बड़ी कोठियों का निर्माण करते हैं, बेशकीमती फर्नीचर, मोटरकारें, और पोशाक खरीदते हैं, ऊँचे प्रासादों में मखमली गद्दों पर रेडियो सुनते हुये विहार करते हैं। जो गरीबों के दुःख और तकलीफों को देख ही नहीं सकते, जो यह सोच ही नहीं सकते कि ग़रीब श्रमिकों को भी स्वच्छ हवा, स्वच्छ पानी, स्वच्छ मकान, दूध, घी आदि की ज़रूरत है...'

'ऐसे लोगों को हमारे पंडित और धर्माचार्य दानी कहते हैं, अखबारों में उनके फ़ोटो निकलते हैं... इसीलिये लेनिन ने कहा है कि...।'

चन्द्रनाथ ने महसूस किया कि उसके पीछे कुछ खड़बड़ हो रही है। किसी व्यक्ति ने काग़ज़ का एक पुर्जा उसके हाथ में दिया। पुर्जे को खोलते हुये उसने कहा—संक्षेप में धर्म के विरुद्ध यही सब अभियोग हैं। नीचे दृष्टि करके उसने पुर्जा पढ़ा, लिखा था—'भाषण शीघ्र खत्म कर दीजिये।' चन्द्रनाथ उत्तेजना की अवस्था में था, वह बड़े आवेग से बोल रहा था। वह सहसा समझ न सका कि उसके भाषण में ऐसी क्या खराबी है—क्यों उसे निर्धारित समय तक बोलने से रोका जा रहा है। क्षोभ और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की दशा में वह यकायक बोलना बन्द करके अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। उसकी गर्दन अपमान और लज्जा से अवनत हो रही थी।

उसी समय हरीजी बोलने को खड़े हुये। चन्द्रनाथ के मन में कुछ आशा बँधी। शायद अपनी प्रभावशाली वाणी से हरीजी उसके प्रति किये गये अपमान का प्रतिकार करें।

'आदरणीय सभापति महोदय और बन्धुओ!' हरीजी ने प्रशान्त, धीमे स्वर में शुरू किया, 'आज धर्म महामंडल के उद्‌घाटन के इस पुनीत अवसर पर इस विशाल भवन में जिज्ञासुओं का जमघट हुआ है। जिज्ञासु का काम है मार्ग की खोज, पथ का अन्वेषण। जिज्ञासु तार्किक नहीं होता, वह कुतर्क नहीं करता, वह तो बड़े विनीत भाव से, बड़ी नम्रता से गुरुओं से प्रश्न करता है—तद्‌विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। ऐसे ही जिज्ञासुओं को गुरु उपदेश करता है, उन्हें ही तत्व-बोध होता है। कुतर्क द्वारा बाल की खाल खींचने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। यह तो पतन का रास्ता है। वास्तव में आज हम बड़े पतित हो गये हैं, इतने पतित, इतने नीच कि धर्म जैसे

पवित्र, अवाङ्मनस गोचर तत्व के चिन्तन के अवसर पर भी हम "लेबर" और "कैपिटल" (मजदूर और पूंजीपति) आदि ऐहलौकिक, क्षणभंगुर, नाशवान पदार्थों का प्रश्न उठाये बिना नहीं रह सकते। यह हमारे पतन की पराकाष्ठा है। हमारी गर्दन शर्म से झुक जानी चाहिये। वास्तव में आज कलिकाल में हम इस योग्य नहीं रह गये हैं कि धर्म जैसे गहन तत्व पर विचार करें।,

चन्द्रनाथ यह सब सुन रहा था, और उसका रक्त अपमान की ज्वाला से मानो जल रहा था। हरीजी के बाद दूसरे कई वक्ताओं ने भाषण दिये और अन्त में 'धर्म महामंडल' के प्रतिष्ठापक के प्रति अनेकानेक धन्यवाद, प्रशस्तियां और श्रद्धांजलियां अर्पित करके सभा विसर्जित हुई।

भवन से बाहर निकल कर हरीजी ने हंसते हुये चन्द्रनाथ से पूछा—'आपने मेरे प्रवचन का बुरा तो नहीं माना !' चन्द्रनाथ कोई ठीक उत्तर न दे सका।

२१

रात काफ़ी जा चुकी थी। बड़े क्षुब्ध चित्त को लिये चन्द्रनाथ अपने घर पहुंचा। उसका मस्तिष्क बड़ा आंदोलित था और वह अपने को ठीक ढंग से सोचने में असमर्थ पा रहा था। हरीजी...हरीजी, आज उन्होंने सहसा उसका ऐसा विरोध क्यों किया ? क्यों उनके भाषण में इतनी कटुता थी ? क्यों उन्होंने उस पर इतने तीक्ष्ण प्रहार किये ? 'पतित' और 'नीच,' कितने गौरव के साथ इन विशेषणों का प्रयोग किया गया था ! चन्द्रनाथ इन शब्दों को चेष्टा करने पर भी नहीं भुला पा रहा है। इन शब्दों का प्रयोग उसके भाषण, उसकी मनोवृत्ति, स्वयं उसे लक्ष्य करके किया गया था। "पतित" और "नीच" कौन है ? वह जो ईमानदारी से स्वयं सोचने की कोशिश करता है ? जो संदेह करता है ? जो युग की अवहेलना नहीं करता ?

जो सहज ही परम्परागत विश्वासों को ग्रहण कर लेने का अभ्यस्त नहीं है ?

"पतित" और "नीच" क्या मार्क्स पतित था, लेनिन नीच था—वे जिन्होंने संसार के पीड़ितों के लिये अपने विश्राम और सुख को होम दिया ? क्या वे वैज्ञानिक जिन्होंने अपने रक्त के अंतिम कणों को सुखा कर प्रकृति के रहस्यों का पता लगाया, सत्यान्वेषण के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दी. सत्य की स्वीकृति के लिये भयंकर विरोध और यातनायें सहीं—पतित थे ? जो अपना तन-मन देकर सत्य की खोज करता है वह पतित है, और पवित्र है वह जो अपरीक्षित परम्पराभुक्त विश्वासों को स्वीकार करके सर्वज्ञता के गर्व से फूला हुआ फिरता है !

"पतित और नीच" हरीजी, वे हरीजी जो उसके प्रति इतना स्नेह प्रकट करते रहे हैं, जो उसकी बौद्धिक साधना से सुपरिचित हैं और प्रारम्भ में उसकी प्रशंसा भी कर चुके हैं, जिनके व्यक्तित्व में वह इतनी श्रद्धा रखता आया है...कैसे वे उसके प्रति ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सके ? इस घोर विपर्यय का क्या रहस्य है ! इसके मूल में क्या है ?

माना कि हरीजी सहज विश्वासी हैं, पर वे एक दूसरे व्यक्ति के प्रति जो दूसरे ढंग से सोचता है, दूसरे ढंग से सत्य को खोजने का प्रयत्न करता है, इतने असहिष्णु, इतने निष्ठुर और निर्मम कैसे हो सकते हैं ? क्या यही मनुष्यता है, यही उदारता, सहृदयता और महानुभावता है ?

क्यों हरीजी ने ऐसी बातें कहीं ? वे उनके योग्य न थीं, एक जिज्ञासु के योग्य न थीं । वे एक सदाशय व्यक्ति के मुख से नहीं निकलनी चाहियें थीं । और फिर, वह तो धर्म का मंडन करने खड़ा हुआ था, खंडन नहीं । उसने जो कुछ कहा वह तो पूर्वपक्ष था, उसे उत्तर देने का तो अवसर ही नहीं दिया गया । क्या

हरीजी इस बात को नहीं समझ सके थे ? क्या यह सम्भव है ?

और फिर जैसे उसने अतीत को उद्भासित करते हुए एक पारदर्शी क्षण में देखा कि हरीजी सदैव से, प्रायः शुरू से ही, उसके, सिर्फ उसके व्याख्यानों की आलोचना करते आये हैं । वे अक्सर उसके बाद बोलते रहे हैं, और प्रायः उसके मन्तव्यों का विरोध करते रहे हैं। इस दृश्य ने उसे स्तंभित कर दिया । मानो, हरीजी की दृष्टि में, संसार का सारा असत्य चन्द्रनाथ के ही भाषणों में समाया रहता है ।

दूसरे दिन, सुबह लगभग साढ़े-आठ बजे, नरेन्द्र ने योगेन्द्र के साथ प्रवेश किया। चन्द्रनाथ आज देर से सोकर उठा था, अभी ही शौचादि से निवृत्त हुआ था। दोनों का उसने 'आइए' कह कर स्वागत किया और फिर चुप होकर बैठ गया । योगेन्द्र आज पहली बार उसके घर आया था, इसलिए उसे प्रसन्न होना चाहिए था। आतिथ्य के नाते ही उसे योगेन्द्र की ओर अवधान देना चाहिए था। पर, कर्त्तव्य का अनुभव करते हुए भी, वह कुछ कह या कर नहीं पा रहा था।

'योगेन्द्र बाबू तुम्हें कल के भाषण के लिये बधाई देने आये हैं,' नरेन्द्र ने मौन भंग किया ।

चन्द्रनाथ चकित होकर वक्ता को देखने लगा। क्या नरेन्द्र मज़ाक़ कर रहा था !

'बधाई देने का कारण यह है,' योगेन्द्र ने नरेन्द्र का अनुमोदन करते हुए कहा, 'कि कल आपने हमारे पक्ष का बड़ा जोरदार प्रतिपादन और समर्थन किया।'

चन्द्रनाथ – कहाँ, मैं तो अपनी बात कह ही नहीं पाया। जो कुछ कहा वह तो पूर्वपक्ष था !

योगेन्द्र –यह मैं जानता हूँ। कट्टरपंथियों की उस सभा में इसी चीज़ की जरूरत थी। मुझे प्रसन्नता है कि आपको आगे बोलने से रोक दिया गया।

चन्द्रनाथ—इसका कारण मेरी समझ में नहीं आया।

नरेन्द्र—कारण तो स्पष्ट था ; राय साहब को तुम्हारा व्याख्यान पसन्द नहीं आ रहा था।

योगेन्द्र—आपने पूंजीपतियों के विरुद्ध कुछ ज्यादा स्पष्ट बातें कह दी थीं।

नरेन्द्र—उस वक्त राय साहब का चेहरा देखने योग्य था ; तरह-तरह के एक्सप्रेशन्स (व्यंजनायें) उस पर दौड़ रहे थे।

चन्द्रनाथ—लेकिन वास्तव में किसी पर कटाक्ष करना मेरा लक्ष्य न था ; मैं बिल्कुल सामान्य बात कह रहा था। उस समय मेरे मस्तिष्क में लेनिन के कुछ उद्‌गार घूम रहे थे।

नरेन्द्र—धार्मिक लोग इतने तीखे सत्य के अभ्यस्त नहीं होते। खैरियत हो यदि तुम्हें इतने ही दंड से छुटकारा मिल जाय।

चन्द्रनाथ—इसका मतलब ? क्या इससे अधिक भयंकर दंड भी हो सकता था।

नरेन्द्र—जी हाँ, जरूर हो सकता था ; तुम्हें कालेज की नौकरी से छुट्टी दी जा सकती थी। लेकिन अब इसकी सम्भावना नहीं है ; हरीजी ने अपने व्याख्यान द्वारा उसे अनावश्यक बना दिया। उतना ही काफ़ी हो गया।

चन्द्रनाथ—कल हरीजी का व्यवहार मेरी समझ में एकदम नहीं आया।

योगेन्द्र—उनका लक्ष्य राय साहब के डिगे हुये आत्म-सम्मान की रक्षा करना था, और कुछ नहीं।

नरेन्द्र—बात इतनी ही नहीं है। हरीजी इनके व्याख्यान की अक्सर आलोचना करते हैं। असल में वे बड़े ईर्ष्यालु प्रकृति के हैं ; वे नहीं चाहते कि किसी दूसरे का व्याख्यान उनसे बढ़कर हो।

योगेन्द्र—उनकी यह इच्छा अस्वाभाविक नहीं, पर उसकी पूर्ति वे जो तरीका इख्तियार करते हैं उसकी सक्षमता में सन्देह

किया जा सकता है। सच पूछिये तो उनके कल के व्याख्यान का अच्छा असर नहीं पड़ा। मेरे कुछ वकील मित्र, जिन्हें चन्द्रनाथ बाबू का व्याख्यान बहुत पसन्द आया था, हरीजी के वक्तव्य की कड़ी आलोचना कर रहे थे और उनपर खुल्लमखुल्ला ईर्ष्यालु और खुशामदी होने का आरोप कर रहे थे।

चन्द्रनाथ – मुझे आश्चर्य है कि काफ़ी लोगों को यह भ्रम हुआ कि मैं धर्म के विरुद्ध बोल रहा था।

नरेन्द्र—ऐसा भ्रम तो शायद किसी को नहीं हुआ, राय साहब और हरीजी को छोड़कर।

योगेन्द्र—मैं आप से सहमत हूं। वास्तव में उस तरह के भ्रम की गुंजाइश ही न थी। (चन्द्रनाथ से) लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि धर्म के विरुद्ध इतने प्रबल तर्क रखने के बाद आप उसके पक्ष में क्या कहते।

चन्द्रनाथ—मैं यह दिखाने की चेष्टा करता कि धर्म, अर्थात् किसी असीम अनन्त की खोज, मनुष्य की मौलिक आवश्यकता है।

योगेन्द्र—मनुष्य को जो मौलिक आवश्यकता होगी वह कमोबेश हरेक के जीवन में दिखाई पड़ेगी। मुझे तो दुनिया के किसी व्यक्ति में यह अलौकिक खोज दिखाई नहीं देती।

नरेन्द्र—क्यों, क्या आपकी सम्मति में हरीजी और राय साहब अनन्त के खोजी नहीं हैं?

योगेन्द्र—इसका निर्णय स्वयं चन्द्रनाथ बाबू करेंगे। (चन्द्रनाथ से) जिसे आपने कल नैतिक स्तर कहा था उससे ऊंची किसी चीज़ की कल्पना मैं नहीं कर सकता। न मैं उस व्यक्तित्व से ऊंचे मनुष्यत्व की कल्पना कर सकता हूँ जो रात-दिन अपनी समूची शक्तियों से पीड़ित मानवता का हित-साधन करता है।

चन्द्रनाथ चुप रहा।

योगेन्द्र ने खड़े होते हुये मन्द किन्तु दृढ़ स्वर में कहा—जीवन

की मौलिक आवश्यकतायें सिर्फ तीन हैं, भोजन-वस्त्र, सेक्स और आत्म-सम्मान। कोई भी मनुष्य इन तीन चीजों से पूर्णतया सन्तुष्ट हो सकता है। यदि हम दुनिया के प्रत्येक मनुष्य को ये तीनो चीजें दिलाने का प्रयत्न करते रहें, तो हमारा जीवन सार्थक या धार्मिक कहलाने का हक़दार होगा।

नरेंद्र—आप की परिभाषा के अनुसार माननीय राय साहब और हरीजी को धार्मिक कहा जा सकता है या नहीं ?

योगेन्द्र—नहीं, क्योंकि वे दूसरों के व्यक्तित्व को दबा कर, दूसरों के आत्म-सम्मान को कुचल कर बड़े बनना चाहते हैं।...सिर्फ सोशलिस्ट समाज में ही प्रत्येक व्यक्ति अपने परिश्रम और प्रतिभा के बल पर आत्म-सम्मान का अर्जन कर सकता है। पूंजीवाद की भित्ति ही दूसरों का शोषण है; वहां श्रम और प्रतिभा को खरीदा जा सकता है। और इसीलिये उन्हें पददलित और अपमानित किया जा सकता है।

नरेन्द्र—हियर, हियर। मिस्टर योगेन्द्र आज तुम्हें बधाई देने को जी होता है। जीवन की आवश्यकताओं का इतना स्पष्ट और सही विश्लेषण आज से पहले मेरे सामने कभी नहीं आया। मैं समझता था मार्क्सवादी सिर्फ ज़िन्दगी के आर्थिक पहलू को ही देखते हैं।

योगेन्द्र—अपनी दृष्टि और चिन्तन को सीमित करने के पक्ष में मैं कभी नहीं रहा। मैं समझता हूँ फ्रायड और एडलर की खोजों में बहुत-कुछ सचाई है।

सहसा चन्द्रनाथ ने मौन भंग कर कहा—मानवी आवश्यकताओं की दृष्टि से आपका यह विश्लेषण क्या अपूर्ण नहीं है ? मानव जीवन में सत्य और सुन्दर की खोज का भी स्थान है।

नरेन्द्र—वह खोज तो हरीजी कर ही रहे हैं, उसके लिए दूसरों को परेशान होने की क्या ज़रूरत है !

योगेन्द्र जो बीच में बैठ गया था, अब फिर उठ खड़ा हुआ। बोला—मिस्टर चन्द्रनाथ, मुझे ग्यारह बजे की गाड़ी से जाना है, और उससे पहले भी कुछ काम है, इसलिये मैं ज्यादा देर नहीं रुक सकूंगा।....मैं सिर्फ यह कहने आया था कि कल की घटना से आप खिन्न न हों, सत्य के निर्मम परीक्षक को ऐसे अपमान अक्सर झेलने पड़ते हैं।...और यह कि अभी आप, खुले मन से, अपनी खोज जारी रक्खें।....आप के प्रश्न के बारे में मुझे यही कहना है कि आप जरा 'सत्य' और 'सुन्दर' शब्दों के अर्थ को ज्यादा स्पष्टता से प्रत्यक्ष करने की कोशिश करें। आखिर ये शब्द हैं क्या—वे किस यथार्थ या आदर्श स्थिति को व्यक्त करते हैं, उनका व्यावहारिक मतलब क्या है।...ये तथा-कथित ऊँचे आदर्श हमें, व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिये, क्या करने की प्रेरणा देते हैं।

योगेन्द्र, और उसके साथ नरेन्द्र, चला गया। चन्द्रनाथ ने पाया कि वह मिश्रित कृतज्ञता, सन्देह और जिज्ञासा की वृत्तियों से आलोड़ित हो रहा है।

३०

योगेन्द्र खास तौर से उससे यह कहने आया था कि वह पिछले दिन की घटना से खिन्न न हो यह सोच कर चन्द्रनाथ का जी भर आया। और उसे ध्यान हुआ कि जीवन में इस तरह की सहानुभूति प्रकट करने वाले उसे बहुत कम मिले हैं। क्यों सहानुभूति इतनी दुर्लभ है, होनी चाहिए?

हरीजी और योगेन्द्र, दोनो कितने भिन्न हैं! दोनों के जीवन-दर्शन कितने विरोधी हैं! एक के प्रयत्नों का केन्द्र है, यह जगत; यहां का सुख-दुःख ही उसे वास्तविक लगता है, और दूसरा—वह इस जगत को नगण्य समझता है।

क्या यह सम्भव है? क्या हम इस जगत के सुख-दुख से

उदासीन हो सकते हैं ? क्या हरीजी इस प्रकार उदासीन हैं ?

नरेन्द्र कहता है हरीजी ईर्ष्यालु हैं, खुशामदी हैं, वे सेक्रेटरी साहब के इतिहास से अपरिचित नहीं, फिर भी......।

फिर भी...तो क्या नरेन्द्र के आरोप सही हैं ? क्या हरीजी में भी ईर्ष्या-द्वेष है, क्या वे भी इस बात को इतना महत्व देते हैं कि सभा में उनका भाषण सर्वश्रेष्ठ समझा जाय ?

तो क्या उनके सुख-दुःख, सन्तोष-असन्तोष का मूल भी इसी जगत में है, क्या वे भी आनन्द के, तृप्ति के, किसी दूसरे स्रोत से परिचित और सम्पृक्त नहीं हैं ?

क्या उन्हें भी कभी किसी भगवान का, किसी शाश्वत, आनन्द-मयी सत्ता का, साक्षात्कार या सम्पर्क नहीं हुआ है ? क्या वे भी साधारण लोगों की तरह...।

वह भय से देखता है कि उसे नरेन्द्र के आरोप सही मालूम पड़ रहे हैं...वह हरीजी में आस्था खो रहा है, भूमा और स्थितप्रज्ञता की संभावना में आस्था खो रहा है......।

अरे, क्या हरीजी भी हम सबकी तरह हैं। ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार... क्या यही मानव-प्रकृति की वास्तविकता है !

लेकिन क्या यह सम्भव नहीं कि उसे हरीजी के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमी हुई हो—ग़लतफ़हमी बड़ी सुलभ वस्तु है ; शायद हरीजी भी उसके सम्बन्ध में उसी के शिकार हुये हैं। अवश्य ही ऐसी कुछ बात है। अन्यथा हरीजी जो सहज स्नेह और प्रसाद की प्रतिमूर्ति हैं, जिन्हें उसने कभी क्षुब्ध या विचलित होते नहीं देखा, कैसे.......।

वह बैठकर हरी जी को पत्र लिखने लगा।

मान्य हरी जी,

बहुत ही क्षुब्ध और व्यथित चित्त से मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ।......आपके प्रति मेरे हृदय में प्रारम्भ से ही बहुत सम्मान और स्नेह रहा है, ऐसा स्नेह जिसे श्रद्धा भी कहा जा सकता है।

शायद इसका कारण यह था कि आपमें कुछ गुण या क्षमतायें हैं जिनसे मैं कोरा हूँ। और कुछ भी हो, मैं अगुण-ग्राहक नहीं हूँ। स्वयं विश्वासी न हो पाने पर भी आपके अखण्ड विश्वासभाव और साधना को मैं आदर की ही नहीं, ममत्व की दृष्टि से देखता आया हूँ। और मैं मन-ही-मन इस बात से सन्तुष्ट होता रहा हूँ कि ये दुर्लभ वस्तुयें मुझे इतने निकट से देखने को मिल रही हैं। पूर्ण विश्वास के अभाव में भी मुझे आपकी साधना से बल और आश्वासन मिलता रहा है।

किन्तु "धर्ममहामंडल" के कल के समारोह में, सहसा, मेरी इन वृत्तियों को आघात पहुँचा। सत्य ही, मैं इस आघात के लिये बिलकुल तैयार न था। मेरे भाषण और व्यक्तित्व को लक्ष्य करके कल आपने जो कुछ जिस ढंग से कहा उसकी प्रेरणा कहाँ से आई थी? क्या उसका मूल स्नेह में हो सकता था, क्या वह हमारे स्नेह-सम्बन्ध के अनुरूप था ? अथवा...अथवा उसकी प्रेरक सेक्रेटरी साहब को प्रसन्न करने की इच्छा थी? क्या यह सम्भव है कि ऐसी प्रेरणा आपके कार्यों को निर्धारित करे?....बोलते समय मुझे बिल्कुल आभास या कल्पना न थी कि मेरी वक्तृता से किसी को कष्ट हो रहा है, या हो सकता है। मैं तो केवल, पूरी ईमानदारी से, प्रतिपक्ष के तर्कों का विवरण दे रहा था।

आपके व्यक्तित्व को आधार बना कर मैं एक स्वप्न पालता आया हूँ, यह कि इस युग में भी इस प्रकार की आध्यात्मिक साधना सम्भव और फलवती हो सकती है जिसकी क्रीड़ा-भूमि संघर्षमय जगत के हानि-लाभ न होकर अनन्त या भूमा की गोद है आप मेरे लिए उसके अस्तित्व और महत्व दोनों का प्रमाण रहे हैं।...आपके व्यवहार में किसी भी छोटी वस्तु का समावेश देखने से मेरा यह स्वप्न भंग होने लगता है...ईश्वर के वास्ते मेरे इस स्वप्न को भंग न होने दीजिये। मेरी विश्वास-भावना के अन्तिम आधार को ठेस न पहुँचाइये। मुझे समझाइये कि आपके कल के व्यवहार का मैं क्या अर्थ निकालूँ,

उसे कैसे, किस आलोक में, समझ कर अपने मन को परितोष और सान्त्वना दूँ........

पत्र लिखकर उसने उसे एक सादे लिफाफे में बन्द किया, और अपने तकिये के नीचे रख लिया।

उस समय उसने यह नहीं सोचा था कि वह पत्र हरीजी को कभी नहीं दिया जा सकेगा।

३१

कालेज खुलने पर चन्द्रनाथ ने अपने को हरीजी से बचने की कोशिश करते हुये पाया। कई दिन तक परिस्थितयों ने भी उसे इस दिशा में सहायता दी। धर्ममहामंडल का ज़िक्र भी कहीं न होता। एक दिन भुवन बाबू ने अवश्य उसे लक्ष्य कर कहा—चन्द्रनाथ बाबू, जरा सोच-समझकर बोलना चाहिये, और अवसर देखकर; उस दिन की आपकी स्पीच कुछ लोगों को पसन्द नहीं पड़ी।

साथियों की चुप्पी के बावजूद घर पर रात्रि के एकान्त में चन्द्रनाथ अक्सर हरीजी की आलोचना और उससे सम्बद्ध विषयों पर सोचता; इच्छा करने पर भी वह उस दिन की स्मृति को अपने मनःपटल से न हटा पाता। कभी-कभी यह स्मृति उसे बहुत बेचैन बना देती।

एक दिन रात के प्रायः नौ बजे नरेन्द्र ने आकर दर्वाजा खटखटाया। शिवसरन जा चुका था, इसलिये चन्द्रनाथ को पहुंच कर दर्वाजा खोलना पड़ा। आते ही नरेन्द्र ने कहा—गाना सुनने चलोगे?

'कहां?' चन्द्रनाथ ने कुछ अचरज से प्रतिप्रश्न किया।

'कहीं भी; दिल नहीं लग रहा है।'

चन्द्रनाथ चकित भाव से उसे देखने लगा।

'सचमुच तुम बड़े नीरस आदमी हो......कैसे तुम बिना पत्नी के इतने दिन रह सके हो?'

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे आश्चर्य था कि क्यों

वह नरेन्द्र के प्रस्ताव से अपमानित महसूस कर उसके प्रति किसी तरह का रोष प्रकट नहीं कर पा रहा था ।

नरेन्द्र कह रहा था—आत्म-दमन से मनुष्य का कोई लाभ हो सकता है यह मेरी कभी समझ में नहीं आया ।.......आखिर ज़िन्दगी है किसलिये ! दूसरे जन्म और मुक्ति में तो तुम्हें भी विश्वास नहीं है ।

चन्द्रनाथ—मुझे अफसोस है कि मैं तुम्हारा साथ न दे सकूँगा, नरेन्द्र । खुद तुम्हारा जहाँ जी चाहे वहाँ जाओ ।

नरेन्द्र—मैं जानता था तुम्हारा यह उत्तर होगा । यू आर अ टिपीकल मिडिल क्लास मैन (तुम ठीक एक मध्यवर्ग के आदमी हो) जो कभी स्वीकृत विधि-निषेधों का अतिक्रम नहीं कर सकता ।... और शायद तुम्हारी धारणा है कि मैं बहुत खराब आदमी हूँ ।

चन्द्रनाथ चुप रहा ।

'लेकिन मैं हर्गिज़ यह मानने को तैयार नहीं कि मैं किसी दृष्टि से "एबनार्मल" (असामान्य) या खराब हूँ......सिर्फ यह कि मेरे पास इतना रुपया नहीं कि मैं नये-पुराने राजा-महाराजाओं की तरह दर्जनों सुन्दरियों से शादी कर लूँ, या सेक्रेटरी साहब की तरह.......

'यह सब तुम मुझे क्यों सुना रहे हो ; कोई कुछ कह भी तो रहा हो ।'

नरेन्द्र—सिर्फ कहने से ही तो कुछ नहीं होता···मैं किसी अधिकार से सिर्फ इसलिये वंचित नहीं रहना चाहता कि मैं एक बड़ा आदमी नहीं हूँ । अब प्रजातंत्र का ज़माना है और सब के लिये अच्छाई-बुराई के एक ही पैमाने होने चाहिएँ ।

कुछ रुक कर कहा—जानते हो पिछले वर्ष सेक्रेटरी साहब ने मदन की नियुक्ति के खिलाफ क्या कहा !—बोले कि मदन के चाल-चलन के बारे में कुछ वैसी अफवाहें उड़ रही हैं ।......मैं कोई मदन का हिमायती नहीं—मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूँ कि उसके दिमाग़

के कलपुर्जे ढीले हैं—लेकिन फिर भी सेक्रेटरी साहब की यह बात सुन कर मुझे बेहद ग़ुस्सा आया था......और मैं तो जो मन में होती है करता हूँ, किसी की रत्ती भर परवाह नहीं करता।

चन्द्रनाथ—कहीं तुम्हारी नौकरी पर आँच न आ जाय।

नरेन्द्र—पहले तो मैं उनकी पकड़ में आ नहीं सकता—मेरा दिमाग़ अकेला उन सबका मुकाबला कर सकता है। दूसरे, मैं इस नौकरी को इतना महत्व नहीं देता। मुझे अपनी बुद्धि और भविष्य में पूरा विश्वास है; इस कालेज में मैं ज्यादा दिन नहीं टिकूंगा।........तो चल रहे हो, चलो न; मेरे साथ तुम बिलकुल "सेफ" (सुरक्षित) हो।

चन्द्रनाथ ने ससंकोच अपने निषेध को दुहराया।

'यू आर अ कॉवर्ड (तुम कायर हो)' नरेन्द्र ने कहा, और वह चल दिया।

उसके कतिपय वाक्य जलती हुई चुनौती के रूप में चन्द्रनाथ के मस्तिष्क में गूँजते रह गये।

दो दिन बीत गये।

शिशिर की स्तब्ध रात में चन्द्रनाथ रुई के गर्म बिस्तर में लेटा है। बिस्तर का गद्दा पुराना है, पर रजाई इसी वर्ष बनाई गई है। बाहरी दृष्टि से वह बिलकुल आराम से है, लेकिन अन्दर ही अन्दर पीड़ा से जल रहा है। कैसी विचित्र है यह पीड़ा, नारी के अभाव की पीड़ा। लगभग दो वर्ष उसकी पत्नी को मरे हुये। तबसे उसने प्रायः अखंडित ब्रह्मचर्य का पालन किया है, इसलिये नहीं कि वह ब्रह्मचर्य के धार्मिक महत्व का विश्वासी है—एक बार ब्याह कर लेनेवाले को ब्रह्मचर्य-पालन का कोई धार्मिक श्रेय हमारे देश में नहीं मिलता—बल्कि आवश्यकता से, जिसका कोई प्रतिकार न था। इस बीच में बहुत बार, विशेषतः शिशिर और बसन्त में, उसने इस प्रकार की पीड़ा का अनुभव किया है, अक्सर उसे अन्धाधुन्ध काम अथवा बाह्य सामाजिक उत्तेजना में भुलाने की कोशिश की है, पर आज जैसे वह

पीड़ा बहुत ही ज़्यादा तीक्ष्ण होकर उठ खड़ी हुई है। सबसे बड़ी बात यह है कि आज उसे अपने में इस पीड़ा को सहने लायक मनोबल नहीं मालूम पड़ता। वह बार-बार अपने से पूछ रहा है, यह पीड़ा किसलिये, क्यों सहन की जाय?

वह काशी में है, और काशी में इस पीड़ा को दूर करने के प्रचुर साधन मौजूद हैं; क्यों न उन साधनों का उपयोग किया जाय?

और इस क्यों के उत्तर में जैसे समाज के असंख्य विधि-निषेध, उसकी सहस्रमुख भर्त्सना और निन्दा, उसकी कल्पना के आगे खड़ी हो जाती है।

लेकिन ये विधि-निषेध क्यों, यह निन्दा और तिरस्कार क्यों? क्या सचमुच समाज धर्म के तत्व को समझता है, भलाई-बुराई को समझता है?

वह इधर से उधर करवट बदलता है, और अपने शरीर की बढ़ी हुई उष्णता का अनुभव करता है।

क्या समाज भलाई-बुराई का तत्व, धर्म का रहस्य, समझता है? क्या वह कोई कारण बता सकता है कि क्यों कोई व्यक्ति कल्पित स्वर्ग-नरक एवं परलोक की विभीषिका से घबराकर इस लोक के सुख-दुख की अवहेलना करे?

क्या समाज को मानव सुख-दुख के किसी ऐसे स्रोत का पता है, निश्चय है, जो इस लोक से बाहर हो? क्या यहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो उस स्रोत से प्रेरणा और आनन्द पाता हो? यदि नहीं, तो क्यों वह हमें इस लोक के सुखों से वंचित रहने की सलाह देता है? उसे ऐसी ग़लत सलाह देने का क्या अधिकार है?

अरे, क्यों मैं इस भयंकर पीड़ा को सहूँ, क्यों मैं इस वेदना में जलता रहूँ?

नरेन्द्र...सचमुच ही वह मेरी अपेक्षा कहीं अधिक साहसी है, कहीं अधिक निर्मुक्त, अनियंत्रित। वह अपनी बुद्धि से सोचता है, उसी से

प्रेरणा लेता है। कितना निर्भीक है वह, कितना तेजस्वी! अकेला ही सारे समाज को चुनौती देता फिरता है!

नरेन्द्र ने कहा था कि चन्द्रनाथ ठीक एक मध्यवर्गीय व्यक्ति है, दब्बू, विधि-निषेधों से जकड़ा हुआ। ये विधि-निषेध बड़े व्यक्तियों के लिए नहीं होते। महापुरुष का कोई और गुण हो या नहीं, वह दम्भी नहीं होता; वह होता है स्पष्ट, खरा, बाहर और भीतर, विश्वास और व्यवहार में एक-सा। उसमें इतना साहस होता है कि सम्पूर्ण विश्व के विरोध में अपनी मान्यताओं पर खड़ा रहे।

नरेन्द्र में यह गुण है। कौन कहेगा कि वह खराब है, आदर के योग्य नहीं है; और दूसरे लोग क्या उससे अच्छे ही हैं? आज बरबस चन्द्रनाथ नरेन्द्र और हरीजी की तुलना कर रहा है। कुछ दिन पहले वह इस तुलना की कल्पना भी नहीं कर सकता था।

जिन वासनाओं से हम स्वयं पीड़ित रहते हैं उन्हें प्रकट कर देने वालों पर हम कैसा निर्दय रोष दर्शित करते हैं! जैसे समाज की नैतिकता की भित्ति ही ढोंग हो! कैसे सेक्रेटरी साहब को मदन पर चरित्रहीनता का लाञ्छन लगाने का साहस हुआ?

काफी देर और वह बिस्तर में पड़ा रहा। पीड़ा की अनुभूति कुछ कम हो रही है, बौद्धिक हलचल में वह जैसे गली जा रही है। लेकिन कभी-कभी वह यकायक टीस मारती है। और उसके साथ उमड़ती है यह चेतना कि बहुत दिनों से वह अपने को अकारण कष्ट देता आया है।

वह उठ खड़ा हुआ है—आज वह इस कष्ट का, अकारण निग्रह का, निष्फल आत्म-दमन, आत्म-पीड़न का अन्त करेगा। वह कपड़े पहनने का उपक्रम करता है।

पहनते-पहनते उसके अन्तर से जैसे प्रश्न उठता है—कहाँ, वह कहाँ जा रहा है?

रात का सन्नाटा, अपरिचित शय्या और अपरिचित नारी......

उसका हृदय धड़कता है। छिः यह काम भले आदमियों के योग्य नहीं है।

लेकिन क्यों, क्यों योग्य नहीं है ? क्या इसलिये कि समाज ऐसा कहता है ? समाज ने जैसे कभी सोचना भी सीखा है।...नहीं-नहीं, यह उसकी दुर्बलता है, आन्तरिक कमजोरी; इसका अन्त होना चाहिये।

क्यों समाज चाहे कि वही आत्म-निग्रह की पीड़ा सहता रहे जब कि उन लोगों के लिये, उन बड़े आदमियों के लिये, कोई मनाई, कोई विधि-निषेध नहीं है ? अरे, क्या उसी ने सब प्रकार की वेदना को सहते रहने का ठेका लिया है !

वह सोचता है, और देखता है कि उसने कपड़े ठीक से पहिन लिए या नहीं।

वह घर से बाहर निकल गया।

बाज़ार की चौड़ी सड़कों पर वह अकारण शंकित चित्त से जा रहा है। बाजार प्रायः बन्द हो चुका है, लेकिन बिजली की बत्तियाँ जल रही हैं और जहाँ-तहाँ लकड़ी तथा टीन के साइन-बोर्ड दिखलाई दे रहे हैं। वह "बाम्बे म्यूचुअल" बीमा कम्पनी का दफ़्तर है, वह औषधालय, और वह चश्मेवाले की दूकान। मनुष्य ने अपनी आकस्मिक आपदाओं के कितने उपचार प्रस्तुत किये हैं ! कितनी अनगिनत हैं ये आपदायें, कितने संकट मनुष्य को घेरे रहते हैं; भूमण्डल पर मनुष्य का अस्तित्व कैसी नाजुक परिस्थितियों का वशवर्ती है !... वह देखो है सेण्ट्रल बैंक, और भारत बैंक, आधुनिक व्यापारिक सभ्यता के केन्द्र और प्रतीक; और वह निकट ही है एक विशाल मन्दिर, एक सुन्दर भवन के भीतर; हमारा देश प्राचीन और नवीन का कैसा विचित्र मिश्रण है ! वहाँ देवताओं और धन के उपासकों में कोई भेदक रेखा नहीं है, समृद्ध व्यवसायी ही ख्यात भक्त भी होते हैं। जो इस लोक में सफल है वही परलोक पर भी सफलता से दखल

कर सकता है। दान-वीर कालेज के सेक्रेटरी साहब को ही ले लो, एक मुश्त पच्चीस हजार उन्होंने कालेज को दिये हैं !

वह आगे बढ़ता जाता है। चौक से एक फर्लांग पहले तक के क्षेत्रफल में दूकानें उतनी अधिक नहीं हैं, उनकी संख्या नितान्त सीमित है; पर कितना सामान है उनमें, जैसे वे ग्राहकों के ऐश्वर्य को अवज्ञा-पूर्वक तोलने को प्रस्तुत रहती हों ! चन्द्रनाथ अनेकों बार इधर से गुज़रा है। वह यह अनुमान ही नहीं कर सका है कि इतनी जगह में कितने का माल एकत्रित है, और कितना क्रय-विक्रय वहां होता है। वह स्वयं इस बाजार में कभी स्वस्थ महसूस नहीं करता; वहाँ ज्यादा देर रुकना भी नहीं चाहता, क्योंकि जिन वस्तुओं को हम खरीद कर नहीं अपना सकते उनका बार-बार देखना और सराहना करना अपने को अपमानित करना है। चन्द्रनाथ ने अक्सर महसूस किया है कि आधुनिक सभ्यता के ये बड़े-बड़े बाज़ार, जहाँ भूमंडल के असंख्य कोनों की अनगिनत फैक्टरियों में बनी हुई हज़ारों चीजें संचित की जाती हैं, निचले और निम्न मध्यवर्ग की जनता के उपहास के लिये हैं, उनके मन पर उनकी नगण्यता अंकित करने के लिये, उनमें ऐसी प्यास उत्पन्न करने के लिये जिसे बुझाने का उनके जीवन में कोई साधन, कोई उपाय नहीं है। रेडियो, वेस्ट-एण्ड घड़ियों, रत्नाभरणों आदि की दूकानों से यत्न-पूर्वक आँख बचाता हुआ चन्द्रनाथ इस बाजार में छोटी-मोटी चीजें ही खरीदता रहा है। एक ब र वह एक दूकान में चमड़े का सूटकेस और होल्डाल खरीदने की दृष्टि से घुस गया था, पर उन चीजों का दाम सुनकर उसे अवाक् रह जाना पड़ा।

वह उस गली तक पहुँचने और वहां घुसने में, जो उसका लक्ष्य थी, जान-बूझ कर देर लगा रहा था। चौक के चौराहे पर पहुँच कर वह रुका, और फिर आगे बुलानाला की दिशा में बढ़ गया। चलता हुआ वह सोच रहा था कि स्वयं उसके जीवन में कितना दम्भ है, कितना कृत्रिम प्रदर्शन; उस दिन नरेन्द्र के निमंत्रण से वह जहाँ के

लिये न निकला, वहीं आज वह स्वेच्छा से जाने को उद्यत है। यह कैसी विडम्बना है।...... उसके आगे-पीछे सर्वत्र काफ़ी अंधेरा था। और उसे लग रहा था जैसे वह अन्धकार उसकी मनोवृत्ति को अपने रंग में रंग रहा है। कुछ दूर जाकर वह रुक गया; और फिर स्वगत बातचीत-सा करता हुआ पूछने लगा—कहां, तुम कहां जा रहे हो! एक बार जो निश्चय किया उससे घबराना क्यों, डरना क्यों? छिः, यह कायरता है।.......और तब सहसा उसकी संचित वासनाएँ उसे जैसे पीछे की ओर ढकेलने लगीं। आज उसे अवश्य ही उस निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचना है।

निर्दिष्ट? वह द्रुत गति से लौट पड़ा जैसे सचमुच उसे अपने लक्ष्य का पूर्ण परिज्ञान हो। चौक के चौराहे पर आकर वह ठिटक गया, फिर, यकायक, कुछेक निश्चित डिगों से, वह दाहिनी दिशा में मुड़ गया।

वह गली जिसमें वे लोग रहती हैं—उसमें पहुँचते हुये कैसा लगता है? ऊपर की दिशा में कुछ आभास होता है, बरबस आपकी आंख उधर जाती है, और फिर, एक विचित्र संकोच और परेशानी से, दृष्टि नीची हो जाती है। चन्द्रनाथ गली में घुस गया है, उसकी दृष्टि भी एक-दो बार ऊपर घूमी है, और, न जाने कैसी घबराहट से आक्रान्त हो कर, वह चाहता है कि सदर चौराहे से काफ़ी दूर कहीं अंधेरे में खो जाय।

वह आ गे बढ़ता जाता है। यह जानते हुये कि उसके इधर-उधर कुछ मूर्तियाँ झांक रही हैं, वह उधर खुली दृष्टि से नहीं देख पाता; बाजार में गुजरती हुई भीड़ में से कोई उसे ऐसा करते देख ले तो! काफ़ी आगे पहुंचकर, जहां दूर-दूर दो-एक रद्दी-से कमरे, और उन तक पहुंचाते हुये रद्दी जीने दिखाई देते थे, वह किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा लौट पड़ता है। कैसे लोग इतना साहस कर पाते हैं कि वहाँ पहुंच जायँ, एक नितान्त अपरिचित जगह में, एक नितान्त अपरिचित प्राणी के

पास। वह लौटता है, और फिर एक ओर को मुड़ जाता है। वहां एक पानवाले की दूकान है, और उसके पास एक ज़ीना; वह ठिठकता है। पानवाला कहता है—'बाबू, यहां पहले से ही बाबू लोग पहुँचे हुये हैं। आप उधर चले जायँ, सामने; वह भी अच्छी है।'

बाबू लोग! घृणा से उसका मस्तिष्क जलने लगता है। वह सोचता है इस स्थान से लौट चले, पर, न जाने किस प्रेरणा का वश-वर्ती हो, वह पानवाले की बतलाई दिशा में चल देता है।

वहां एक ज्यादा बड़ा, खुला हुआ, ज़ीना है जैसे किसी मर्दाने बैठकखाने का रास्ता हो। वह चढ़ता है—धीरे, धीरे। ऊपर पहुँचकर देखता है दो स्त्रियाँ एक बूढ़ी और एक...वही जिसकी खोज में वह निकला है। पर कैसी भद्दी है वह, जैसे किसी ने उसका यौवन और सौन्दर्य निच ड़ लिया हो। चेहरे की रूप-रेखा उतनी खराब नहीं, पर उसमें आकर्षण नाम को भी नहीं है। और वह पुरुष-जैसा उसके पास कौन बैठा है—भोंडा और बुद्धू-सा....युवती पहले बोलती है, 'कौन?' और फिर कहती है—'आओ।' भयभीत-सा, घबराया-सा, जैसे उसे डर हो कि कोई उसे पकड़ लेगा, वह लौट पड़ता है। अरे, क्या वह ऐसे ही वीभत्स साहचर्य के लिये आया है!

उसका साहस कुछ बढ़ गया है, और यह सोचकर कि यों ही लौट चलना हास्यास्पद होगा, वह जल्दी ही दो-तीन ज़ीनों का चक्कर काट लेता है। सर्वत्र वही दृश्य, वही निचोड़ी-सी, रस-कान्ति-शून्य-सी नारी-मूर्तियां। वह कहां आ फंसा है। शीघ्र ही उसे यहां से निकल भागना चाहिये।

उसकी समझ में नहीं आता कि क्यों, और कौन-से, किस कोटि, किस रुचि के लोग यहां आते होंगे।

एक क्षीणकाय, अधेड़ व्यक्ति उसकी परिस्थिति को भांप लेता है, और, दो-चार बातें करके, उससे कहता है—बाबू, मेरे साथ चलो।

लौट जाना हास्यास्पद है, इस भावना से वह उस व्यक्ति के साथ

चल देता है। वह कहता है—'बाबू, मैं आपको ऐसी जगह ले जाऊंगा कि आपका जी खुश हो जाय।...उसका नाम है गुलाब, गुलाब की तरह खिला हुआ चेहरा। इधर चलिये।' वे ऊपर पहुँचते हैं, और चन्द्रनाथ उस नारी पर जिसकी वह प्रशंसा सुन चुका है, दृष्टि डालता है। उम्र कम ही है, सत्रह-अठारह वर्ष होगी; चेहरे की बनावट भी अच्छी कही जा सकती है; और उसकी वाणी भी मधुर है। देखने में स्वास्थ्य कोई खराब नहीं है, चेहरा भरा हुआ है।...पर, न जाने उस चेहरे में क्या अनिवार्य्य अभाव या कमी है, कि वह दर्शक को खींचता नहीं। उसने कोमल स्वर में कहा—'आइये, बैठिये।' कुछ ठिठकता हुआ वह बैठ गया; पूछा, 'कितने दिनों से आप यहाँ हैं?'

'करीब तीन-चार वर्ष से।'

सुनकर वह चुप रहा। इतने थोड़े वर्षों में ही इस युवती के मुख की कान्ति न जाने कैसे, कहां हवा हो गई। इससे पहले वह जिन स्थानों में पहुँचा था वहाँ कुछ अधिक उम्र की वार-वनितायें थीं, यह गुलाब तो एकदम छोटी है। अभी से इसका यह हाल! कुछ देर वह खेद-मिश्रित अचरज की मुद्रा में उसे देखता रहा, फिर उठकर खड़ा हो गया और ज़ीने की दिशा में चलने लगा। कुछ क़दम चलकर वह सोचने लगा—'यह गुलाब क्या महसूस करेगी, इस तिरस्कार से वह कितनी दुःखी होगी।' इतने में वह अधेड़ व्यक्ति पास बढ़ आया था और कह रहा था, 'क्यों बाबू, यह पसन्द नहीं है?'

चन्द्रनाथ ने ऐसे स्वर में मानो वह जल्दी में हो कहा—'नहीं।'

'तो चलो, दूसरी जगह ले चलें।'

चन्द्रनाथ ने दो रुपये उसके हाथ में देकर कहा—'यह बाई को दे दो'; और वह जल्दी से ज़ीने में पहुंच गया।

नीचे पहुंचने पर अधेड़ व्यक्ति ने कहा—'बाबू हम समझ गये,

अब हम आपको ऐसी जगह ले जायेंगे कि तबीयत फड़क उठे। हम भी आदमी पहचानते हैं, हुजूर।'

और चन्द्रनाथ सोच रहा था—साधारण लोगों के मन में इन वेश्याओं के बारे में कैसी रोमांटिक और निराधार कल्पनायें रहती हैं, वे समझते हैं कि इस वातावरण में रूप, रस और उल्लास के सुलभ स्रोत प्रवाहित होते रहते हैं !

उसने अधेड़ व्यक्ति से कहा—'भई, अब हम जाते हैं।' पर उसने आश्वासन दिया कि इस बार वह उसे बहुत ही आकर्षक जगह ले चलेगा।

फिर यह सोचकर कि आज का उसका सम्पूर्ण आयोजन व्यर्थ न हो, और इस भावना से भी कि इस बस्ती में पहुँचकर, जहाँ शायद वह फिर कभी न आ सके, वह उसके बारे में अधिक-से-अधिक अनुभव या जानकारी प्राप्त कर ले, वह पुनः उस व्यक्ति के साथ चल दिया। अधेड़ व्यक्ति आगे एक ज़ीने के निकट रुका और उसने चन्द्रनाथ को इशारा किया। चन्द्रनाथ इधर से पहले भी गुज़र चुका था, पर तब उसने कुछ देखा न था। अब उसने प्रयत्न पूर्वक ऊपर देखने की चेष्टा की, इधर भी, और उधर भी। फिर वह पथ-प्रदर्शक द्वारा संकेतित ज़ीने पर चढ़ने लगा।

ऊपर पहुँचकर देखा, वही साधारण अधमैली चादर का बिछावन, और वही सूना, श्रीहीन-सा कमरा, जैसा वह गुलाब के यहां, और उससे पहले भी, देख आया था। यहाँ भी एक नारी-मूर्ति थी जो, राहगीरों में सजावट और दीप्ति का भ्रम उत्पन्न करती हुई, दरवाज़े से सटी बैठी थी। आगुन्तकों की आहट पाकर उसने पीठ फेरी। चन्द्रनाथ ने देखा कि उसे, कुछ हद तक, सुन्दर कहा जा सकता है।

उसकी बाईं ओर दो पुरुष और भी बैठे थे; शायद वे तबलची थे।

'बाबू के लिये पान ले आओ,' युवती ने अधेड़ व्यक्ति से कहा।

उसने चन्द्रनाथ से धीरे से कहा—बाबू, एक रुपया पान के वास्ते दे दीजिये।

पान आये, और युवती ने उनमें से एक चन्द्रनाथ को दिया। वह पान नहीं खाता, पर उसने लेने को हाथ बढ़ा दिया। पर यह क्या, युवती की आंखें कितनी निर्विकार हैं ; उनमें न किसी प्रकार की चंचलता है, न मादकता ; न कोई अनुरोध है, न आह्वान।...क्या वेश्याओं के सम्बन्ध में यह धारणा कि वे लुभाने की कला में प्रवीण होती हैं, मात्र भ्रम है ?

चन्द्रनाथ कुछ ध्यान से युवती की ओर देख रहा है, इस आशा में कि वह उसके मुख पर कोई रसमय संकेत, कोई विभ्रम का भाव देखे जिससे वह आकृष्ट महसूस करे—जिससे उसके चित्त में उस विकार का उत्थान हो जिसे लालसा या प्रेम कहते हैं। मानो वह प्रेम करने को, गहरा अपनेपन का सम्बन्ध स्थापित करने को, पहले से तैयार होकर आया हो। आज बहुत काल के बाद वह एक नारी को अपने निकट महसूस करने को विकल हो रहा है।

पर कहाँ, वह युवती जैसे पत्थर की प्रतिमा है जिसमें स्पन्दन नहीं है। चुपचाप उसने पान खाया और फिर अधेड़ व्यक्ति को पास बुलाकर कुछ कहा। उस व्यक्ति ने वही-कुछ चन्द्रनाथ के निकट होकर कह दिया—मतलब यह कि "टर्म्स" तय हो जायँ।

चन्द्रनाथ को यह मोल-तोल की बात बड़ी क्षुद्रतापूर्ण लगती है; बड़ी रूखी, रसिकता-शून्य। वह जैसे कुछ बोलने को नहीं पाता, और युवती की भाव-शून्य प्रस्तर-मुद्रा को ताकता रहता है। वह सोच रहा है—क्या इस प्रतिमा का साहचर्य किसी प्रकार का रस या उल्लास दे सकेगा...क्या उसके लिये इतना प्रयास समुचित है ?

इतने में बाँई ओर के पुरुष युवती से कुछ कहते हैं और वह मुस्कुराती है। यह उसकी प्रथम मुस्कान है, और चन्द्रनाथ देखता है कि वह आकर्षण-शून्य नहीं है।

और इसी बीच में युवती अधेड़ व्यक्ति को लक्ष्य कर कहती है—जल्दी कीजिये, हमारी मजदूरी का समय हो रहा है।

मज़दूरी! चन्द्रनाथ इस शब्द से चौंकता है, और अधेड़ व्यक्ति से कहता है—'रहने दो अगर उनका मन नहीं है तो।' अपनी प्रगल्भता पर उसे स्वयं आश्चर्य होता है, पर वह देखता है कि वहां कोई परिहास के मूड में नहीं है। अधेड़ व्यक्ति कहता है—'मन तो बाबू रुपये से होता है; आप कहिये न।'

चन्द्रनाथ फिर चुप हो जाता है। फिर कहता है—'उनसे कहिये घाटे में न रहेंगी।' पर कहां, वहां जैसे विनोद का भाव उत्पन्न न होने देने की कसम खा ली हो। वह क्षुब्ध होकर उठ खड़ा होता है।

और तब अधेड़ व्यक्ति आकर संख्या बतलाया है कि इतने रुपये चार्ज होगा।

संख्या सुनकर वह चौंकता है, इतने रुपये! देखता है यह भी एक बाज़ार है, मोल-तोल की जगह। वह पांच रुपये कम करके कहता है—क्या इतने काफी नहीं हैं?

अधेड़ व्यक्ति पुनः अन्दर जाता है और दो क्षण में लौटकर खबर देता है—कि वह मना नहीं करतीं, बाबू की बात रक्खेंगी, पर बाबू भी कुछ और निबाह करें।

चन्द्रनाथ इस स्वीकृति से सिर से पैर तक कांप उठता है।

* * *

उस गली से निकल कर चन्द्रनाथ ने मुक्ति की गहरी सांस ली। कैसी जगह आज वह पहुँच गया था—जहां जाने की बात उसने स्वप्न में भी नहीं सोची थी। दुनिया की आंखों से छिपे रहने के प्रयत्न में लीन वह जगह मानो भावनाओं और संकल्पों की काल-कोठरी है जहां चित्त की मानवोचित स्निग्धता पशु-सुलभ उत्तेजना में, और उसकी मधुर ममताशीलता कठोर व्यवहार-वृत्ति में खो जाती है। वह एक साथ ही अपने मन में क्षोभ, अनुताप और ग्लानि का

अनुभव कर रहा है। क्षोभ इस बात पर कि उसकी तृप्ति की लालसा बुरी तरह ठगी गई अनुताप अपनी मूर्खता पर, और ग्लानि इस परिस्थिति से कि आज जीवन में पहली बार उसकी सहृदय मनुष्यता क्षत-विक्षत हुई है। एक ऐसी नारी का सम्पर्क जो आपके व्यक्तित्व में किसी प्रकार के ममत्व का, आपके साहचर्य में किसी तरह के रस का, आपके शब्दों में किसी माधुर्य का, आपके स्पर्श में किसी कम्पन का अनुभव नहीं करती—आप में अतृप्ति का दाह उत्पन्न करके उसे शान्त करने के लिये जो एक बूंद भी नहीं दे सकती—आपकी मनुष्यता के स्रोतों को सुखाने का अमोघ अस्त्र है।

आज बरबस उसे अपनी मृत पत्नी की याद आ रही है। वह सुशीला अब कहां है ? उसके चुम्बन, उसका स्पर्श, उसका वह निर्भर आत्मसमर्पण...आज कहां अलभ्य हो गये ! कहां है वह उसकी परिणीता प्रेयसी, स्नेह की तरल प्रतिमा, ममत्व की अक्षय निधि ! सुशीला जब जीवित थी तब वह उसके सहज-मधुर समर्पण और निरतिशय अपनेपन के भाव का ठीक से मूल्य नहीं आंक सका था, आज उसे लग रहा है कि जीवन में वही सर्वातिशायी तृप्तिप्रद अमृत-रसायन है। आज संसार में कहां कोई ऐसा है जो उसे, उसके अस्तित्व को, सहज अपनेपन के रस-प्लावन में विस्मृत और विभोर कर दे !

और उसे ध्यान आता है कि वह अपनी उस सुशीला के लिये कभी कुछ न कर सका—कभी उसके सुख के लिये मुक्त-हस्त न हो सका। किन्तु आज उसी उसने एक अजनबी नारी के वास्ते जिसने क्षणभर भी उसे वास्तविक अर्थ में प्यार नहीं किया, एकाएक मुट्ठी भर रुपये फेंक दिये। उसकी कृतज्ञता का यह कैसा विषम निदर्शन था !

आत्म-भर्त्सना और आत्म-धिक्कार की भावना से भरा हुआ जब वह घर पहुँचा तो घड़ी में लगभग डेढ़ बज रहा था। पाप और निद्रा का सहचर सघन अन्धकार उसे अपने काले क्रोड़ में आत्म-विस्मृति का सन्देश दे रहा था।

[illegible]

तंत्र () जनतंत्र () जनतंत्र () जन

३२

अषाढ़ का पहला सप्ताह था, गर्मी बेहद पड़ रही थी। काशी में अभी तक वर्षा की एक बूंद भी नहीं गिरी थी। लोग बड़ी उत्सुकता से नये श्यामल बादलों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

चार-पांच ही दिन हुये कि चन्द्रनाथ बदायूं से लौटा था। इस बार छुट्टियों में वह कुछ ज्यादा दिनों बदायूं रहा इसका कारण सुधीर के लम्बे वियोग का प्रतिकार करने की भावना ही थी।

आज वह एक नये नाई से बाल कटवा रहा था; नाई का नाम था भीखन। 'बड़ी गर्मी है, सरकार,' नाई कह रहा था, 'नौ बजे से यह हाल है, दोपहर में तो आग ही बरसती है।' फिर पीछे से चन्द्रनाथ के बाँयें कान की दिशा में आते हुये उसने कहा, 'मालूम होता है अबकी जापान-वालों के साथ ही इन्द्र देवता के दल-बादल आवेंगे।'

चन्द्रनाथ—ऐसा न कहो।

भीखन—सरकार लच्छन तो ऐसे ही हैं; धीरे-धीरे ये लोग बढ़े ही चले आ रहे हैं। बाकी बड़े वीर लोग हैं; अंग्रेज तो उनके सामने ठहर ही नहीं सकते।

चन्द्रनाथ—क्या तुम समझते हो कि जापानियों का आना हमारे लिये अच्छा होगा?

भीखन—हम क्या जानें सरकार, पर हाँ लोगों का यही ख्याल है। दूसरा कोई चारा भी तो नहीं है। अंग्रेज लोग रच्छा कर नहीं सकते, सिंगापूर और बर्मा की तरह हमें भी छोड़ कर चल देंगे। फिर सरकार, जापानवाले आकर जम ही जायेंगे या चले जायेंगे?

चन्द्रनाथ—तुम क्या सोचते हो?

भीखन—देहाती आदमी, हम क्या सोचें सरकार, बाकी लोग

कहते हैं कि जापानी हमारे दोस्त हैं क्यों कि वे बौध धरम को मानते हैं।

चन्द्रनाथ—ये सब ग़लत बातें हैं; सच यह है कि जापानी अँग्रेजों से भी खराब हैं।

भीखन—सरकार का ऐसा ख्याल है ? बाकी अंग्रेजों का सितारा डूब रहा है। झूठे ये भी औवल नम्बर के हैं। कहते हैं परजातंत्र के लिए लड़ रहे हैं, फिर हिन्दुस्तान को आज़ाद क्यों नहीं कर देते ?

चन्द्रनाथ—आज़ादी कोई देता नहीं, लड़कर छीनी जाती है।

भीखन—बरमा से जो लोग भग कर आ रहे हैं, उनकी दसा बड़ी खराब है। अंग्रेज तो आते हैं हवाई जहाज में, और अपने देसभाई पैदल घिसट रहे हैं। कितने तो चुल्लूभर पानी के लिये तरस कर मर गये; कितनों की माओं ने भूख-प्यास से सकत-हीन होकर अपने बच्चे राह में छोड़ दिये। अंग्रेज ने बड़े जुलम किये हैं, सरकार; इसका तो नास होना चाहिये।

चन्द्रनाथ कुछ उत्तर न दे सका। सोच रहा था, अंग्रेज़, जापानी सभी तो स्वार्थी और निर्दय हैं; शायद मानव-प्रकृति ही ऐसी है।

भीखन—इस वखत गांधी जी को चाहिये कि अंग्रेज के खिलाफ जुद्ध छेड़ दें; आजकल न जाने कांग्रेसवाले क्या कर रहे हैं।

चन्द्रनाथ ने फिर उत्तर नहीं दिया। भीखन चुप होकर दाढ़ी बनाने का उपक्रम करने लगा।

दोपहर में प्रायः साढ़े बारह बजे मदन आया।

'अरे इतनी धूप में कहाँ चले आये,' चन्द्रनाथ ने कहा।

'सुना कि आप आ गये हैं; कई दिन से मिलना चाहता था... बड़ा लम्बा दिन होता है, काटना कठिन हो जाता है।' फिर कुछ रुककर—नरेन्द्र अभी नहीं आये हैं ?

'कहाँ आये हैं इसी से मेरा जी भी नहीं लगता।......क्या उनसे कोई विशेष काम है ?'

'नहीं, काम क्या होगा।' कुछ देर में, 'आजकल माधुरी यहाँ आई हुई है, पन्द्रह-बीस दिन हो गये।'

'हूं।' चन्द्रनाथ की अब समझ में आया क्यों मदन को नरेन्द्र के आने की फिक्र है। बोला—अभी तक माधुरी की चिन्ता छूटी नहीं।

मदन—चिन्ता तो छूट ही गई है........फिर भी एक बार भेंट करके देखता कि कैसे वह एकाएक बदल गई है।

चन्द्रनाथ—बदलना तो प्रकृति का नियम है मदन बाबू, उसका उलाहना क्या।

मदन—हाँ, शायद ऐसा ही है; पहले मैं समझता था कि प्रेम "इटर्नल" (शाश्वत) होता है।

चन्द्रनाथ--धरती और सौरमंडल भी "इटर्नल" नहीं हैं, फिर मनुष्य के जीवन और प्रेम का तो कहना ही क्या।

मदन--एक ज्योतिषी ने बड़ी खराब भविष्यवाणी की है, कहा है कि अगस्त के महीने में कोई बड़ा उथल-पुथल होनेवाला है। अच्छा है, मैं तो चाहता हूँ दुनिया उलट जाय। मैं इस ज़िन्दगी से ऊब गया हूँ।

व्यक्ति को अपना सुख-दुख कितनी भयंकर वास्तविकता प्रतीत होता है, मानो बाह्य विश्व का विपुल विस्तार उसकी तुलना में कुछ भी न हो! इस मदन को देश-विदेश से जैसे कुछ भी सरोकार नहीं है, हमेशा अपने में खोया रहता है।

ठीक दो बजे दोपहरी में मदन ने कहा---अब मैं जाता हूँ।

'अरे इस वक्त, इस भयंकर गर्मी में!'

'ओह! कोई परवाह नहीं है, मेरे जिस्म को कुछ नहीं होगा,' कहकर मदन उठकर खड़ा हो गया। दुर्भाग्य से चन्द्रनाथ के पास छाता भी न था कि उसे दे देता।

क्यों मनुष्य चाहता है कि उसका प्रेम-सम्बन्ध शाश्वत हो, क्यों उसकी भावना प्रकृति के अखंड नियमों की विरोधिनी हैं! यदि परि-

वर्तन ही प्रकृति का नियम है तो क्यों मनुष्य कुछ चीजों की स्थिरता में इतना आग्रह करता है ?

माधुरी बदल गई, उसकी मनोवृत्तियों में परिवर्तन हो गया, तो इसके लिये कोई शिकायत क्यों करे ? क्यों मदन इसके लिये परेशान है ? क्यों वह भी अपने मन को बल-पूर्वक नहीं बदल देता ? माधुरी को भूलकर, अपने चित्त से पूर्णतया हटाकर, उसे अन्यत्र कहीं बांध देता ?

और फिर यह भी क्या ज़रूरी है कि मन को कहीं बांधा ही जाय। मन को बन्धनों से मुक्त कर लेना, मोह और आसक्ति को जीत लेना, यही चतुराई है, विवेक है जीने की कला है।

ममता में, प्रेम में कष्ट है; इसलिये मनुष्य को निर्मम होना चाहिये। वही सुखी होने का मार्ग है।

फिर भी न जाने क्यों उसके हृदय में वंचित मदन के लिए रह-रहकर करुणा और समवेदना उमड़ती है।

वह पलंग में पड़ कर सो गया। थोड़ी ही देर में वह स्वप्न देखने लगा। कुछ नई और कुछ नितान्त पुरानी मूर्तियाँ तथा छवियां उसकी आंखों के आगे तिरने लगीं।

वह देख रहा है कि माधुरी और मदन एक दूसरे के सामने खड़े हैं, विह्वल और विभोर, बड़े कातर लोभ से एक-दूसरे को देख रहे हैं, एक-दूसरे की ओर बढ़ रहे हैं। वह देखो माधुरी बड़े दृढ़ स्वर में मदन को समझा रही है, 'बहादुर बनो'। मदन खड़ा है, मौन और आत्म-विस्मृत, उसकी उदास दृष्टि माधुरी के चेहरे पर गड़ रही है।...वह देखो सेकन्ड क्लास के डिब्बे में कोई बैठी है, जा रही है? वह माधुरी है; उसके भीतर कौन है ? अरे वहाँ एक और परिचित चेहरा भी है, एक और नारी-मूर्ति। वह हँस-हँसकर किसी पुरुष से बातें कर रही है और कभी-कभी, नितांत उपेक्षाभरी दृष्टि से, चन्द्रनाथ की ओर संकेत कर देती है।...अब उसने वह संकेत करनाभी बन्द कर दिया

है, उसका मुख एक ही दिशा में है। धीरे-धीरे चन्द्रनाथ वहाँ से हट कर आ रहा है और वह अपने एक साथी से कह रहा है—अब मैं उस स्त्री से घृणा करता हूँ, उत्कट घृणा, वह मेरी कोई नहीं है।

चार बजने से कुछ पहले वह जागा, उसने देखा कि शिवसरन आ गया है; उसने उसे चाय बनाने का हुक्म दिया। कल ही तो वह चाय का एक डिब्बा लाया है। अब वह नियम से चाय पिया करेगा, नरेन्द्र की तरह। कितने ही लोग मन बहलाने को शराब तक पी लेते हैं, उसे चाय पीने का अधिकार तो होना ही चाहिये। ऊँह, स्वास्थ्य और उसके नियमों की इतनी परवाह क्यों। नरेन्द्र का स्वास्थ्य तो उससे खराब नहीं है, शायद उसके शरीर में अधिक ही बल है; वह चाय खूब पीता है और सिगरेट भी। कल ही चन्द्रनाथ ने, इधर-उधर इस भाव से देखकर कि कोई देख तो नहीं रहा है, एक सिगरेट की डिब्बी भी खरीदी थी, और पिछली रात एकान्त में, उसने सिगरेट पीने की कोशिश भी की थी। उसका सिर कुछ घूमने लगा था, पर उससे क्या; आज रात को वह फिर कोशिश करेगा। धीरे-धीरे आदत पड़ जायगी। नरेन्द्र कितने ज़ोरदार कश खींचता है! कहते हैं कि सिगरेट पीना खाली मस्तिष्क को भर देने का सबसे बढ़िया तरीका है।

उसने शिवसरन से फिर कहा कि चाय बना लो।

प्रायः बीस मिनट बीत गये। शिवसरन चाय लेकर आ रहा था। इतने में नीचे कोई आवाज़ देता सुनाई पड़ा। कंठस्वर किसी महिला का था। शिवसरन ने चन्द्रनाथ के सामने चाय रखते हुए कहा—सरकार नीचे कोई पुकार रहा है।

'कौन है, जाकर देखो।'

कुछ देर में शिवसरन ने आकर कहा—कोई माई जी हैं, आप का नाम लेकर पूछती हैं, स्यात् आपकी रिश्तेदार हैं।

चन्द्रनाथ आश्चर्य के भाव से उठ खड़ा हुआ।

उसने झांक कर नीचे देखा, शक्ल परिचित-सी लगी, पर वह कुछ बोला नहीं।

इतने में उस महिला ने साथ के मज़दूर से कहा—ठीक है, चलो, उपर चलो।

क्षण भर में मज़दूर सामान लिये ऊपर आ पहुँचा। सामान में एक बड़ा बक्स था, एक बिस्तर और एक गठरी की भांति बंधी हुई कंडी। पीछे वह महिला थी। चन्द्रनाथ ने आंखें विस्फारित करके उसे देखा, महिला ने भी उसे देखा और नमस्ते किया।

वही तो—चन्द्रनाथ ने इतनी देर में अच्छी तरह पहचान लिया था—वह महिला, बहुत-कुछ बदल जाने के बावजूद, वही थी...... वह साधना थी।

३३

साधना काशी में और स्वयं उसके घर में—चन्द्रनाथ की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। इतने में साधना ने मज़दूर को पैसे दिये और शिवसरन से एक गिलास पानी लाने को कहा। फिर उसने चन्द्रनाथ से कहा, 'क्या मुझे पहचान नही रहे हो भैया ?'

'पहचान रहा हूँ, अच्छी तरह, आओ,' कहकर चन्द्रनाथ कमरे में घुसा। साधना जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

खाट पर बैठते हुये चाय के प्याले की ओर संकेत करके चन्द्रनाथ ने कहा—इसे पी लो ; कुछ खाने को तैयार कराऊं ?

'नहीं भैया, मैं इस समय कुछ नहीं खाऊंगी. चाय भी नहीं ; सिर्फ एक गिलास पानी पिऊंगी।'

चन्द्रनाथ के मन में आ रहा है कि पूछे कि वह यहां अकेली कैसे, क्यों आई है ; पर उसे साहस न हुआ।

साधना ने पानी पिया, और कहा—भैया, मैं बहुत थकी हुई हूँ। मेरे लिये बराबर कमरे में बिस्तर करा दो। बिस्तर "होल्डाल" में है।

चन्द्रनाथ ने शिवसरन को आवश्यक संकेत किया। वह बिस्तर उठाकर दूसरे कमरे में ले गया।

चन्द्रनाथ ने फिर कहा चाय पीलो।

'अच्छा, पी लूंगी।.......लेकिन तुम!' कहकर साधना ने प्याला उठा लिया। उसके भाव से लगता था कि उसे उत्तर की अपेक्षा नहीं है। उत्तर दिया भी नहीं गया।

'यहां अकेली आई हो या कोई साथ भी है?' चन्द्रनाथ ने साहस करके प्रश्न किया। कोई से उसका मतलब अरुणकुमार से था।

'अकेली ही आई हूँ', साधना ने रूखी हंसी हंसकर कहा, 'और शायद सदा के लिये सम्बन्ध तोड़कर।......मैं आपको फिर सब बातें विस्तार से बतलाऊंगी, इस समय सोने दीजिये, दो रातों की जगी हूँ।' और उसने इशारे से अपना सन्दूक भी उसी कमरे में पहुँचवा दिया।

चन्द्रनाथ पूछना चाहता था कि वह वहाँ तक, उस घर तक, कैसे पहुँची; और कैसे उसे पता लगा कि वह बनारस में है; पर उसने पूछा नहीं। वह साधना की दिशा में न देखने की कोशिश कर रहा था।

कुछ क्षण में वह स्वयं उठकर उसी कमरे में चली गई। इस बीच में शिवसरन चाय का दूसरा प्याला तैयार करने चला गया था।

चन्द्रनाथ चाय पी रहा था। कमरे में खड़े हुये शिवसरन ने पूछा—यह आप की बहिन हैं, बाबू जी?

'हाँ, दूर के रिस्ते की; सगी बहिन नहीं हैं।'

'उनके लिये खाना बनेगा न?'

'ज़रूर, पूरियां बना लेना।'

'क्या जाने खाना उनके साथ हो; कंडी खोल कर देख लूं?'

'देख लो', कहकर चन्द्रनाथ धम् से बिस्तर में लेट रहा।

उसने आंखें बन्द कर लीं ताकि उसे कुछ दिखाई न दे, वह चाहता था कि वह कुछ सोचे भी नहीं, मस्तिष्क को भी खाली कर

ले। पर कहाँ, वह खाली कहाँ होता है। वह देखो मस्तिष्क के भीतर, सिर और माथे के मध्य में, हरकत हो रही है, दर्द-सा हो रहा है। वह बेचैनी से करवटें बदलता है, दाँयें, बाँयें; फिर दाँयें, फिर बाँयें; पर विश्राम नहीं, विराम नहीं। वह उठकर खड़ा हो जाता है, कुर्सी के सहारे, मेज़ पर झुककर; फिर बाहर छत पर चला जाता है। आगे, पीछे; उसे आभास होता है कि साधना सो रही है, गहरी नींद में। वह फिर आकर खाट पर पड़ रहता है।

उसके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उठ रहे हैं, तरह-तरह की भावनायें; वह चाहता है कि सो जाय, पर आँखों में नींद कहाँ। नींद की आशा भी नहीं है, क्योंकि वह कुछ देर पहले सो चुका है। रह-रह कर वह उस व्यक्ति के बारे में सोच रहा है जो आज बरबस उसका अतिथि बन गया है और बराबर के कमरे में सो रहा है, या सो रही है। साधना का चेहरा कितना बदला हुआ है—कहाँ है उसकी सौम्यता, सहज श्लक्ष्ण कोमलता? कैसा रूखा-रूखा है वह.... ...वह ऐसा क्यों हो गया है?

और क्यों वह यहां आई है, किस बल पर, किस साहस से, किस प्रयोजन से,? यहां उसका क्या काम है? क्यों वह अपने प्रियतम को छोड़कर आई है? झगड़ा? कैसा झगड़ा, क्यों, किससे? यदि उसने पति से झगड़ा भी किया है तो यहां क्यों आई, यहां उसका कौन है, कौन ऐसा है जो उससे प्रेम करता है, जिससे वह प्रेम करती है? क्यों वह यहां आई है?

प्रेम......सम्बन्ध......भैया........यह सब क्या खुराफात है, प्रवंचन, धोखा। नारी धोखा देने में कितनी कुशल होती है, अपने को और दूसरों को। अरे, मैं उसका कौन हूँ और वह मेरी कौन है! क्यों वह यहाँ आई है, उसे यहां आने का क्या अधिकार है...वह जो बरसों से, युगों से मेरी उपेक्षा करती रही है, अवहेलना करती रही है।....वह जो मेरी शतशः मनुहारों, शतशः अनुनयों का तिरस्कार

करती रही है। ...मेरे रक्त से लिखे पत्रों का जिसने निर्मम उपहास किया, मेरी कोमलतम भावनाओं को जिसने निर्दयता से कुचला, मेरे गहनतम आवेगों को जिसने मात्र विनोद, मात्र खेल की सामग्री समझा।

शायद यह भी उपहास है, कुछ अधिक गहरा विनोद, दूसरों की पीड़ा से खेलने का निपुणतर प्रयत्न।... क्या यह सम्भव है—इतनी भीषण प्रवंचना, इतना भयंकर परिहास, इतनी निर्लज्जता....

वह क्यों आई है ? क्यों आज यह मेरी चिरकाल से सोई वेदना को, उपेक्षा के दाह को, अपमान की ज्वाला को जगाने का प्रयत्न हो रहा है...क्यों फिर मेरे मुरझाये हुये घावों को खोदकर हरा करने का आयोजन हो रहा है ?

झगड़ा...किसी ने किसी से झगड़ा किया है तो मुझे क्या ? मुझ से मतलब ? किसी के झगड़े से मुझे सरोकार ? किसी से झगड़ा करने का अर्थ किसी दूसरे से प्रेम करना, उसके प्रेम का अधिकारी बन जाना, नहीं है।

रह-रह कर उसकी पुरानी स्मृतियाँ उभर रही हैं। वह पत्र लिख रहा है, कातर चित्त से, संतप्त हृदय से; लम्बा पत्र, याचना और प्रार्थना से भरा पत्र; अनुनय और विनय से निर्ध्वनित, आँसुओं से गीला, विगलित अहन्ता से मृदुल...और उसका उत्तर ? उपेक्षाभरी हँसी, तिरस्कारपूर्ण मुसकान, अवहेलना का मौन... वह स्तब्ध है; उसका चित्त संक्षुब्ध, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है।

कौन है वह जो इस प्रकार उसका, उसकी प्रतिभा का, उसकी बुद्धि और हृदय का, उसके पुरुषत्व का अपमान करती रही है ? वह क्या है, उसे किस बात का गर्व है, किस बात का नाज़, किस क्षमता का अहंकार...!

वह अमीर है, उसके पास ऐश्वर्य है, वह सुन्दर बँगले में रहती है, तो इससे किसी को क्या ? इससे उसे क्या ? फिर क्यों वह उसके

पास आये, उससे बात करे, उसकी अपनी होने का नाटक रचे।

क्यों वह अपनापन जताने का दुःस्साहस करते हुये उसके पास आये ! उसे उससे, किसी से, क्या मतलब !

उसका हृदय अनिर्वचनीय घृणा से भर रहा है, अनिर्वाच्य क्षोभ से, क्रोध से......

वह एक पुस्तक उठा लेता है और पढ़ने की कोशिश करता है। एक पंक्ति, चार पंक्ति, पैराग्राफ, पृष्ठ; पर उसके मन में पुस्तक का कोई विचार नहीं पैठ रहा है, विचारों का तारतम्य समझ में नहीं आ रहा है।

'शिवसरन !'

'हाँ सरकार !' शिवसरन हमेशा यों ही उत्तर देता है; बनारस के नौकर प्रायः यों ही उत्तर देते हैं। सरकार...सरकार...खाने में कितनी देर है !'

'थोड़ी ही देर है सरकार, अभी ही खायेंगे क्या !'

'हूँ।'

थोड़ी देर बाद शिवसरन खाना ले आया।

'उनके खाने का क्या होई सरकार ?'

'देखो, जाग रही हैं।'

शिवसरन उधर गया, और अपनी छोटी आँखों को दूर से ही गड़ाकर देखा।

'अभी तो गहरी नींद सोवत हैं, सरकार।'

'तो, खाना उठाकर रख दो, कटोरदान में।'

शाम हो रही है, अँधेरा झुकने लगा है। घर के कामों से निबटा हुआ शिवसरन इस आशा में छत पर आंगन की दिशा में मुंह लटकाये खड़ा है कि मालिक, यदि कोई काम नहीं हो तो, उसे घर जाने की आज्ञा दे दें। चन्द्रनाथ यह समझता है, पर काफी देर तक मानो परिस्थिति को अनदेखा करता हुआ पड़ा रहता है। शिवसरन

एक-दो बार खांसता है, फिर चुप हो जाता है। सहसा भीतर से चन्द्रनाथ बोल उठता है—शिवसरन !

'जी सरकार ?'

'अपना काम निबटा चुके ?'

'जी सरकार।'

'तो जाओ।'

'दर्वाज़ा बन्द कर लें सरकार।'

'तुम जाओ, अभी क्या जल्दी है।'

किन्तु शिवसरन के जाने के थोड़े ही देर बाद वह उठता है, और नीचे जाकर दर्वाज़ा बन्द कर देता है। फिर धीरे-धीरे, मुंह लटकाये, लौट आता है।

वह छत पर टहल रहा है, कभी धीरे, कभी तेजी से।

फिर वही स्मृतियां, वही क्षोभ, वही क्रोध और वही प्रत्यपमान की भावना।

वह धीरे-धीरे साधना के कमरे में घुस जाता है। वह अभी तक सो रही है।

वह उसकी खाट के पास खड़ा है, और उसे देख रहा है। पुरानी परिचित आकृति, इकहरा शरीर, लम्बा, नीचे से तिखूंट चेहरा, लम्बी पतली कलाइयाँ, और हाथ, सुकुमार सुडौल गर्दन, कुछ अस्तव्यस्त बाल......।

केवल एक ब्लाउज़ और खादी की साड़ी उसके शरीर को ढके हुये हैं। माथे पर स्वेद-बिन्दु हैं।

उसका चेहरा अब उतना थका हुआ नहीं है; उतना मलिन भी नहीं है।

उसके अपने घर में विश्रब्ध भाव से उस एकान्त शय्या पर सोई हुई वह कौन है ? कौन है वह ? उससे उसका क्या सम्बन्ध है ?

और उसके मन में प्रतिध्वनि उठती है—वह कोई नहीं है, उससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

वह है उसके मोह का, पागलपन का प्रतीक, उसकी दीनता का प्रमाण-लेख, उसके अपमान की जीवंत स्मृति।

उसे आश्चर्य है कि कभी वह इस नारी की प्रसन्नता के लिये बहुत ज्यादा चिन्तित और व्याकुल रहता था।

वह आज यहां आकर सोई है, नितान्त अरक्षित, अवनत, दर्प-शून्य।

वह नारी है, केवल नारी, और कुछ नहीं।.......वही नारी चिर-काल से वह जिसका अभाव अनुभव करता रहा है, ज़रूरत महसूस करता रहा है।

फिर क्यों......क्यों नहीं......वह उत्तेजना से उद्वेलित हो रहा है।

वह सोच रहा है—क्यों नहीं इस प्रतिमा को भग्न कर, खंडित कर, उससे उस चिरकालीन, मर्मभेदी अपमान-परम्परा का प्रतिशोध लिया जाय।

'भैया!'

यह क्या, वह जागने लगी है, जाग गई है। वह उसे सम्बोधित कर रही है।

अंगड़ाई लेते हुये उसने करवट बदली, और फिर चित होकर पहले की भांति लेट रही।

'ओह! रात होगई; बहुत देर हुई मुझे सोते हुये।.......बैठो भैया, खड़े क्यों हो।......कुर्सी नहीं है, ऊंह, बैठो, इधर को बैठो।' और वह उठकर बैठ गई।

'अरे, बैठो न। ओफ! कितनी गहरी नींद आई थी......सचमुच मैं बहुत थकी हुई थी।'

सहसा वह जैसे अपनी चेतना से सजग होती है और कहती है– शिवसरन गया?

'हूं,' चन्द्रनाथ के मुख से निकलता है; 'तुम्हारा खाना रक्खा है।'

'अ...च्छा। तो इतने बड़े घर में तुम अकेले ही सोते हो, खूब! भला नौकर रक्खा है।' वह उठती है, वस्त्र संभालती हुई, ब्लाउज़ के ऊपर साड़ी सहेजती हुई; उसने सिर भी ढक लिया है। वह अब रसोईघर की तरफ़ चलती है; एक नज़र में ही जैसे वह पूरे घर का नक़्शा समझ गई है।

वहाँ छज्जे पर पानी रक्खा है; वह लोटे में पानी लेकर आँखें और मुँह धोती है।

चन्द्रनाथ अपने कमरे में वापिस आ गया है, अपनी खाट पर। वह जैसे किसी घटना की प्रतीक्षा कर रहा है।

निबट कर साधना उसके कमरे में पहुँचती है और कुर्सी पर बैठती हुई कहती है—भैया!

वह इस सम्बोधन से जिसकी तीसरी बार आवृत्ति की गई है अन्तर तक कंपित हो उठता है......वह इसके लिये तैयार नहीं था।

'बोलते नहीं भैया, नाराज़ हो......ज़रूर नाराज़ होगे, मैंने काम ही ऐसा किया है।'

'तुम्हरा खाना रक्खा है।'

'अच्छा, खा लूंगी; भूख तो लगी है, लेकिन खिलाओगे तब न।' कहकर वह सूखी हँसी हँसकर रह गई।

'खाना उठाकर यहाँ ले आऊँ?' उसे स्वयं अपनी बात पर आश्चर्य हुआ।

'नहीं-नहीं, मैं उठा लूंगी, खा लूंगी; कहाँ रक्खा है?'

'वहाँ, उस अल्मारी में; मैं लिये आता हूँ।'

'अच्छा.......मैं भी चलूं...चलती हूँ।'

उसने अल्मारी खोलकर खाना निकाला। साधना ने थाली ठीक कर ली। उसने पानी का गिलास ले लिया।

'तुम खा चुके हो, भैया?'

'हूं।'

'अच्छी बात है, मैं अकेली ही सब खा जाऊँगी।'

वह खा रही है ; चन्द्रनाथ चुपचाप बैठा है।

'मैं जानती थी कि तुम मुझसे नाराज़ हो, बहुत ज़्यादा नाराज़ ; लेकिन फिर भी चली आई, आखिर मैं जाती कहाँ......

'मायके जाने की हिम्मत नहीं हुई। पिता जी क्या समझते, माता जी के जी पर क्या बीतती...और अब भी बीतेगी, खबर छिप थोड़े ही सकती है। लेकिन मैंने सोचा कि वे मेरी बात नहीं समझ सकेंगे, इसलिये यहीं चली आई।'

'यह काम ठीक नहीं किया।...आखिर कब तक ...'

'कब तक !' वह फिर रूखे ढंग से हँसी...'जब तक ज़िन्दगी है।'

'लेकिन यह ठीक नहीं।'

'हूँ, मैं जानती थी कि इस देश के लोग इसी ढंग से सोचेंगे। लेकिन क्या तुम भी वैसी ही बात कहोगे ? क्या दुनिया में ऐसा कोई भी कारण नहीं हो सकता कि भारतीय नारी अपने पति को छोड़ दे !'

चन्द्रनाथ चुप रहा।

वह भी चुप खा रही थी, पर कभी-कभी, ग्रास चबाने के वेग से लगता था कि वह उत्तेजित है।

सहसा उसने प्रश्न किया—क्या बहुत दिनों से झगड़ा चल रहा था ?

'हाँ, नहीं तो; कोई ऐसा झगड़ा नहीं था ; मैं झगड़े की उत्तेजना में भाग कर नहीं आई हूँ, भैया।'

चन्द्रनाथ की आँखें पूछ रही थीं, 'फिर !'

'अभी हाल में कोई वैसा झगड़ा नहीं हुआ, निकट अतीत में भी नहीं; जो कुछ हुआ सो पुरानी बात है, बरसों से चल रही थी।... यह थाली कहाँ रख दूँ, उसी तरफ !'

'नहीं, उधर जाने की ज़रूरत नहीं ; यहीं रख दो, कमरे के

बाहर; इधर ही ज़ीने के पास पानी भी है।'

हाथ-मुंह धोकर वह लौट आई और कुर्सी पर बैठ गई। चन्द्रनाथ अब खामोश था; वह भी चुप थी, किन्तु वह बार-बार उसकी दिशा में देख रही थी जैसे कुछ कहना चाहती हो। कुछ देर बाद, चन्द्रनाथ के प्रोत्साहन के बिना ही, वह उससे बात करने लगी।

'भैया, तुमने एक प्रश्न नहीं पूछा, यह कि मेरा तुमसे कब झगड़ा हो गया, क्यों मैंने पत्र-व्यवहार बन्द कर दिया।'

'नये स्नेह में पुराने सम्बन्ध को भूल गई होगी, और क्या।'

'हूँ, कुछ हद तक यह ठीक हो सकता है, लेकिन कुछ ही हद तक।......मेरी बात का विश्वास कर सकोगे न ?'

'अविश्वास से लाभ भी क्या है।'

'और विश्वास से भी तुम्हें कोई लाभ नहीं, लाभ है तो मुझे।......मैं कैसी उद्दंड हो गई हूँ कि आप के बदले तुम कहने लगी हूँ', यह कहकर वह हंसी। उसकी यह सूखी हंसी चन्द्रनाथ को कृत्रिम और विरक्ति-जनक लगती है।

'शादी के बाद जब मैं गई,' साधना ने कहना शुरू किया, 'तो मेरी खूब खातिर हुई और बहुत जाँच-पड़ताल भी, यानी इस बात की कि मैं देखने-सुनने में कैसी हूँ।....अब मुझे वह याद करके हंसी आती है। न जाने कहाँ-कहां से औरतें आतीं और मेरा मुंह देखने की कोशिश करतीं। मुझे इस सब से बड़ी खीझ होती... ।

'खैर, मुझे उन सबकी परवाह न थी। मुझे सिर्फ एक व्यक्ति की पसन्द का खयाल था और उसने पहले भी और बाद में भी मुझे नापसन्द नहीं किया।...अब सोचती हूँ कि।यह नारी हृदय की कैसी दुर्बलता है, क्यों वह पुरुष-विशेष की पसन्द या नापसन्द की इतनी फ़िक्र करती है....इस बारे में मेरे साथ कोई शिकायत की बात नहीं हुई। मैं अपनी स्थिति से प्रसन्न थी, अत्यधिक प्रसन्न। वे पग-पगपर मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछते, और हर तरह मेरा मन लगाने की

कोशिश करते। मुझसे कुछ अधिक निःसंकोच और सामाजिक होने का आग्रह भी करते। मैं उनकी बातों को ध्यान से सुनती और कोशिश करती कि उनके अनुसार चल सकूं। बहुत दिनों तक मेरी ऐसी ही प्रवृत्ति रही.......

'इस बीच में एक दिन मेरे सिर में भयंकर दर्द हुआ। विवाह से प्रायः महीने भर के भीतर। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा की, सिर में तेल डाला, माथा दबाया, न जाने कितने उपचार किये, और कचहरी से छुट्टी लेकर दिनभर मेरे पास रहे।

'मैं कृतज्ञ थी, अन्दर से बाहर तक पिघली हुई, अपना सर्वस्व देने-निछावर करने को तैयार, पूर्णतया पुलकित और अनुरक्त। अब सोचती हूँ वह मेरी भूल थी, मूर्खता थी, मानव प्रवृत्तियों की अनभिज्ञता ; वह प्रेम की अतिशयता नहीं, आरम्भिक वेगपूर्ण वासना थी जो उन्हें मेरे चारों ओर मँडराते रहने को विवश करती थी।'

चन्द्रनाथ उस परिचित लड़की की ओर देख रहा है ; वह पहले से कितनी बदल गई है, कितनी समझ और विवेक उसने सञ्चय कर लिया है। प्रारम्भ में उसे भी सुशीला के प्रति विशेष मोह था, यौवन की आसक्ति जिसे लोग भूल से प्रेम समझ लेते हैं।

'लेकिन उस समय मैंने समझा कि यह प्रेम का अतिरेक है। ओह! वे मुझे कितना चाहते हैं, कितना अपना समझते हैं। मैं भी उन्हें उतना ही चाहूँगी, उतना ही प्रेम करूँगी। मैं उनसे कुछ भी छिपाकर न रक्खूंगी, कुछ भी न दुराऊँगी, अपने को पूर्णतया समर्पित कर दूंगी........

'अगले दिन जब वे कचहरी से आये तो मैं बड़ी उत्कंठा से उनकी बाट जोह रही थी···वे तो नित्य ही मेरे पास भूखे-से आते थे....मैं उन्हें अपने कमरे में ले गई, वहीं महाराजिन से मँगाकर जल-पान कराया और फिर,.......फिर मैंने उनसे कहा मैं आपको एक चीज़ दिखाऊँगी, अपनी एक बहुत प्यारी चीज़। उन्होंने कहा, 'ऐसी

क्या चीज़ है ?'......

'मैंने कहा दिखाती हूँ। और अपना सन्दूक खोलकर बैठ गई। उसमें से मैंने आपकी, समझे भैया तुम्हारी, सब चिट्ठियां निकालकर रक्खीं और वह उपहार भी जो तुमने विवाह से पहले मेरे पास भेजा था। याद है न ?'

चन्द्रनाथ —हूँ।

'हाँ, उस उपहार के साथ एक पत्र भी था। मैंने उस पत्र का उत्तर लिखा था। पर भैया, वह तुम्हारे पास नहीं पहुँचा। बहुत दिनों बाद मैंने उसे एक पुस्तक के कवर में रक्खा पाया। तब मुझे बहुत अफ़सोस हुआ, लेकिन मैं लाचार थी।'

'लाचार कैसी ? बाद में भी पत्र भेज सकती थीं।'

'सुनिये न। तो मैंने तुम्हारे पत्र उन्हें दिखाये, कहा कि यह मेरे भैया के पत्र हैं, मुझे बहुत प्यार करते हैं, और आपको (यानी उन्हें) भी; उनसे ज़रूर परिचय कर लीजिये। इस पर उन्होंने कहा कि मैंने उन्हें (यानी तुम्हें) शादी में नहीं देखा। मैंने कहा कि वह (यानी तुम) शादी में नहीं आ सके थे....

'बीच-बीच में वह पत्र पढ़ रहे थे। दो-एक पत्र पढ़कर बोले, 'इन्हें मैं अपने पास रख लूं ?' मैंने कहा, रख लीजिये। वे पत्रों की फाइल ले गये। मैं पत्रों को पाने के क्रम से फाइल-रूप में रखती जाती थी।'

'इसके बाद ?' चन्द्रनाथ ने शंकित चित्त से पूछा।

'इसके बाद दो-तीन दिन तक वह मुझसे कुछ खिचे-से रहे। मेरी समझ में नहीं आया कि इसका क्या कारण है। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि वे तुम्हारे पत्र पढ़कर नाराज़ होंगे। पर हुआ ऐसा ही; चार-पांच दिन बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि मेरी खुशी के लिये एक काम कर सकोगी ? मैंने कहा, "ज़रूर करूँगी, कहिये।"... भैया, मैं सचमुच यह महसूस करने लगी थी कि वे मेरे सब से अधिक अपने हैं। मैं समझती हूँ प्रत्येक नारी ऐसा अनुभव करती

है।...मेरे विचार में इसका कारण भी वही होता है—वासना-तृप्ति, जो पुरुष नारी को वैसी तृप्ति देता है वह उसे अपना सर्वस्व मालूम पड़ने लगता है।'

चन्द्रनाथ किंचित् घृणा-मिश्रित कुतूहल से उसकी बात सुन रहा था।

'मेरी बात सुनकर वे कुछ देर मेरा मुख देखते रहे, फिर तुम्हारा नाम लेकर बोले कि उनसे पत्र-व्यवहार बन्द कर दो।

'मैं सुनकर स्तब्ध रह गई। मैंने स्वप्न में भी न सोचा था कि मुझसे ऐसी मांग की जायगी। मैंने तर्क करने की कोशिश की, पर देखा वह उन्हें पसन्द नहीं है। मैं वचन-बद्ध हो चुकी थी; मैंने उन्हें उस बात का आश्वासन दे दिया इस आशा में कि फिर कभी इस सम्बन्ध में उनका मन बदल सकूंगी। पर भविष्य ने यह सिद्ध कर दिया कि मेरी आशा दुराशा मात्र थी।

'उनका मत कभी नहीं बदला। इसके विपरीत उन्होंने एक दिन अपनी शपथ देकर मेरे आश्वासन को लाचारी में परिणत कर दिया।''''अब बतलाओ भैया, मैं क्या करती?'

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'भैया, मैंने निश्चय किया कि मैं उन्हें प्रसन्न रखने के लिये कोई चीज़ उठा न रक्खूंगी। कभी-कभी, जब मुझे तुम्हारा पत्र मिलता, तो मुझे खीझ होती, क्षोभ होता; सोचती कि क्यों, किस अपराध में, मेरी स्वतंत्रता पर यह आघात हो रहा है; आखिर मैं किसी की खरीदी हुई दासी तो नहीं हूँ। पर फिर सोचती इनके साथ मेरा जीवन बँधा हुआ है, फिर ये भी तो मुझे प्यार करते हैं। भैया, मैं आज तुम्हारे सामने स्वीकार करूं कि मैंने उनकी इच्छानुसार तुम्हें भूलने की कोशिश की, तुम्हारे सहज-स्निग्ध सम्बन्ध को स्वप्न-जैसा समझने की चेष्टा की''' और शायद, मैं कुछ हद तक कृतकार्य भी हुई; यद्यपि कभी-कभी, विशेषतः तुम्हारा पत्र मिलने पर, मेरे मन में एक हूक-सी, पीड़ा-सी

उठती कि किसी तरह अपने भाई से दो बातें करने पहुंच जाऊं।... एक बार मैंने एक पत्र भी लिखा, पर बाद में उनकी शपथ का ध्यान करते हुये, फाड़ कर फेंक दिया। आज भी उस पत्र के फटे हुये टुकड़े जैसे मुझे प्रत्यक्ष की भांति दीख रहे हैं......

'अस्तु, मैंने उनकी प्रसन्नता को अपना ध्येय बनाया। उनकी प्रसन्नता के लिये मैंने बैडमिण्टन खेलना सीखा—टेनिस में मुझे उतनी सफलता नहीं मिली; पाउडर और लिप्स्टिक लगाने का अभ्यास किया, और नियम से उनके साथ समाज-सोसाइटी में घूमने की आदत डाली। शुरू में मुझे संकोच होता था, लेकिन धीरे-धीरे मैं अभ्यस्त हो गई—यद्यपि बहुत एक्सपर्ट (कुशल) मैं कभी नहीं बन सकी, शायद इसीलिये कि मैं जन्म से देहाती थी। क्लब का कृत्रिम वातावरण, वहां की बाहरी शिष्टता, वेश-भूषा के सम्बन्ध में अत्यधिक सावधानी, विशेषतः स्त्रियों में, और सबसे अधिक वहाँ का बौद्धिक धरातल शुरू में मुझे बहुत खलते; पर तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा, धीरे-धीरे मैं उसे पसन्द करने लगी, और उसमें "फिट" करने के लिये भरसक प्रयत्नशील रहने लगी। धीरे-धीरे मैंने पाया कि मैं पढ़ने-लिखने में रुचि लेना बहुत-कुछ भूलने लगी हूँ। हां, मेरा चित्रांकन का अभ्यास चलता रहा क्योंकि इसमें उन्हें भी रुचि थी। उसके मूल में भी सम्भवतः कला के प्रेम की अपेक्षा यह भावना ही प्रबल थी कि सोसायटी में वे अपनी पत्नी को लेकर गर्व महसूस करें। मैं इसी स्थिति में संतुष्ट होने की चेष्टा करती। मेरे कहने से कुछ दिनों एक सज्जन मुझे चित्रकला सिखाने के लिये नियुक्त किये गये, लेकिन बाद में हटा दिये गये।...नींद आ रही है क्या ?'

चन्द्रनाथ ने कुछ ऊब और कुछ चिन्तन के मूड में आँखें मूंद ली थीं; बोला—नहीं, मैं ध्यान से सुन रहा हूँ।

साधना ने इस भाव से जैसे उसे अपनी बातें सुनानी ही है, फिर कहना शुरू किया—'कभी-कभी मैं महसूस करती कि मैं कुछ खोता

जा रही हूँ, मेरे भीतर का कुछ मर रहा है, लेकिन मैं भरसक ऐसे विचारों को मन में न आने देने की कोशिश करती; मैं यह महसूस करने की चेष्टा भी करती कि मैं पूर्णतया सन्तुष्ट और सुखी हूँ। लेकिन मेरे भाग्य में इतना भी सुख और सन्तोष नहीं था।

'मेरी शादी के प्रायः छै महीने बाद क्लब में दो नये दम्पतियों ने प्रवेश किया। उनमें एक थे मिस्टर कपूर और उनकी पत्नी तथा दूसरे मिस्टर रामविलास सेठ और वही आपकी प्रेमलता—बाद में मुझे पता चला कि वे आपको जानती हैं। शीघ्र ही मेरा उन सबसे परिचय कराया गया। कुछ दिनों बाद मैंने पाया कि पतिदेव उनसे परिचय करके ही सन्तुष्ट नहीं हैं; वे घनिष्ठता चाहते हैं। एक बार मैं मिस्टर कपूर के घर गई, पर मैंने सेठ के घर जाने से इनकार कर दिया। कपूर के घर भी मैं दोबारा नहीं गई, मुझे लगा कि उनकी खूबसूरत पत्नी में कुछ अधिक गर्व का भाव है। मैंने इन लोगों को अपने घर पर निमंत्रित करने से भी इनकार कर दिया।

'भैया, न जाने क्यों मुझे ये दम्पती अच्छे न लगते, और मैं उनसे बचना चाहती। चाहती कि वे भी उनसे सम्पर्क न रक्खें, या कम रक्खें। एक दिन मैंने सोचा कि जब मैंने उनके कहने से भैया से पत्र-व्यवहार तक बन्द कर दिया है, तो वे भी मेरी इच्छाओं का आदर करेंगे और उन लोगों से सम्पर्क छोड़ देंगे। मैंने उनसे यह बात कही; उन्होंने "क्यों" कहकर टाल दिया। बाद में मैंने देखा कि उनकी उन लोगों से घनिष्ठता कम होने के बदले बढ़ती जा रही है। एक दिन मैंने इस संबन्ध में उन से कुछ कड़े स्वर में बातचीत की। उन्होंने कहा—"तुम बेकार बिगड़ती हो; सोसायटी में रहकर यह कैसे हो सकता है कि मैं सब से अलग रहूँ। तुम्हें इतना बुरा लगता है तो क्लब मत जाया करो।" उस दिन के बाद मैंने क्लब जाना छोड़ दिया।

'लेकिन इससे मेरी मानसिक अशान्ति और भी बढ़ गई। साँझ से रात तक वे अक्सर घंटों गायब रहते, और मैं अकेली कोठी में

कुढ़ती रहती। कभी मैं उनसे शिकायत करती तो वे बातों में टालने की कोशिश करते। कभी-कभी मेरे पास उनके सम्बन्ध में अफ़वाहें उड़कर पहुंचतीं जिससे मैं बहुत परेशान महसूस करती। कुछ दिन बाद घर के नौकर तक, मेरी खैरख्वाही जताते हुये, उनकी शिकायत करने लगे।

'वे कहां-कहां जाते हैं और क्या करते हैं इसका ठीक विवरण मुझे कभी न मिलता, पर मुझे आभास होने लगा कि वे शराब पीते हैं। यह भी विश्वास होने लगा कि उनका किसी दूसरी स्त्री या स्त्रियों से सम्बन्ध है, क्योंकि इस दिशा में मैं उनकी ज़रूरतों को समझती थी और देख रही थी कि अब वे मुझसे बहुत कम माँग करते हैं। ये बातें मन में रखते हुये मैं उनसे अक्सर रूठी-रूठी रहने लगी; कभी-कभी काफी झगड़ा भी हो जाता और मैं मायके चले जाने और फिर कभी लौट कर न आने की धमकी देती। ऐसे अवसरों पर वे मुझे मनाने और समझाने की कोशिश करते, कहते कि तुम्हें किसी ने बहका दिया है और मैं तो कभी-कभी मिस्टर खन्ना के घर ब्रिज खेलने चला जाता हूँ जिससे काम की थकन उतर जाती है और मन बहल जाता है; कहोगी तो नहीं जाया करूँगा। लेकिन उनके व्यवहार में कोई स्थायी परिवर्तन न होता। फलतः मेरी कुढ़न और असन्तोष भी बराबर बने रहते।

'भैया, इसी तरह लगभग साल भर बीत गया। कैसे मेरा वह वर्ष बीता मैं ही जानती हूँ। मुझे कभी अपने से आशा न थी कि मैं इतना सहन कर सकूँगी। इस बीच मैं कई बार घर गई, पर वहाँ मैंने इस सम्बन्ध में एक अक्षर भी न कहा। सोचा, क्यों अपने पति की बुराई करूँ। मैंने कभी अपनी मा को बाबूजी की बुराई करते नहीं सुना था, इसलिये मेरा भी मुँह न खुल पाता। लेकिन इसके बाद एक ऐसी घटना हुई जिसने मेरे हृदय और जीवन को एकदम परिवर्तित कर दिया।

'मेरे बाबूजी की अवस्था लगभग पचास वर्ष की है। मेरी मा के जो उनकी दूसरी पत्नी हैं (पहली पत्नी निःसन्तान मर गई थीं) अपेक्षाकृत कम बच्चे पैदा हुये। एक मुझसे पहले और एक मुझसे बाद में; दोनों ही जाते रहे। दूसरा बच्चा लड़का था, उसके मरने का मुझे बेहद अफ़सोस हुआ था।...भैया, मुझे कितनी खुशी हुई जब मुझे यकायक मालूम हुआ कि बाबूजी की इस वृद्धावस्था में मेरी मा के बच्चा होनेवाला है। मैं मन-ही-मन मनाती कि मेरे भाई पैदा हो और वह जीवित रहे। भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली और तीन-चार मास बाद मा के एक लड़का उत्पन्न हुआ।'

चन्द्रनाथ—सच; अच्छी तरह है न?

साधना—हाँ, अभी तक तो अच्छी तरह है, आगे हमारा सबका भाग्य है। (कुछ रुककर)....भैया, मैंने खुशी-खुशी यह खबर उन्हें दी। उन्होंने मुँह से कहा—बड़ी खुशी की बात है, आइ एम वेरी ग्लैड (मैं बहुत प्रसन्न हूँ); पर उनके चेहरे पर, जैसा कि मैंने बाद में याद किया, दूसरा ही भाव था।

चन्द्रनाथ—क्यों, क्या उन्हें यह खबर अच्छी नहीं लगी!

'नहीं, इसके विपरीत उन्हें यह खबर बहुत बुरी लगी जैसा कि मुझे धीरे-धीरे आभास हुआ। थोड़े ही दिनों में उनका मेरे प्रति व्यवहार बदलने लगा।'

'ऐसा क्यों, इसमें उनके बुरा मानने की क्या बात थी।'

'आप अभी तक नहीं समझे; मेरे पिता जी का उत्तराधिकारी जो पैदा हो गया। वे उनकी सब सम्पत्ति पाने की आशा बांधे बैठे थे।'

'बाप रे! इसी से बच्चे का पैदा होना बुरा लगा। ऐसे ग़रीब भी तो नहीं हैं।'

'हाँ, ग़रीब नहीं हैं तो भी। उनका लाख-दो-लाख का नुक्सान हो गया'....कुछ रुक कर—'बात यहीं खत्म हो जाती तो खैर थी, पर ऐसा नहीं। भाई को देख आकर मैंने पाया कि मेरे प्रति उनका व्यव-

हार एकदम बदल गया है। इतना बदल गया कि आप कल्पना नहीं कर सकते। अब तक मेरे रूठने की परवाह करते थे। अब वह मेरी एकदम उपेक्षा करने लगे। पहले की भाँति एक बार जब मैंने उनसे शिकायत की तो कहने लगे—'तुम्हें मेरी बातों में हस्तक्षेप करने का कोई हक़ नहीं है ; तुम्हारी खुशी हो तो मेरे घर में रहो नहीं तो कहीं और चली जाओ।' मैं सुनकर दंग रह गई। एक दूसरे अवसर पर उन्होंने कहा—'आइ एम टायर्ड आफ यू, आइ वाण्ट टु गेट रिड आफ यू (मैं तुमसे ऊब गया हूँ, मैं तुमसे मुक्ति चाहता हूँ)।

'भैया, मैं कुछ मानी स्वभाव की हूँ ; बचपन से अबतक मुझसे किसी ने दुर्व्यवहार नहीं किया था, और न कभी ऐसे कटु वाक्य सुनने को मिले थे। मैं सुनकर तिलमिला गई, और उनसे कहा—अच्छी बात है, मैं आपको मुक्ति दे दूंगी। कहते तो उनसे कह दिया, फिर मैं एकान्त में जाकर खूब रोई। बार-बार सोचती मैं कहां जाऊँ, क्या करूँ। मैं मायके जा सकती थी, पर मैं जानती थी कि वहां से मुझे समझा-बुझा कर वापस भेज दिया जायगा। मुमकिन है पिता जी उन्हें खुश करने को कुछ जायदाद वगैरह उनके नाम कर देते। पर मुझे यह सह्य न था। मैं नहीं बर्दाश्त कर सकती थी कि एक ऐसे व्यक्ति के साथ, जो अपनी नीच प्रकृति की इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति कर चुका है, रहूँ ; रहूँ ही नहीं, उसे प्यार करूँ ; उसके लिये, उसके साथ, जब उसका हुक्म हो तो, उसकी वासना-तृप्ति के लिये सोऊँ . ।'

वह बहुत उत्तेजित हो गई थी ; कुछ ही क्षण बाद उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

आंचल से मुंह पोछती हुई बोली—'भैया, मैंने इस सम्बन्ध में बहुत सोचा, बहुत सोचा ; दिन सोचा, रात सोचा ; घर के कोने में कहीं बैठ जाती, फिर रोती और सोचती। और मैं पूछती —क्या मेरी जिन्दगी इस तरह रोने के लिये ही है, क्या उसका लक्ष्य किसी-न-किसी तरह एक व्यक्ति को प्रसन्न रखना ही है, फिर चाहे वह व्यक्ति कितना ही

नीच, कितना ही हृदय-हीन क्यों न हो....क्या नारी का जीवन मात्र इसके लिये है, क्या उसे यह अधिकार नहीं कि वह भी दुनिया में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करे, और अपने मनोनुकूल आदर्शों के लिये जीवित रहे ? क्या नारी मात्र साधन है, पति की वासना-पूर्ति का साधन, घर में उसके आराम का और बाहर ऐश्वर्य-प्रदर्शन का साधन, बच्चे पैदा करने का साधन....।

'भैया, मेरी इस अवस्था में कोई ऐसा न था जो मेरी बात पूछता, मेरे कष्ट से सहानुभूति प्रकट करता, और मेरे अत्याचारी पति को किसी तरह का दंड देता। मैं बार-बार सोचती नारी कितनी असहाय है, हिन्दू नारी कितनी असहाय है। और मेरे भीतर का अहं कहता—नहीं मैं असहाय नहीं हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ, स्वतंत्र हो सकती हूँ ; मुझे स्वतंत्र होना चाहिये, होकर दिखा देना चाहिये ; इस घर में रहना अपने प्रति अन्याय ही नहीं पाप है। और कभी-कभी मैं सोचती—जिस पति से मुझे प्रेम नहीं है और जिसे मुझसे प्रेम नहीं है, उसमें साथ रहना, उसके साथ सोना व्यभिचार है, पाप है.......।'

चन्द्रनाथ—अब तुम जाकर सो जाओ, देर हो रही है।

साधना जैसे अपने में खोई हुई थी, विचार-मग्न ; चेहरे पर गम्भीर उदासी का भाव था जो सहसा उत्तेजना की लाली से बदल गया था। वह मेज के पार एक तटस्थ दिशा में देख रही थी। चन्द्रनाथ की बात अनसुनी करती हुई बोली—'समाज में व्यभिचार की दूसरी परिभाषा की जाती है, लेकिन मुझे लगता कि मेरा उनके साथ रहना बिलकुल वही था ; आखिर एक वेश्या क्या करती है, वह भी तो अपने पालन-पोषण के लिये, बिना प्रेम की प्रेरणा के, अपना शरीर समर्पित कर देती है। जब मैं यह सोचती तो मेरा हृदय क्षोभ और ग्लानि से भर जाता। मुझे लगता कि बिना अपनी मनुष्यता, और आत्म-सम्मान का हनन किये मैं उस सम्बन्ध को हर्गिज़ नहीं बनाये रह सकती थी।'

चन्द्रनाथ—अब तुम्हें सो जाना चाहिये।

साधना—अभी...अभी तो मुझे बहुत-सी बातें कहनी हैं। दिन में सो भी तो चुकी हूँ।

चन्द्रनाथ—अब अपनी बातें फिर कहना।

'अच्छा भैया, अब तुम्हें नींद लग रही होगी,' कहकर साधना उठने लगी।

वास्तव में चन्द्रनाथ को नींद नहीं लग रही थी, वह भी दिन में सो चुका था। किंतु वह अवकाश चाहता था, साधना की इस लम्बी-चौड़ी कहानी का मर्म समझने और अपना कर्त्तव्य स्थिर करने के लिये। अभी तक वह उसके प्रति अपने कर्त्तव्य का निश्चय नहीं कर सका था।

साधना की कथा उसने सुनी, पर जैसे कुछ विशेष महसूस नहीं किया। उस कथा में स्वयं वह कहीं न था—साधना के जीवन में स्वयं उसका कोई स्थान नहीं रहा है। फिर उसे उसके सुख-दुःख से मतलब!

और उसे याद आया कि एक बार वह नौकरी का प्रार्थी बनकर बरेली गया था, तब साधना से, और उसके पति से, भेंट नहीं हो सकी थी। तब उन्होंने उसके लिये कुछ भी नहीं किया था, तब जब कि उसे नौकरी की सख्त ज़रूरत थी।.......वे लोग क्लब गये हुये थे। बंगले में नौकर साधना का "मेम साहब" कहकर उल्लेख करते थे। ज़रूर वह इस सम्बोधन को आनन्द से सुनती होगी। वह चाहती तो उसे रोक सकती थी, बदल सकती थी।

आज वह प्रार्थी के रूप में उसके घर आई है।

उसके हृदय में गहरी उदासीनता का भाव है। और, साधना की विषम परिस्थितियों का ध्यान करके, वह सोच रहा है—मैं कितना कठोर बन गया हूँ। कितना आत्म-केन्द्रित; इतनी बड़ी कष्ट-गाथा मुझे विचलित करने में असमर्थ है।

३४

दूसरे दिन सुबह से दोपहर तक चन्द्रनाथ और साधना में कुछ भी बात न हुई। उन्हें अपने अपने कमरों में भोजन कराके शिवसरन दो घण्टे के लिये अपने घर चला गया।

सुबह से चन्द्रनाथ पढ़ने में व्यस्त रहा था, कम-से-कम वैसा दीखता रहा था; साधना अथवा उसकी ज़रूरतों के सम्बन्ध में कुछ पूछने की चिन्ता उसने नहीं की। यह नितान्त अस्वाभाविक था, पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे उसमें परिवर्तन करे। दिखावटी व्यवहार से उसे घृणा थी, और उसे भीतर से कोई स्फूर्ति नहीं मिल रही थी कि अपने और साधना के बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करे।

भोजन करने के बाद वह कुछ देर लेट गया था; झपकी भी आने लगी थी, सहसा उसे आभास हुआ कि बराबर के कमरे में कोई रुक-रुक कर मन्द स्वर में रो रहा है।

वह ध्यान देकर सुनने लगा। सच ही वह रोने का स्वर था। उस स्वर ने उसकी चेतना को बरबस झकझोर दिया।

वह उठा, कुछ देर किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे साधना के कमरे की ओर बढ़ा।

बाहर से उसने देखा—साधना तकिये और बांह के बीच सिर छिपाये मंद-मंद रो रही थी। सकपकाया हुआ-सा वह अन्दर घुसा।

जिसके प्रति हम उदासीन हैं, उदासीन रहना चाहते हैं, उसे रोते हुये पाकर हम क्या करें?

एक कुर्सी वहां पड़ी थी, उसे पकड़ कर वह खड़ा हो गया।

साधना सहसा चुप हो गई थी। मुख पोछती हुई बोली—बैठो।

कुछ देर विमर्श करके वह बैठ गया।

'रो क्यों रही थीं?' वह कुछ देर बाद बोला।

'नहीं—यों ही।'

'रोने से कोई लाभ नहीं ; मेरा विचार है कि तुम्हें वापिस चले जाना चाहिये।'

साधना चुप रही। फिर बोली—कल से आप यही सोच पाये हैं ! वापिस जाने का मेरा कोई विचार नहीं है। और मैं यहां भी नहीं रहूँगी। मैं आज ही किसी धर्मशाला में चली जाऊँगी।

चन्द्रनाथ—नहीं, सो तो मैंने नहीं कहा।

'तुम्हारे कहने की ज़रूरत नहीं। मैं किसी पर बोझ डालने नहीं आई, भैया ; विश्वविद्यालय में एम० ए० क्लास में दाखिल होने आई हूँ।'

'तो क्या अरुणकुमार से सम्बन्ध ......।'

'जी हां, मेरा उनसे अब कोई सम्बन्ध नहीं है।......यहां के पुरुषों ने स्त्रियों को ऐसे सांचे में ढालने की कोशिश की है कि वे उनके बिना कहीं ठहर ही न सकें, पर मैं वैसे कच्चे सांचे में नहीं ढली हूँ ; मैं न उनकी परवाह करती हूँ न किसी दूसरे की।'

चन्द्रनाथ खामोश रहा।

'मेरी शादी कराने में तुम्हारा भी हाथ रहा था, मैंने सोचा था कि कम-से-कम तुमने काफी समझ-बूझ कर वह सम्बन्ध स्थिर किया होगा। इसलिये मैं निःशंक रही......।'

'लेकिन शादी तो तुम्हारे मामा जी ने तय की थी।'

'मैं क्या जानूं कि किसने तय की थी ; लेकिन मैं इतना जानती थी कि उसमें तुम्हारी सम्मति थी, और उस सम्मति का मैं बहुत आदर करती थी।'

चन्द्रनाथ से कुछ कहते न बना।

'और आज तो मुझे लग रहा है कि मैं तुम्हारे लिये बिल्कुल बेगानी हो गई हूँ। सो शायद इसलिये कि कहीं मेरा भार सदा के लिये न सँभालना पड़ जाय।'

'चन्द्रनाथ अब भी चुप था।

'सांझ को चार बजे मैं चली जाऊँगी। यहां आने में जो अपराध हुआ है उसके लिये मैं क्षमा मांगती हूँ।'

चन्द्रनाथ कुछ देर खामोश रहा। फिर बोला—एक बात का उत्तर दोगी।

साधना—पूछिये।

'मैंने एक बार, जीजी की मृत्यु से डेढ़-दो महीने पहले, श्रीप्रसाद कालेज में नौकरी के लिये अर्ज़ी दी थी; तुम्हें मालूम हुआ था?'

साधना—हुआ था, लेकिन तब जब नियुक्ति हो चुकी थी। स्वयं उन्होंने अफ़सोस प्रकट करते हुये मुझे खबर दी थी।

'तब?'

'तब क्या, मेरे हाथ में कुछ न था। मेरा अपराध यही था कि मैं सब-कुछ सहती रही। अपने को हजार तरह भुलावा देती रही। और पहले ही वह न किया जो अब करना पड़ा। कारण यही था कि जिसे पति कहते हैं उससे सहज ही अलग होते नहीं बनता।'

चन्द्रनाथ—तुम चाहतीं तो मुझे पत्र डाल सकती थीं। कम-से-कम उस अन्तिम पत्र का...'

साधना—मैं शपथ ले चुकी थी कि तुम्हें पत्र न लिखूंगी। शरीर में प्राण रहते उस घर में उसे नहीं तोड़ सकती थी।...मेरे भाग्य से जीजी भी जीवित न रहीं कि उनके बहाने कभी शिवपुरी में भेंट कर पाती।

कुछ क्षण खामोशी में बीत गये। चन्द्रनाथ अपने कमरे में चला आया।

लगभग साढ़े-तीन बजे शिवसरन आया। चन्द्रनाथ के पास आकर बोला—बीबी जी कहीं जा रही हैं क्या!

'नहीं तो, क्यों?'

'बिस्तर-उस्तर बांध रही हैं, इससे कहा।'

'कहीं नहीं जा रही है।'

और वह शिवसरन से बर्फ लाने को कहकर फिर साधना के कमरे में पहुँच गया।

'यह क्या हो रहा है?'

'कुछ नहीं; बिस्तर बांध रही हूँ।'

'यह उचित नहीं, समझीं; यह घर पराया नहीं है।'

साधना हाथ रोक कर खड़ी हो गई। 'मुझे किस लिये रोक रहे हैं?'

'क्योंकि...क्योंकि यह मेरा अधिकार है, और इसलिये भी कि तुम्हारी शादी तय कराने में मुझसे जो ग़लती हुई थी उसका कुछ प्रायश्चित्त कर सकूं।'

'उसका प्रायश्चित्त करने को तो मैं अकेली ही काफ़ी हूँ।'

'यह मैं जानता हूँ।....पर क्या मुझे अपना कर्त्तव्य करने का अवसर न दोगी?' साधना चुप रही।

'मैं तुमसे अनुरोध ही नहीं, प्रार्थना कर रहा हूँ, बहिन।'

'लेकिन इससे पहले तो....'

'क्या तुम उस सबका उल्लेख किये बिना न रहोगी? मैं तुमसे ऐसी आशा नहीं करता। ग़लती तो सभी से होती है।'

साधना की आँखें डबडबा आईं।

रात को चन्द्रनाथ ने साधना के कमरे के दरवाजे में खड़े होकर कहा—थोड़ी देर मेरे पास नहीं बैठोगी, बहिन।

'आती हूँ।'

वह अपने कमरे में आकर प्रतीक्षा करने लगा। पाँच-सात मिनट में साधना आई।

'तो तुमने एम० ए० ज्वाइन करने का निश्चय किया है?'

'हूँ; विश्व-विद्यालय कब खुलेगा?'

'पढ़ाई तो देर से शुरू होगी, पर नाम अभी लिख सकता है। क्या विषय लोगी ?

'क्या लूँ ? संस्कृत या इतिहास ?'

'कुछ भी ले लो, या फिर कुछ मित्रों से सलाह कर लें।' कुछ रुक कर– देखो बहिन, तुम्हारी शादी ऐसी परिस्थितियों में तय हुई थी कि अधिक सोचने का समय नहीं मिला।

साधना—छोड़िये उस बात को, जो भाग्य में था वह हुआ।

चन्द्रनाथ – लेकिन ऐसा होना नहीं चाहिये था; मैं सचमुच तुम्हारे भविष्य के लिये बहुत चिन्तित हूँ।

साधना—भैया, तुम कितने ही चिन्तित क्यों न होओ, लेकिन एक बात निश्चित है; अब मुझे बरेला के घर में वापिस जाना नही है। इस अटल निश्चय के लिये मैं सब-कुछ सहने को तैयार हूँ।

चन्द्रनाथ—लेकिन समाज, समाज में तुम्हारी क्या स्थिति होगी ?

साधना—यदि समाज में विधवाओं के लिये स्थान है तो मेरे लिये भी होगा।

चन्द्रनाथ—यह मिसाल ठीक नहीं।

साधना—तुम शायद सोच रहे हो कि विधवायें अपने ही घर में रहती हैं....वास्तव में मैंने यह बात नहीं सोची; मैंने सिर्फ इतना सोचा, और काफी मनोयोग से सोचा, कि सिर्फ नारी होने के कारण ही मैं आँख मूंदकर सब प्रकार के अन्याय से सहयोग नहीं करती रहूंगी।

चन्द्रनाथ—बहिन, हमारे समाज की जैसी स्थिति है उसे देखते हुये तुम्हें अपने घर रखते भी भय होता है।

साधना—यदि सचमुच आपको अपने लिये भय हो तो मैं यहां से हट सकती हूँ... ...लेकिन मैं पूछती हूं कि यह सारा भय स्त्रियों को लेकर ही क्यों है ? भय की स्थिति तो धर्म और सचाई की स्थिति नहीं है।........मैंने एक बार यह भी सोचा था कि मैं गांधी जी के आश्रम में

चली जाऊँ। पर वह समस्या का स्थायी हल न होगा ; गांधी जी आज हैं कल नहीं भी हो सकते हैं । हमें साधारण मनुष्यों के बीच ही इन विषमताओं का समाधान खोजना होगा।

चन्द्रनाथ ने चिन्तन की मुद्रा में कहा—हूं।

दो दिन बीत गये । इन दो दिनों में कोई ऐसी घटना नहीं हुई जिसे उल्लेखनीय कहा जाय, फिर भी चन्द्रनाथ ने पाया कि उसके जीवन में विशेष परिवर्तन हो गया है । वह एक नये सम्बन्ध, नये स्नेह और ममत्व का अनुभव करने लगा था।

साधना के प्रति उसका पहले का मनोभाव, जिसमें तीव्र ममता और मोह का समावेश था, बहुत पहले से विलुप्त हो चुका था। उसके बदले उसके हृदय में क्षुब्ध रोष, नैराश्य, और उदासीनता क्रमशः घर करते गये । साधना के आकस्मिक आगमन ने सहसा उसके आरम्भिक रोष और उसके साथ प्रतिकार की भावना को जाग्रत किया, पर उसकी क्लिष्ट परिस्थिति ने शीघ्र ही उन भावों को दबा दिया। साधना की जीवन-गाथा और उसके बाद के व्यवहार ने क्रमशः उसके मनोभावों को एक नये धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया।

साधना की आत्म-कथा में चन्द्रनाथ ने एक बात विशेष रूप से लक्षित की, उसे लगा वहां स्वयं उसका कोई महत्वपूर्ण स्थान न था। मानो उसे भूलने का प्रयत्न करती हुई साधना सम्पूर्ण रूप से किसी दूसरे व्यक्ति, अपने पति को पाने का प्रयत्न कर रही थी। उस प्रयत्न के बीच उसने यथाशक्ति अपने को, अपनी मनोवृत्तियों और आदतों को, बदला भी, और दूसरे सम्बन्धों से, जिनमें स्वयं चन्द्रनाथ का सम्बन्ध भी सम्मिलित था, विरत या उदासीन होने की चेष्टा भी की। इस वस्तुस्थिति की चेतना ने चन्द्रनाथ के प्रारम्भिक मोह के रहे-सहे ध्वंसावशेष को भी नष्ट कर दिया। और उसने पाया कि वह साधना के साथ एक नये सम्बन्ध-रूप अध्याय का आरम्भ करने को तैयार है।

चन्द्रनाथ के जागने से प्रायः एक घंटे पहले साधना उठ जाती

और उसके उठते-उठते, दैनिक कृत्यों से निवृत्त हुई, वह चाय के लिये पानी गर्म होने को रख देती। पहले दिन इसे लज्जित कर चन्द्रनाथ ने कहा– 'तुम क्यों व्यर्थ कष्ट कर रही हो, शिवसरन तो है ही।' साधना ने उत्तर में कहा–'हर्ज ही क्या है ; मुझे भी तो कोई दूसरा काम नहीं करना है।'

शिवसरन ने मेज पर प्याले और तश्तरियाँ लगा दीं पर चाय साधना ने ही तैयार की।

दूसरे दिन चाय के साथ साधना ने थोड़ी-सी बेसन और एक तरकारी की पकौड़ियाँ भी तैयार कर लीं। चन्द्रनाथ चुपचाप उन्हें खाने लगा।

साधना ने पूछा– भैया, तुम पहले तो चाय नहीं पीते थे।

'हूँ ; नरेन्द्र ने आदत लगा दी है।'

'मेरी भी आदत पड़ गई है ; लेकिन मैं जानती हूँ कि यह अच्छी चीज़ नहीं है। दूध ले लिया करो न ?'

'तुम अपने लिये ले सकती हो।'

'यह लो, मेरा क्या, मैं तो कुछ भी खाकर रह सकती हूँ।'

उसने सोचा हिन्दुस्तान में नारी का स्वास्थ्य कोई महत्त्व नहीं रखता ; पर साधना से कुछ न कहा।

रोटी के समय साधना बरबस चौके में घुस जाती। पहली बार चन्द्रनाथ के मना करने पर उसने कहा—'कोई हर्ज नहीं है, आज मुझे ही बना लेने दो।' और दूसरे दिन शिवसरन को बर्फ लाने के लिये भेजकर बोली– 'देखो भैया, जबतक मैं यहाँ हूं तब तक तुम्हें शिवसरन के हाथ की रोटी नहीं खाने दूँगी; उसे बनाने की तमीज भी है।'

'आठ-सात दिन बाद तुम विश्वविद्यालय चली जाओगी, तब ?'

'तब क्या'......फिर बोली—मेरी तो समझ में नहीं आता कि कैसे तुम इतने दिनों से यहाँ रह रहे हो। तभी तो शरीर का यह हाल हो गया।'

'शरीर को तो कुछ नहीं हुआ है...वैसे भी कोई कष्ट नहीं है; मौज में खाना पीना चलता है। न किसी की फिक्र न चिन्ता '

'रहने भी दो; जीजी के सामने क्या ऐसे ही थे ?'

'अपने स्वार्थ के लिये कोई किसी को मरने से तो नहीं रोक सकता।'

एक दिन रात को साधना ने कहा—भैया, सुधीर को अपने साथ नहीं रखते, अब तो बड़ा हो गया, साथ रह सकता है।

चन्द्रनाथ के जी में आया कि पूछे कि साधना ने सुधीर को कब देखा, पर वह बोला नहीं।

साधना—पिछले जाड़ों में मैं बदायूँ गई थी, तब उसे बुलवाया था। देखकर मुझे रुलाई आने लगी, कैसे तो कपड़े पहने हुये था। वह तुम्हें खूब पहचानता है, भैया।

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

साधना चन्द्रनाथ के कमरे में बहुत देर नहीं रुकती। थोड़ी देर को, विशेषतः भोजन के समय, आती है, और दो-चार बातें करके तथा एक-दो किताबें लेकर चली जाती है। चन्द्रनाथ भी उसे अपने पास रुकने का प्रोत्साहन नहीं देता। फिर भी उसे लगता है कि यह लड़की क्रमशः उसके हृदय में एक स्थान बनाती जा रही है। उससे अपनेपन का लगाव स्थापित करती जा रही है। कभी-कभी उसे महसूस होता है कि यह लगाव एकदम नया नहीं है, उस पर अतीत की धूमिल स्मृतियों की छाया पड़ी हुई है।

३५

तीन-चार दिन बाद शिवसरन ने खबर दी कि नरेन्द्र बाबू सपरिवार आ गये हैं और उन्होंने चन्द्रनाथ को बुलाया है। साँझ को चन्द्रनाथ नरेन्द्र के घर गया। नरेन्द्र उस समय ऊपर था, चन्द्रनाथ सीधे वहीं पहुँच गया। सरोजिनी ने उसे देखकर शोर मचाया, 'आ

गये, आ गये,' और वह खुशी से तालियाँ पीटने लगीं। पास ही छोटी मुनिया पैरों पर खड़ी होकर चहल-कदमी का अभ्यास कर रही थी। दो ही महीने के अन्दर वह इतनी बढ़-बदल गई थी।

'देखिये हमारी मुनिया चलने लगी है और बोलती भी है,' सरोजिनी खुश होकर कह रही थी, 'मेरा नाम तक लेने लगी है।...मुनिया कहो लोज और...बुआ जी।'

इतने में चन्द्रनाथ ने आशा और सावित्री को कमरे से निकल कर आते देखा; दोनों ने उसका स्वागत किया। नरेन्द्र कमरे में ही बैठा था। चन्द्रनाथ के पहुंचने पर बोला—ओहो भाई, कितने दिन से यहाँ हो? कालेज़ कल ही खुलेगा न?

चन्द्रनाथ—मुझे आठेक दिन यहाँ हो गये; कालेज कल ही खुल रहा है।

नरेन्द्र—तुम्हें एक खुशखबरी सुनाऊँ; आशा फर्स्ट डिवीज़न में पास हो गई।

चन्द्रनाथ—सच...बड़ी प्रसन्नता की बात है; मिठाई मिलनी चाहिये।

'ज़रूर', आशा ने मन्द हसित से कहा।

नरेन्द्र—शिवसरन कहता था तुम्हारे घर कोई महिला आई हुई हैं?

चन्द्रनाथ—हाँ, मेरी बहिन हैं। (आशा से) आप उनसे परिचय करके बहुत खुश होंगी। वह भी बड़ी प्रतिभाशालिनी हैं।

आशा—मैं कल आपके यहाँ आऊँगी।

सरोजिनी—और मैं भी आऊँगी।

दूसरे दिन सवेरे ही आशा सरोजिनी के साथ चन्द्रनाथ के घर पहुँची। उस समय साधना चाय तैयार कर रही थी।

आशा चन्द्रनाथ के कमरे में कुर्सी पर बैठ गई। सरोजिनी दरवाजे में खड़ी थी और रह-रह कर रसोईघर की तरफ देख रही थी। चुपके से आकर आशा से पूछा—बुआ जी, यह कौन हैं?

'वह भी तुम्हारी बुआ जी हैं', आशा ने उत्तर दिया।

'ऊँहूं' कहकर सरोजिनी फिर पहली दिशा में देखने लगी।

इतने में शिवसरन चाय का सामान लेकर आया। साधना अभी वहीं थी और कढ़ाई में घी छोड़कर कुछ तैयार कर रही थी। आशा ने चन्द्रनाथ से कहा—उन्हें भी बुला लीजिये न।

'आ रही हैं, तब तक चाय तैयार की जाय। (सरोजिनी से) आज तुम कुछ काम नहीं करोगी, सरोज?'

आशा—आज बेचारी अपने को पदच्युत-सा महसूस कर रही है; पहले तो आकर बिलकुल घर की मालकिन बन जाती थी।

सरोजिनी चल कर करीब आ गई।

साधना अभी रसोईघर में ही व्यस्त थी। आशा ने उठते हुये कहा—जरा देखूं, जीजी क्या-क्या बना रही हैं। और वह उधर चली गई। चन्द्रनाथ को यह अच्छा लगा।

थोड़ी देर में दोनों साथ-साथ आईं। दोनों के हाथों में दो-दो तश्तरियाँ थीं।

'बैठो जीजी,' कहते-कहते आशा कुर्सी पर बैठ गई और उसने साधना को अपने पास ही बिठा लिया।

'अब मैं आप दोनों का परिचय करा दूँ, है न?'

'क्यों जीजी क्या यह ज़रूरी है? मुझे तो लगता है मैं आपको बहुत पहले से जानती हूँ।'

साधना कुछ अप्रतिभ हो रही है; वह उस तरह खुलकर नहीं बोल पा रही है जैसे कि आशा। चन्द्रनाथ ने उसकी मदद करने की भावना से कहा—तुम्हारे बारे में मैंने कल साँझ ही इन्हें बतला दिया था; ये मेरे मित्र नरेन्द्र की बहिन हैं, (सरोजिनी पर दृष्टिपात करके) सरोजिनी की बुआ जी; इस वर्ष राजनीति में प्रथम श्रेणी में एम० ए० किया है।

साधना ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुये आशा की दिशा में

देखकर कहा—बड़ी खुशी हुई बहिन, बधाई।

चन्द्रनाथ—(आशा से) साधना ने बी० ए० किया था, दो-तीन वर्ष पहले; विवाह के बाद पढ़ना छूट गया; अब एम० ए० में दाखिल होने का विचार है।

आशा—बहुत ठीक; आप लोगों ने एम० ए० किया है तो हम पीछे क्यों रहें।

चन्द्रनाथ आशा और साधना के वैषम्य का ध्यान कर रहा था। दोनों की अवस्था में विशेष अन्तर न होगा पर आशा अधिक स्वस्थ और उत्फुल्ल मालूम पड़ती है। उसके चेहरे पर एक विशेष निर्मलता और ताजगी है। शायद परीक्षा की नई सफलता के कारण वह पग-पग पर मुस्कुराती प्रतीत होती है। चन्द्रनाथ देखता है कि पिछले महीनों में उसके स्वास्थ्य में स्पष्ट उन्नति हुई है और उसके चेहरे की रेखायें विशेष मोहक और आकर्षक बन गई हैं। तीन वर्ष पहले साधना में भी कुछ ऐसी ही दीप्ति और निर्मलता थी, यद्यपि वह तब भी इतनी स्वस्थ न थी। पर तीन ही वर्षों में उसमें कितना परिवर्तन हो गया है! उसकी पहली कान्ति को जैसे किसी राहु ने ग्रस लिया है, और उसकी भावभंगी एवं गति में भी उस समय की शालीन स्वच्छन्दता एवं मनस्वी आत्म-भावना का बहुत कुछ लोप हो गया है। मालूम होता है जैसे अब उसके जीवन में कोई ऐसा उदात्त लक्ष्य नहीं रह गया है जिसकी ओर वह पूर्ण शक्ति और आत्म-विश्वास से अग्रसर हो सके और जो उसकी जीवनचर्या को असन्दिग्ध सार्थकता से मंडित कर सके।

क्यों आज उन दोनों में इतना अन्तर मालूम पड़ता है? आज जहां एक के मन-प्राण में आशा, उमंग और स्फूर्ति है वहां दूसरी में अवसाद और निराशा क्यों है? किसने इतनी जल्दी साधना के ओजस्वी व्यक्तित्व में इतना परिवर्तन कर दिया है? वह अपने पति को छोड़ आई है; उसने यह साहस का काम किया है, असाधारण

मनस्विता का; पर उसका यह साहस और मनस्विता जैसे निषेध-रूप हैं उनकी कोई भावात्मक दिशा या लक्ष्य दिखाई नहीं देता। क्यों आज वह निराश्रित और निरवलम्ब-सी दिखाई पड़ रही है, वह जो किसी दिन प्रखर बौद्धिक दीप्ति और उच्च संकल्पों से महिमान्वित थी?...... उसे लगता है कि उस समाज की गठन में जो एक साधना जैसी लड़की के व्यक्तित्व को इतना परावलम्बी और पर-मुखापेक्षी बना देता है कोई गम्भीर त्रुटि, कमी या विसंगति है।

दस बजने वाले थे। चन्द्रनाथ ने कहा—अब आप लोग मुझे कालेज जाने की आज्ञा देंगी।

आशा—ज़रूर जाइये; आप विश्वास कर सकते हैं कि आपके पीछे हम लोग झगड़ नहीं पड़ेंगी।

चन्द्रनाथ—नहीं, नहीं; बल्कि मैं आशा करता हूँ कि लौटकर मैं आपको एक-दूसरे के गले में बांहें डाले प्रेमालाप करते पाऊँगा। (साधना से) इन्हें जाने न देना, बहिन।

उसने इन दिनों में पहली बार साधना को इतने मीठे ढंग से सम्बोधित किया था; और पहली बार आशा और उसके बीच इतनी वक्रता से वाक्यों और दृष्टियों का विनिमय हुआ था।

३६

साधना का पति से रूठ कर अथवा उसे छोड़कर इस प्रकार चले आना और रहने लगना चन्द्रनाथ को असाधारण घटना लगी थी, पर इतनी असाधारण नहीं कि उसके कारण उसके जीवन में विशेष उथल-पुथल मच जाय। उसका साधना से जो सम्बन्ध रह चुका है उसे देखते यह कोई अस्वाभाविक बात न थी कि वह कुछ दिनों—और उसका अभी तक यह खयाल था कि यह कुछ ही दिनों की बात है, बाद में साधना अवश्य ही अपने पति के पास वापिस चली जायगी—उसके पास रह जाय। किन्तु धीरे-धीरे उसे ज्ञात हो गया कि वह

घटना उतनी असाधारण न थी। गुप्त रूप में जब उसने नरेन्द्र से स्थिति का उल्लेख किया तो उसने कहा—'मामला सीरियस (नाजुक) है। साधना तुम्हारी सगी बहिन नहीं है (सगी क्या, बहिन भी नहीं है) और इसके कारण तुम पर आपत्ति आ सकती है, उसका पति तुम पर मुकदमा चला सकता है। वैसे भी बदनामी का खतरा है, यद्यपि मैं उसे उतना महत्व नहीं देता।'

चन्द्रनाथ ने नरेन्द्र से कह दिया था कि वह इस बात को अपने तक ही रक्खे, पर अगले ही दिन उसने पाया कि वह आशा तक पहुंच चुकी है। आशा ने उससे कहा—देखिये, जीजी ने बड़े साहस का काम किया है और मुझे उनसे पूर्ण सहानुभूति है। इस अवसर पर आप किसी तरह भी उनकी सहायता से मुँह नहीं मोड़ सकते।.......यदि आपको डर हो तो उन्हें मैं अपने साथ ले जा सकती हूं।

चन्द्रनाथ—आप निश्चिंत रहें, मैं उतना डरनेवाला प्राणी नहीं हूं। हर हालत में हमें न्याय और सत्य को प्रश्रय देना ही चाहिये। यों वह शायद बहुत दिनों मेरे साथ नहीं रहेंगी क्योंकि वह एम. ए. कक्षा में दाखिल होना चाहती हैं, और तब शायद हॉस्टल में रहना पसन्द करेंगी।

आशा—यह ज़रूरी नहीं कि वे हॉस्टल में रहें, वे तब भी हम लोगों के साथ रह सकती हैं न.......और वे मुझे इतना अपना समझ सकें तो इलाहाबाद चल कर नाम लिखा लें।

चन्द्रनाथ—आप यह भूल जाती हैं कि समाज और कानून की दृष्टि से इलाहाबाद का घर आपका नहीं है।

आशा—आपने पहले भी एक बार यह बात कही थी, लेकिन मैं अपने पिताजी के स्वभाव को जानती हूं, वे हर्गिज़ मेरी बात नहीं टालेंगे।

चन्द्रनाथ—यह बात उतनी साधारण नहीं है जितनी आप

समझती हैं। एक अपरिचित लड़की का अभिभावक बन जाना बड़ी जिम्मेदारी का काम है।

आशा—शायद आपकी बात में सत्य का अंश है.......लेकिन इससे मानी यही होते हैं कि एक स्त्री को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी को अपने मन से शरण दे सके क्योंकि ससुराल में पति की अनुमति लेना ज़रूरी है।

चन्द्रनाथ—यह बहुत-कुछ पति-पत्नी के आपसी सम्बन्ध पर निर्भर करता है। लेकिन क्योंकि अर्जन का दायित्व पति पर होता है इसलिये.........

आशा—मैं समझ गई। इसी लिये मैं हमेशा से यह मानती रही हूँ कि रुपये के मामले में स्त्रियों को स्वावलम्बी होना चाहिए। मैं गम्भीरता से यह बात सोच रही हूं कि कहीं नौकरी करनी शुरू कर दूँ।....जीजी को भी यही सलाह दूँगी।

चन्द्रनाथ—लेकिन पहले उन्हें एम०ए० कर लेने दीजिये।

आशा—यह राय ठीक है।....उनके पति के बारे में आपका क्या खयाल है?

चन्द्रनाथ—मैं समझता हूँ उन्होंने ज़्यादती की है।

आशा—आप इसे ज़्यादती कहते हैं; मैं कहती हूँ कि वे बड़े नीच आदमी हैं। मुझे तो यही आश्चर्य है कि जीजी कैसे इतने दिनों उनके साथ रह सकीं। यदि मैं उनकी जगह होती तो शायद तीन बरस क्या तीन महीने भी नहीं निभा सकती।

देखा गया कि सावित्री को भी साधना में काफी अभिरुचि है। काशी आने के तीसरे ही दिन सांझ को उसने चन्द्रनाथ से कहा—सुना है आपकी सगी बहिन नहीं हैं; फिर क्या रिश्ता है आपका?

चन्द्रनाथ—कहां सुना है आपने कि सगी बहिन नहीं हैं?

'भई, मैं आज जरा माधुरी के घर गई थी। शिवसरन ने उन्हें खबर दी होगी।'

'वह मेरे लिये सगी बहिन से भी ज्यादा है।'

'लेकिन दुनिया तो इसे मानने को तैयार न होगी...आखिर वे आपकी कौन हैं ?'

चन्द्रनाथ की समझ में न आया कि वह क्या उत्तर दे।

'पराई लड़की को इस तरह रखने में बदनामी का डर है''''अभी शादी नहीं हुई है क्या।'

'शादी हो चुकी है' चन्द्रनाथ के मुंह से निकला। फिर वह दूसरे प्रश्नों की आशंका से उठकर खड़ा हो गया।

'अच्छा'''तो फिर वह अकेली क्यों आई है ? कोई बुलाने तो गया नहीं था।'

चन्द्रनाथ ने कल्पना की कि शिवसरन के माध्यम से साधना-सम्बन्धी अनेक बातें इधर-उधर फैल गई हैं। शिवसरन को समझाना और कुछ डाँटना भी पड़ेगा। लेकिन सावित्री, जो खुद पति के अन्याय का शिकार है, एक दूसरी नारी के प्रति ऐसी असहिष्णु हो, यह उसे विचित्र जान पड़ा।

घर पर जब वह पहुँचा तो साधना उसके पास आई। बोली—भैया, मुझे तुमसे कुछ कहना है।

'कहो, क्या बात है ?'

'मेरा यहां रखना तुम्हारे लिये ठीक नहीं है; मुझे कल ही विश्वविद्यालय में दाखिल करा दो।'

'क्यों, क्या तुमने कोई ऐसी बात सुनी है ?'

'नहीं, लेकिन मैं कुछ कल्पना तो कर सकती हूँ न।'''यह नौकर ही तरह-तरह के प्रश्न करता है।'

'देखो बहिन, विश्वविद्यालय में तो तुम जाओगी ही, लेकिन मैं यह नहीं महसूस करना चाहता कि तुम्हारे यहां ठहरने में मुझे किसी का भय है''''हाँ, यदि तुम अनुभव करती हो कि इससे तुम्हें असुविधा होगी तो दूसरी बात है।'

'मैं अपने लिये चिन्ता नहीं करती भैया, मेरी बुराई-भलाई से अब क्या होना है। लेकिन तुम तो समाज के एक सम्मानित सदस्य हो और एक जिम्मेदारी के पद पर काम कर रहे हो। मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण तुम पर कोई आपत्ति आये।'

'यदि हम सब समाज से इतना डरते रहे तो उसकी भूलों का सुधार कौन करेगा?'

'सुधार करने को एक तुम्हीं रह गये हो। आखिर तो मुझे यहां से हटना ही है, फिर देर से फ़ायदा?'

'क्या यह ज़रूरी है कि तुम यहां से चली ही जाओ? यहां रहकर भी तो विश्व-विद्यालय में पढ सकती हो। उस दशा में मैं तुम्हारे अध्ययन में कुछ मदद भी कर सकता हूँ।'

'तुम्हारे पास मैं एक शर्त पर रह सकती हूं?'

'किस शर्त पर?'

'यह कि तुम विवाह कर लो।'

'विवाह! इसका मतलब?'

'मतलब यह कि भाभी के रहने पर मेरा यहां ठहरना अनुचित नहीं समझा जायगा'

'और भाई के पास ठहरना अनुचित है?'

'इसका निर्णय तुम या मैं ही नहीं कर सकते, भैया।...आखिर तुम विवाह क्यों नहीं करते, क्या जन्म भर ऐसे ही रहोगे?'

'ऐसे रहने में हर्ज ही क्या है···फिर विवाह कोई ऐसी चीज नहीं जो इच्छा करते ही सम्पन्न हो जाय। उसके लिये किसी दूसरे की सहमति भी अपेक्षित है।'

'उसकी फिक्र मैं कर लूंगी; तुम केवल वचन दे दो।'

'किस बात का वचन दे दूं?' कुछ रुककर—और तुम? तुमने अपने बारे में क्या सोचा है!

'मैंने यही सोचा है कि पढूंगी।'

'और उसके बाद ?'

'उसके बाद जो मन में आयेगा करूंगी; देश की सेवा, कला की साधना ।'

'हूं, ये चीज़ें मेरे लिये पर्याप्त नहीं हैं क्या ?'

'हो सकती हैं; लेकिन यदि मुझे पास रखना चाहते तो हो विवाह करना पड़ेगा, समझे ?'

'बड़ी भारी शर्त है, बहिन।'

'कुछ भी बड़ी शर्त नहीं है; लड़की ढूंढने का काम मैं अपने जिम्मे लेती हूं; बोलो, हो तैयार ?'

'मैं अपनी स्थिति इस लायक नहीं समझता कि विवाह करूं।'

'यह सब बहाना है, तुम मुझे अपने पास रखना ही नहीं चाहते।'

तीन-चार दिन के भीतर ही साधना चन्द्रनाथ के काफ़ी निकट आ गई है और उससे प्रगल्भता-पूर्वक बातें करने लगी है। उसकी बातों में चन्द्रनाथ को विचित्र तृप्ति मिलती है और लगता है कि उसका अकेलापन दूर हो रहा है। साथ ही यह सोचकर कि साधना बहुत दिनों साथ नहीं रह सकेगी वह इस तृप्ति की भावना से तटस्थ रहने की चेष्टा भी करता है। फलतः वह साधना के प्रति खुल कर प्रतिक्रिया नहीं कर पाता, उससे खिचा-खिचा-सा रहने का प्रयत्न करता है। इस खिचे रहने का एक कारण साधना की यह अनवरत मांग भी है कि उसे शीघ्रातिशीघ्र विश्व-विद्यालय में प्रविष्ट करा दिया जाय।

३७

दूसरे दिन सांझ को लगभग पाँच बजे चन्द्रनाथ के पास अप्रत्याशित रूप में योगेन्द्र ने पदार्पण किया। चन्द्रनाथ सहज प्रसन्नता से खिल उठा।

साधना उस समय किसी काम से सामने रसोईघर में पहुँची

हुई थी। कुर्सी पर बैठते हुए योगेन्द्र की दृष्टि एक बार उधर गई।

चन्द्रनाथ ने प्रश्न की अपेक्षा न करके कहा—आपको मालूम है आजकल मेरी एक बहिन, बल्कि एकमात्र बहिन, यहाँ आई हुई है। बड़ी असाधारण लड़की है।

योगेन्द्र—कल नरेन्द्र ने ज़िक्र किया था। आपकी बहिन सचमुच असाधारण हैं। जहाँ तक मैंने देखा-सुना है अब तक किसी हिन्दू महिला ने ऐसा क्रान्तिकारी कदम उठाने का साहस नहीं किया है, मेरा मतलब है किसी उच्च वर्ग की महिला ने।

'वह कहती हैं उन्होंने ऐसा आवेश में नहीं किया, काफ़ी सोच-समझकर किया है।'

'आवेश में ऐसा किया होता तो मैं उसे पागलपन कहता।'

'इस युग का पुरुष कितना नीच हो सकता है इसका प्रमाण बहिन की जीवन-गाथा है।'

योगेन्द्र ने कुछ रुककर कहा—आप खास तौर से इस युग का नाम क्यों लेते हैं, यह तो युग-युग से होता आया है और तब तक खत्म न होगा जब तक हम नये वैज्ञानिक समाज का निर्माण न करें।

चन्द्रनाथ—जब तक मनुष्य अपनी पशु-प्रवृत्तियों और लोभ का दमन करना नहीं सीखता तब तक संसार की कोई भी समाज-व्यवस्था उसका कल्याण नहीं कर सकती।

योगेन्द्र—मेरा मत और है, मैं मानता हूँ कि पशु-प्रवृत्तियाँ मानव-प्रकृति का आवश्यक अंग हैं और प्रत्येक समाज में उन्हें सन्तुष्ट करने की व्यवस्था रहनी चाहिये।

चन्द्रनाथ—(स्तब्ध होकर)—मैं आपका मतलब नहीं समझा।

योगेन्द्र—मेरा मतलब साफ़ है, मानव-प्रकृति जैसी है उसे वैसा ही ग्रहण या स्वीकार करना होगा। उसके लिये मनुष्यों को दोषी ठहराने से कोई लाभ नहीं।

चन्द्रनाथ—इसका अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि संसार में कोई कहीं दोषी नहीं हैं।

योगेन्द्र—इसका यह अर्थ ज़रूर है कि समाज के पिच्चानवे फ़ीसदी अपराधों के लिये परिस्थितियाँ ज़िम्मेदार होती हैं।

चन्द्रनाथ—मैं कुछ और स्पष्टीकरण चाहूँगा। क्या, आपके अनुसार, वहिन के पतिदेव का कोई अपराध नहीं मानना चाहिये, और आप लोग जो पूँजीपतियों को दोष देते हैं वह भी ठीक नहीं ?

योगेन्द्र—शायद आपने बाइबिल की यह उक्ति सुनी है कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।

चन्द्रनाथ—इस उक्ति का मौजूदा प्रश्न से क्या सम्बन्ध है ?

योगेन्द्र—मैं समझता हूँ इस उक्ति के मूल में यही सचाई है कि अपराधियों से घृणा या उनकी निन्दा करने के बदले उन परिस्थितियों को हटाने की कोशिश करनी चाहिए जिनमें अपराध जन्म लेता है। कोरी निन्दा या उपदेश से कोई लाभ नहीं होता, यही कारण है कि अनेक बुद्ध और ईसाओं के बावजूद मानव-समाज में आज भी उतना ही हिंसा और अत्याचार होता है जितना कि पहले होता था।···हमें ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करनी पड़ेंगी कि अन्याय और अत्याचार सम्भव न हो सकें।

चन्द्रनाथ—भला ऐसी आदर्श परिस्थितियाँ कैसे उत्पन्न की जा सकती हैं ?

योगेन्द्र ने इतनी देर में मेज़ पर से एक पुस्तक उठा ली थी और उसके पन्ने उलटने लगा था। कुछ क्षण यों ही बिताकर बोला—आपके इस प्रश्न का उत्तर कठिन नहीं है यदि हम यह ठीक से समझ लें कि किन परिस्थितियों में मनुष्य पाप या अन्याय करता है···और शायद इससे भी पहले हमें यह समझना होगा कि पाप या अन्याय हैं क्या चीज़।

चन्द्रनाथ—मैं कह सकता हूँ कि आपने समस्या को बड़े सुलझे रूप में सामने रक्खा है।

योगेन्द्र—आपने व्यासजी के बारे में एक उक्ति सुनी है? अठारह पुराणों में उन्होंने दो ही बातें कहीं हैं, यह कि पुण्य का अर्थ है दूसरे की भलाई करना और पाप का, दूसरे को पीड़ा पहुँचाना।

चन्द्रनाथ—सचमुच; बड़ी अर्थभरी उक्ति या उक्तियाँ हैं।

योगेन्द्र—मैंने इन वचनों पर बहुत विचार किया है और जितना ही विचार किया है उतना ही क्रान्तदर्शी व्यास की प्रतिभा से चकित हुआ हूँ। वास्तव में हम इन मनीषियों की वाणी को उचित ध्यान देकर नहीं पढ़ते, उसे अपने चिन्तन और अनुभव की उष्णता से जीवंत बनाकर नहीं देखते, इसीलिये वह अक्सर हमें तुच्छ या साधारण जान पड़ती हैं। जब साधारण व्यक्ति महापुरुष के पास पहुंचता है तो उसे वहाँ भी अपनी क्षुद्रता प्रतिफलित होती दीखने लगती है……

चन्द्रनाथ खामोश था। योगेन्द्र ने कुछ रुककर कहा—'व्यास की परिभाषा के अनुसार पाप और अन्याय का अर्थ है किसी कमज़ोर को दबाना, किसी दुर्बल को पीड़ा पहुँचाना। जब तक समाज में कमज़ोरों, दुर्बलों और शोषितों की सत्ता है तब तक पाप और अन्याय को खत्म नहीं किया जा सकता। एक व्यक्ति या वर्ग की कमज़ोरी मानो दूसरे को अत्याचार का निमंत्रण देती है।

'हमारे लोभ और अत्याचार का अर्थ है कि उनके शिकार बनने लायक कुछ प्राणी समाज में हैं।……आपकी बहिन के पति तो विशेष अत्याचार नहीं कर सके क्योंकि आपकी बहिन ने उसे सहन करने से इन्कार कर दिया लेकिन हिन्दू समाज के पति अपनी पत्नियों पर अत्याचार करना तब तक बन्द नहीं करेंगे जब तक यहाँ की स्त्रियों की दशा सुधर न जाय, जब तक वे स्वावलम्बी बनना न सीख लें।'

योगेन्द्र के व्यक्तित्व के आकर्षण का रहस्य उसकी गम्भीर मधुर

वाणी है यह चन्द्रनाथ ने ज्ञात भाव से आज पहली बार अनुभव किया। उसका स्वर विशेष स्पष्ट भी है, उसके मुख से प्रत्येक वर्ण पूर्ण और परिष्कृत निकलता है। साथ ही योगेन्द्र के कहने की भंगी, उसके मुख पर चमकनेवाली आन्तरिक सचाई की कोमल आभा भी, श्रोता को बरबस आकृष्ट करती है। और उसके अपनी बात कहने का ढंग भी कितना विशद और व्यवस्थित है—कानों में पहुंचने के साथ ही वह बात मन में घर कर लेती है।

चन्द्रनाथ जिस कुर्सी पर बैठा था वह दरवाज़े के पास ही पड़ी थी। अकस्मात् उसकी दृष्टि बाहर की ओर गई। देखा कि शिवसरन थाली में चाय का सामान सजा कर ला रहा है। साथ ही उसने एक दूसरा दृश्य भी देखा—कि साधना दोनों कमरों के बीच में दीवार से सटी खड़ी है। सहसा चन्द्रनाथ को ध्यान हुआ कि योगेन्द्र के आने पर उसने इस लड़की को नहीं बुला लिया। उसी को लेकर बातचीत चल रही थी और वही वहाँ अनुपस्थित थी। और नहीं तो उसके अकेलेपन का ध्यान करके ही उसे वहां बुला लेना चाहिये था।

शिवसरन के ऊपर की छत पर पहुंचते-पहुंचते चन्द्रनाथ उठ कर साधना के पास पहुँच गया और बोला—चलो बहिन चाय पी लो, और जरा बिस्कुट का डिब्बा भी ले लो।

साधना अपने कमरे में से बिस्कुट का पैकेट ले आई और फिर धीरे-धीरे, नीची दृष्टि किये चन्द्रनाथ के पीछे-पीछे उसके कमरे में आ गई। चन्द्रनाथ ने उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत किया, फिर योगेन्द्र का परिचय देते हुए कहा—यह मेरे नये मित्र हैं, योगेन्द्र बाबू; इतिहास और अर्थशास्त्र के एम. ए. हैं, बड़े सहृदय और सुलझे हुए विचारों के देशभक्त हैं।

साधना नीची दृष्टि किये बैठी थी। चन्द्रनाथ की बात समाप्त होने पर उसने पलक उठा कर योगेन्द्र को प्रणाम किया। उत्तर में योगेन्द्र ने भी प्रणाम किया।

चाय मेज़ पर रखी जा चुकी थी। चन्द्रनाथ उसे तैयार करने लगा। योगेन्द्र ने मेज़ पर झुकते हुए कहा—'मुझे आपकी सहायता करनी चाहिए, मिस्टर चन्द्रनाथ' और फिर दूध तथा चीनी डालकर एक प्याला साधना की ओर बढ़ा दिया।

चन्द्रनाथ ने अपने प्याले को मुंह लगाते हुए साधना से कहा—चाय पी लो, बहिन, फिर हम लोग योगेन्द्र बाबू के कुछ मौलिक और मनोरंजक विचार सुनेंगे।

योगेन्द्र ने गम्भीरता से कहा—माफ़ कीजिये, मुझे न मौलिक होने का दावा है, न मनोरंजक होने का। मैं तो सिर्फ आपकी बहिन को उनके साहस के लिये बधाई देने आया था, और यह कहने कि वे अपने मन में किसी तरह की आशंका या परेशानी का भाव न रक्खें, और न अपने को अकेली या निःसहाय ही समझें।

चन्द्रनाथ का अनुमान था कि बरेली में क्लब के वातावरण में साधना उन्मुक्त बन गई होगी, किन्तु उसने देखा कि योगेन्द्र की उपस्थिति में वह काफ़ी संकोच का अनुभव कर रही है। योगेन्द्र के सहज सहानुभूति-प्रदर्शन के उत्तर में उसने कठिनाई से कहा—आपके इस आश्वासन के लिये मैं कृतज्ञ हूँ।

इस दृष्टि से अपना और साधना का स्वभाव-साम्य उसे प्रिय लगा।

योगेन्द्र का चेहरा पहले की भांति निर्विकार था। चन्द्रनाथ ने कहा—योगेन्द्र बाबू जैसे सहृदय हैं वैसे ही कर्मठ भी हैं, बहिन, इसलिये इनके आश्वासन का विशेष महत्व है। मैं सचमुच कोई कारण नहीं देखता कि तुम्हें किसी तरह का उद्वेग या भय हो। तुमने कोई ऐसा काम नहीं किया है जिसके कारण किसी के सामने तुम्हें तनिक भी लज्जा हो।

'क्षमा कीजिये, मैं आप लोगों की कुछ बातें बाहर खड़े होकर सुन चुकी हूँ', साधना ने किंचित् विस्मय का वातावरण उत्पन्न करते हुए कहा।

योगेन्द्र—मैं आशा करता हूं कि उससे आपको किसी तरह की ग़लतफ़हमी नहीं हुई है।

साधना—आपका यह विचार है कि मेरे पति निर्दोष हैं, और सारा दोष परिस्थितियों का है : उन्होंने स्वभावतः उन परिस्थितियों से लाभ उठाया है।

योगेन्द्र—बात असल में इतनी ही नहीं थी—आप मुझे ग़लत नहीं समझेंगी। मैंने शुरू में कहा था कि अपनी शक्ति का परिचय देकर आपने उन्हें अपने पर अत्याचार करने के अयोग्य बना दिया। यदि समाज की सब स्त्रियाँ इसी प्रकार अपनी शक्ति और स्वतन्त्रता का परिचय दे सकें तो पुरुष कभी उन पर अत्याचार न कर सकें।

साधना—शायद आपने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि भारतीय स्त्रियों की स्थिति कितनी नाज़ुक और दयनीय है। वे बेचारी कहां से शक्ति और स्वतन्त्रता का परिचय देंगी।

योगेन्द्र—मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूँ। मेरा मतलब यही था कि यदि हम स्त्रियों को सचमुच अन्याय और अत्याचार से बचाना चाहते हैं तो हमें उनकी स्थिति में परिवर्तन करना होगा, सिर्फ़ पुरुषों को बुरा-भला कहने से कोई लाभ न होगा।

साधना—बुरा-भला कहना तो एक निगेटिव (निषेध-मूलक) काम है; उससे स्त्रियों का वास्तविक लाभ नहीं होता।

योगेन्द्र—ठीक यही बात मैं कहना चाहता था। न पुरुषों को बुरा-भला कहने से विशेष लाभ होगा और न उन्हें लम्बा-चौड़ा उपदेश सुनाने से। वास्तव में कोरे उपदेश से लोगों के आचार-विचार पर बहुत कम असर पड़ता है। यदि ऐसा न होता तो बुद्ध और ईसा ने सदियों पहले पृथ्वी को स्वर्ग बना दिया होता।

चन्द्रनाथ—कुछ असर पड़ता है, इससे तो शायद आप इन्कार न करें।

योगेन्द्र—मेरा अनुमान है कि यह असर ग़रीबों और दलितों पर

ही ज़्यादा पड़ता है, क्योंकि वे बेचारे पहले से ही किसी को सताने की स्थिति में नहीं होते।

चन्द्रनाथ—क्या आप कहना चाहते हैं कि बुद्ध और ईसा ने मानव-जाति की कोई वास्तविक नैतिक सेवा या उपकार नहीं किया ?

योगेन्द्र—हर्गिज नहीं; ऐसा कहना घोर कृतघ्नता होगी। उनका सबसे बड़ा उपकार यह हुआ कि उन्होंने नैतिक बटखरों का प्रयोग करके गरीबों और दलितों में आत्म-सम्मान की भावना पैदा की। इतिहास में यदि यह भावना नहीं रही होती तो शायद आज प्रजातन्त्र और समाजवाद की पुकार कोई सुनता भी नहीं।

चन्द्रनाथ—आपने इतिहास को बड़ी निराली दृष्टि से पढ़ा है, यह बात मेरे दिमाग़ में कभी आई ही न थी। (साधना से) क्यों, तुमने कभी इस तरह सोचा था ?

साधना—मैंने इतिहास पढ़ा ही कितना है। लेकिन क्या बुद्ध और ईसा की शिक्षा से अमीरों को कुछ भी लाभ नहीं हुआ ? क्या ये शिक्षक सम्पूर्ण मानव-जाति के शिक्षक न थे ?

योगेन्द्र—अमीरों का लाभ, अगर इसे आप लाभ कहें तो, यही हुआ कि वे भी कुछ इन शिक्षकों के व्यक्तित्व से और कुछ दलित वर्गों के परिवर्तित मनोभाव से प्रभावित होकर अपने आचार-विचारों को नैतिक मानों से तोलने लगे। लेकिन क्योंकि परिस्थितियां उन्हें मजबूर नहीं कर सकती थीं, इसलिये न तो उन्होंने ग़रीबी को ही अपनाया (जैसी कि ईसा की शिक्षा थी) और न ग़रीबों का शोषण ही बन्द किया।

थोड़ी देर को खामोशी छा गई। चन्द्रनाथ सोचने की मुद्रा में था और साधना भी उधर ही देख रही थी। कुछ क्षण बाद उसने फिर योगेन्द्र के पार्श्व में दृष्टि डालकर कहा—मेरी इतनी योग्यता नहीं कि आपकी दी हुई धर्म की व्याख्या की परीक्षा करूँ, लेकिन एक प्रश्न करना चाहती हूँ।

योगेन्द्र—कीजिये, मैं भरसक समाधान की कोशिश करूँगा।

साधना—वह व्यक्ति जो किसी को जीवनव्यापी प्रेम का आश्वासन देता है यदि बाद में उसे निराश करे तो आपके सूत्र के हिसाब से दोषी हुआ या नहीं?

योगेन्द्र—मैं समझता हूँ इस तरह का आश्वासन देना ही ग़लत चीज़ है।

साधना—(साश्चर्य)—गलत चीज़ है!

योगेन्द्र—क्योंकि व्यक्तित्व बदलता और विकसित होता है और उसके साथ मनोवृत्तियाँ भी बदल सकती हैं।

चन्द्रनाथ—तो फिर हम स्थायी प्रेम की कामना क्यों करते हैं? क्यों मानव-स्वभाव उसकी माँग करता है।

योगेन्द्र—यह एक दूसरा सवाल है। लेकिन सब जगह के मनुष्य एक-सी माँगें भी नहीं करते। हमारे ही देश में निम्न वर्गों की स्त्रियाँ आसानी से एक पति को छोड़कर दूसरा कर लेती हैं, जबकि दूसरी स्त्रियाँ इसे बहुत कठिन पाती हैं। पश्चिम के कुछ देशों में यह आम बात है और बर्मा की स्त्रियों के बारे में सुना है कि वे जब तक एक पति के साथ रहती हैं उसे खूब प्यार करती हैं, किसी कारण वश दूसरा पति कर लेने पर उसके साथ तीव्र प्रेम का सम्बन्ध रखने लगती हैं।

साधना—लेकिन क्या यह वांछनीय है? इस प्रकार के प्रेम से लाभ ही क्या है?

योगेन्द्र—लाभ-हानि का सवाल तो अलग है; जहां तक वांछनीयता का प्रश्न है, मैं समझता हूँ हम व्यास जी के पैमाने का प्रयोग कर सकते हैं।

चन्द्रनाथ—अर्थात् हम देखें कि इस प्रथा से समाज को सुख अधिक होगा या दुःख।

योगेन्द्र—इस बात का निर्णय वास्तविक जीवन को देखकर ही

किया जा सकता है। क्या, इस दृष्टि से, हमारे निम्न वर्ग की स्त्रियां अधिक सुखी नहीं हैं ?

चन्द्रनाथ—शायद उनका प्रेम और दाम्पत्य सम्बन्ध निम्न कोटि का होता है ; उन्हें सुख और दुःख दोनों की अनुभूति कम होती है।

साधना—मैं भी यही अनुभव करती हूँ।

योगेन्द्र—माफ कीजिये, जहाँ तक दाम्पत्य सुख का सम्बन्ध वायोलाजिकल ड्राइव्ज़ (जीव-प्रकृति की प्रेरक मांगों) से है वहाँ तक उनका आनन्द कम नहीं होता। और मैं समझता हूं दाम्पत्य जीवन का मेरुदंड यही ड्राइव्ज़ हैं ; परस्पर का आकर्षण, बच्चों का मोह, इत्यादि।

चन्द्रनाथ—पति-पत्नी में मैत्री का सम्बन्ध भी होता है, योगेन्द्र बाबू ...। मैं तो समझता हूँ यह सम्बन्ध ही मानव-प्रेम को आसक्ति या विशुद्ध वासना से अलग करता है। और यह मैत्री-सम्बन्ध अधिक विकसित व्यक्तित्व के स्त्री-पुरुषों में अधिक गाढ़ा होगा। वहां विच्छेद से कष्ट भी अधिक होगा।

योगेन्द्र- मैं आप से सहमत हूँ। किन्तु जिन दम्पतियों में पूर्ण मैत्री का सम्बन्ध होगा वहाँ विच्छेद की सम्भावना ही क्यों उत्पन्न होगी ?

साधना—लेकिन अगर मैत्री की मांग एक ही तरफ से हो, दूसरी ओर विशुद्ध वासना-पूर्ति की ही इच्छा हो तब ?

योगेन्द्र—उस हालत में मैत्री चाहने वाले साथी को, यदि वह सचमुच मित्रता और व्यक्तित्व के दूसरे गुणों को महत्व देता है, अन्यत्र मित्र खोजने की कोशिश करनी चाहिये।

साधना—यदि वह साथी स्त्री हो तो ?

योगेन्द्र—तो उसे भी दूसरी जगह मित्रता स्थापित करने का अधिकार है। आप कहेंगे उससे पति की ईर्ष्या-वृत्ति जाग्रत होने का भय है। इस ईर्ष्या-तत्व की उपस्थिति के कारण मुझे कभी-कभी

लगता है कि विवाह नाम की संस्था स्त्री-पुरुष के मानसिक स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। लेकिन......

साधना—आप ऐसा सोचते हैं ?

योगेन्द्र—क्यों, क्या मेरा विचार एकदम अनर्गल है ?

साधना—नहीं, मैं वह नहीं सोच रही थी। मैं सोच रही थी कि यदि हमारे शासन तथा दूसरी संस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सकते हैं तो विवाह संस्था में क्यों नहीं।

योगेन्द्र—वही तो। और परिवर्तन हुए भी हैं। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं, द्रौपदी के पाँच पति। और न जाने कितनी तरह की प्रथायें इतिहास की विभिन्न जातियों में प्रचलित रही हैं।

साधना चुप रही।

योगेन्द्र—आपने मित्रता का प्रश्न उठाया था। अधिकांश स्त्री-पुरुषों को शरीर और घर की ज़रूरतों के बाहर मित्रता की भूख कम होती है। निचले वर्गों में इन्हीं के कारण सम्बन्ध टूटते-बनते हैं। मैं समझता हूँ समाजवादी व्यवस्था में इस तरह के विच्छेदों की सम्भावना नहीं रहेगी, क्योंकि उसमें किसी पर अचानक आर्थिक संकट आने का भय न होगा। लेकिन ज्यादा विकसित व्यक्तित्वों के सुख और सामंजस्य का ध्यान करते हुए तलाक़ का कानून ज़रूरी जान पड़ता है। विवाह के बाद यदि कोई स्त्री या पुरुष मनोनुकूल मित्र पा जाय तो उसे पहले साथी से सम्बन्ध-विच्छेद करके दूसरे से स्थापित करने का मौका मिलना चाहिये।

चन्द्रनाथ—योरप में तलाक का कानून है, लेकिन क्या उसका हमेशा सदुपयोग ही होता है ! लोग उच्चतर मैत्री के लिये नहीं, भोग-वृत्ति की एकरसता मिटाने के लिये एक-दूसरे से सम्बन्ध-विच्छेद करते हैं।...मेरा अनुमान है कि तलाक की प्रथा हमारे देश की स्त्रियों को ही ज्यादा कष्टप्रद होगी क्योंकि वे स्वभावतः एकनिष्ठ और पतिपरायण होती हैं। (साधना से) तुम क्या सोचती हो !

साधना—मैं परिवर्तन या नवीनता से डरनेवाली नहीं हूँ, और सोचती हूँ कि किसी-न-किसी रूप में तलाक का अधिकार स्त्री और पुरुष दोनों के लिये ज़रूरी है। साथ ही मैं महसूस करती हूँ कि तलाक की प्रथा प्रेम के स्थायित्व के लिये घातक हो सकती है, और जैसा कि तुम्हारा विचार है, स्त्रियों के लिये कष्टप्रद भी।

योगेन्द्र—जिसे आप लोग स्थायित्व कहकर पुकार रहे हैं उसे कुछ नीरस शब्दों ने "सैन्स आफ् सिक्योरिटी" (सुरक्षा की भावना) कहते हैं। मनुष्य के सुखी होने के लिये सब से ज़्यादा ज़रूरत आर्थिक "सिक्योरिटी" की है। नारी पुरुष के प्रेम-सम्बन्ध में स्थायित्व चाहती है, इसका मूल कारण यह है कि वह अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिये पुरुष पर निर्भर है। इसीलिये भारतीय नारी विधवा होने की सम्भावना से इतनी डरी रहती है। आर्थिक क्षेत्र में आत्म-निर्भर हो जाने पर शायद वह पति के अलगाव से, फिर चाहे वह किसी भी कारण हो, इतनी असहाय आकुलता का अनुभव नहीं करेगी।

साधना—सचमुच, इस देश में पुरुष पत्नी के मरने की उतनी चिन्ता नहीं करते। इसके विपरीत कभी-कभी तो नवयुवक यह चाहते पाये जाते हैं कि उनकी पत्नी मर जाय। शायद ही कोई स्त्री कभी ऐसी कामना करती होगी। नारी बुरे-से-बुरे पति की दीर्घायु की ही प्रार्थना करेगी।

कुछ क्षण को स्तब्धता छा गई, जैसे श्रोता लोग साधना के कटु वक्तव्य की सत्यता आंक रहे हों। अकस्मात् योगेन्द्र ने उठते हुए कहा—बहुत देर हो गई, अब मुझे चलने की आज्ञा दें।

चन्द्रनाथ और साधना भी उठकर खड़े हो गये। साधना ने धीरे से योगेन्द्र को लक्ष्य कर कहा—आपने जो मुझे सहानुभूतिपूर्ण आश्वासन दिया उसके लिये मैंने सचमुच बहुत कृतज्ञ महसूस किया है। लेकिन......

योगेन्द्र रुककर उसका मुख देखने लगा।

'क्या मैं आशा करूँ वह नितान्त अस्थायी सिद्ध न होगा !'

योगेन्द्र—आपके प्रश्न ने मुझे असमंजस में डाल दिया। किन्तु मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जब तक मेरा मन और बुद्धि एकदम ही न बदल जायँ तब तक मेरा आश्वासन झूठा न होगा।

चन्द्रनाथ—वही, वही ; तुम योगेन्द्र बाबू के सिद्धान्तों से उनके व्यक्तित्व का निर्णय न करो. बहिन।

३८

भोजन कर लेने के बाद चन्द्रनाथ अपने पलंग पर लेटा था, उसकी आँखें कुछ झँप रही थीं। सहसा साधना ने प्रवेश कर कोमल स्वर में पूछा – क्या सो रहे हो, भैया ?

'नहीं...आओ, बैठो।'

साधना बैठ गई। बोली—योगेन्द्र बाबू को आप कब से जानते हैं, भैया ?

'यही चार-छै महीने से, मुलाकात तो कभी-कभी ही हो जाती है ; वे अक्सर पार्टी के काम से बाहर घूमते रहते हैं।'

'कौन सी पार्टी में हैं वे ?'

'तुम्हें नहीं मालूम...वे सोशलिस्ट हैं।'

'उनके विचार तो एकदम नये हैं, एकदम मौलिक। मैं तो आज तब से बड़ी विचलित महसूस कर रही हूँ।'

'हूँ, विचारशील व्यक्ति हैं, और बड़े उदार और सहृदय ; तुम्हारे प्रति सहानुभति प्रकट कर रहे थे।'

'मेरी समझ में नहीं आया कि क्यों वे मेरे प्रति इतने सदय थे।'

'कोई कारण नहीं, यह उनका स्वभाव है। तुम्हें एक आप-बीती घटना सुनाऊँ। मेरे कालेज में एक अध्यापक हैं, हरीजी ; भक्त टाइप के व्यक्ति हैं। मुझे उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। स्वयं विश्वासी न होते हुए भी मैं उनकी विश्वास-भावना को बड़े आदर की दृष्टि से

देखता था। एक बार अपने एक व्याख्यान में उन्होंने मेरे प्रति बड़े खराब शब्दों का प्रयोग किया......

साधना—तुम्हारे प्रति ! ऐसा क्या अपराध था तुम्हारा ?

चन्द्रनाथ –कोई अपराध न था। वास्तव में वे पहले भी मेरे व्याख्यानों की आलोचना किया करते थे लेकिन उस दिन उनकी आलोचना उचित सीमा लांघ गई।...मैं दुःखी हुआ, बहुत ज़्यादा परेशान, इसलिए और भी कि मेरी कोमल श्रद्धावृत्ति को धक्का लगा था....मैं घर पर आकर एकान्त में घंटों रोया किया।

साधना—भैया, ऐसे समय में तुम्हें एकान्त बहुत खलता होगा, है न ? मुझे इसका अनुभव है।

चन्द्रनाथ—उसकी चिन्ता से लाभ ही क्या है, बहिन।....दूसरे दिन नरेन्द्र के साथ योगेन्द्र आये, जानती हो क्यों ? यह कहने कि उन्हें मेरी वह वक्तृता जिसकी हरीजी ने आलोचना की थी बहुत अच्छी लगी और....

साधना—बड़े गुणग्राहक हैं।

चन्द्रनाथ—क्योंकि वे स्वयं गुणी हैं, विचारशील हैं ; आज तुमने देखा न।

साधना—हाँ तो ?

चन्द्रनाथ –और उन्होंने कहा कि मुझे हरीजी की आलोचना से खिन्न नहीं होना चाहिये .. और यह कि मुख्यतः वे यही बात कहने मेरे पास आये थे।

साधना—यही कहने ! बड़े सेन्टीमेन्टल (भावुक) मालूम होते हैं ; वैसे तो कट्टर बुद्धिवादी हैं।

चन्द्रनाथ—वह यह तो साफ़ कहते हैं कि मैं मैटीरिएलिस्ट हूँ, मेरा दूसरी दुनिया में विश्वास नहीं है।...उस दिन के बाद मेरी उनसे मुश्किल से दो बार पाँच-पाँच मिनट को भेंट हुई है, तिस पर भी मुझे लगता है जाने वे कितने अपने हैं।

साधना—और भैया उनकी धर्म-अधर्म की व्याख्या, वह आपको कैसी लगी ?

चन्द्रनाथ—वह तो कहते हैं कि वह उनकी निराली चीज़ नहीं है बल्कि सारे हिन्दू शास्त्र का निचोड़ है।

साधना—मैं तब से उसी सम्बन्ध में सोच रही हूँ...उनकी व्याख्या के अनुसार तो मेरा भाग कर आना बिल्कुल निन्दनीय नहीं है क्योंकि मेरा इरादा कभी किसी को कष्ट पहुँचाने का नहीं रहा, जो कुछ कष्ट पहुँचा वह मुझे ही।

चन्द्रनाथ—यह कहा ही किसने कि तुम्हारा चले आना कोई बुरी बात हुई ?

साधना—समाज के बहुत से लोग ऐसा समझेंगे।

चन्द्रनाथ—बहिन, बुरा न मानना, क्या तुम्हारे पति को तुम्हारे चले आने से कुछ भी कष्ट न हुआ होगा ?

साधना—आप कष्ट की बात करते हैं, वे तो खुश हुए होंगे। वे बहुत दिनों से चाहते थे कि मुझसे उनका पिन्ड छूट जाय। अगर मुझे ज़रा भी विश्वास होता कि उनके हृदय में मेरे लिये कुछ भी जगह है तो मैं ऐसा क़दम न उठाती, भैया। हम भारतीय नारियाँ स्वभाव से ही सहनशील होती हैं।

चन्द्रनाथ खामोश रहा।

साधना—वे यह भी चाहते थे कि मैं खुद निकल भागूं ताकि उन पर यह बदनामी न आये कि उन्होंने मुझे निकाला है।

चन्द्रनाथ—क्या ये सब बातें वे तुमसे कह देते थे ?

साधना—मुझ से क्या-क्या नहीं कहते थे, जब से मेरी मा के लड़का हुआ उनका दिमाग़ ही बदल गया।

साधना की आँखें सजल होने लगी थीं। चन्द्रनाथ ने प्रसंग बदलने को कहा—योगेन्द्र बाबू को एक दिन दावत नहीं दोगी, बहिन ?

साधना - जब आप कहें, मेरे मन में तो आज ही आया था कि उन्हें भोजन करने को रोक लूं।

चन्द्रनाथ—आगामी रविवार को रक्खो।

साधना—बिल्कुल ठीक है, उस दिन मैं आ जाऊँगी।

चन्द्रनाथ—आज-कल में तुम अपने हाथ से निमंत्रण लिखकर भिजवा दो।

साधना—मैं ?

चन्द्रनाथ—हां, तुम ; मुझसे यह झंझट न होगा।

साधना—भैया, निमंत्रण तो तुम्हारे ही नाम से ठीक होगा।

चन्द्रनाथ—हुश्, दावत तो तुम्हीं दे रही हो।....(कुछ रुककर) मुझे तुम्हारे जाने का विचार अच्छा नहीं लगता बहिन, मालूम होता है जैसे हम समाज के डर से कायरता-वश ऐसा कर रहे हैं।

साधना—योगेन्द्र बाबू के अनुसार तो मेरे यहां ठहरने में कुछ भी अनुचित नहीं है क्योंकि उससे किसी को कष्ट पहुँचने की संभावना नहीं है।

'सिर्फ यही नहीं, उससे मुझे आनन्द होगा।'

'भैया, तुम विवाह कर डालो।'

'हुश्, फिर वही बात।'

'बात मतलब से न की जाती है, तब मैं स्वच्छन्द तुम्हारे पास ठहरा करूंगी।'

चन्द्रनाथ कुछ सोचने लगा। पल भर को खामोशी हो गई।

साधना—यदि हम योगेन्द्र बाबू की दी हुई धर्म की परिभाषा मान लें तो बड़े रोचक परिणाम निकलते हैं। तब जो लोग घंटों बैठ कर माला फेरते हैं और फिर धार्मिक होने का अभिमान करते हैं उन्हें धार्मिक न कहा जा सकेगा क्योंकि इससे देश या समाज का कोई लाभ नहीं होता। इसी तरह मंदिर में जाकर घंटा बजाना अथवा मस्जिद में नमाज पढ़ना भी व्यर्थ चीज़ें हो जायँगी।

'चन्द्रनाथ—ये क्रियायें दूसरे प्रकार स्वयं व्यक्ति का हित-साधन कर सकती है, उसकी वासनाओं की शुद्धि द्वारा। लेकिन तब शर्त यह रहेगी कि वे एकाग्र मन से की जायँ।

साधना—सो कोई नहीं करता भैया, बूढ़ी स्त्रियां एक ओर माला फेरती जाती हैं और दूसरी ओर बेटी या बहू को घर के काम के सम्बन्ध में उपदेश भी देती जाती हैं।

चन्द्रनाथ—हमारे देश में तो खास तौर से लीक पीटने का नाम ही धर्म हो गया है।

साधना—और लीक छोड़कर चलने का अधर्म।

चन्द्रनाथ—बिल्कुल यही, चरित्र के असली गुणों में हम इंगलैंड और अमरीका के लोगों से मीलों पीछे हैं। हमारे देशवासी तीर्थों में जाकर खूब दान-पुण्य करते हैं लेकिन वैसे उन्हें एक-दूसरे का कुछ खयाल नहीं रहता। अपने घर के कूड़े-करकट को निकाल कर आम सड़क पर इस तरह फेंक देंगे मानों वहां किसी मनुष्य को निकल कर जाना नहीं है। किसी भी पब्लिक की जगह को, चाहे वह रेल का डिब्बा हो या स्टेशन का प्लेटफ़ार्म, लोग बेतरह गन्दा कर देते हैं।

साधना—उस पर हमें यह अभिमान है कि हमारे देश के लोग बड़े धर्मप्राण हैं, बड़े आध्यात्मिक।

चन्द्रनाथ—हमारी धार्मिकता और आध्यात्मिकता रूढ़ियों के पालन मात्र में रह गई है। इस मृत बोझे के हटे बिना हमारा कल्याण नहीं।......इस देश में सचमुच ही योगेन्द्र बाबू के सूत्र के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है।

साधना—लेकिन भैया, एक बात समझ में नहीं आई; इस सूत्र के हिसाब से एकान्त चिन्तन और कला-साधना का क्या स्थान होगा?

चन्द्रनाथ—तुम्हारा प्रश्न बड़ा मार्मिक है, वह यह सिद्ध करता है कि योगेन्द्र बाबू का [illegible]ां व[illegible]जिक अथवा नैतिक भलाई-बुराई की विश्वसनीय[illegible], व्यक्तित्व के मूल्यांकन

का परिपूर्ण मानदंड नहीं है। जीवन के व्यापार सिर्फ परोपकार और पर-पीड़न में समाप्त नहीं हो जाते, उनके अतिरिक्त भी हम बहुत-कुछ करते हैं।

साधना—योगेन्द्र बाबू राजनीतिक नेता हैं, उनकी दृष्टि उपयोगिता पर ही अधिक रहती है।

चन्द्रनाथ—ऐसा नहीं, बहिन, वे सचमुच बड़े प्रतिभाशाली हैं। उपयोगिता पर दृष्टि रखना कोई छोटी बात नहीं है। वह चिन्तन किस काम का जो दुनिया के लिये उपयोगी न हो? फिर धर्म-अधर्म की जो व्याख्या उन्होंने दी उससे अच्छी व्याख्या देना आसान नहीं है। अवश्य ही कला और चिन्तन व्यक्तित्व के उत्कर्ष का साधन हैं, किन्तु वे भी लोक के लिये अहितकर होने पर ग्राह्य नहीं हो सकते। न कलाकार या विचारक को यह अधिकार ही है कि वह लोक के सुख-दुख से उदासीन रहे। रोमन सम्राट् नीरो की संगीतोपासना न सिर्फ श्लाघ्य ही नहीं है, बल्कि घृणा करने योग्य है।

साधना—नीरो के उदाहरण से तो यह सिद्ध होता है कि कला की उपासना अपने में उतनी भली चीज़ नहीं है।

चन्द्रनाथ—उससे यह ज़रूर सिद्ध होता है कि कला की अपेक्षा लोक-हित का दावा ज्यादा महत्वपूर्ण है।

साधना—कहा जाता है कि कला और साहित्य हमारे हृदय को मृदुल और संवेदना को कोमल बनाते हैं, फिर क्यों संगीत-प्रेमी होते हुये भी नीरो इतना क्रूर बना रहा?

चन्द्रनाथ—कोमलता और क्रूरता सामाजिक गुण-अवगुण हैं, इसके विपरीत संगीत एक आत्मनिष्ठ कला है, अपनी मौलिक वासनाओं के उपभोग का एक प्रकार। ऐसी कला व्यक्तित्व का नैतिक परिष्कार नहीं करती। गीत काव्य भी बहुत कुछ इसी तरह का होता है।

साधना—(मुस्करा कर)—तब तो आपको गीतकाव्य नहीं लिखना चाहिये।

चन्द्रनाथ—गीत हम अपने आनन्द के लिये लिखते हैं; और यह कोई पाप नहीं है।

कुछ रुककर कहा—यों गीत पाठकों को भी आनन्द देते ही हैं, पर यह आनन्द कवि का लक्ष्य नहीं होता। विशुद्ध गीत काव्य उपभोग का उपकरण है, वह त्याग करना नहीं सिखा सकता जो नैतिक श्रेष्ठता का प्राण है।

साधना का ध्यान अन्यत्र चला गया था। सहसा उसके कंठ से निकला—भैया ....

चन्द्रनाथ—कहो क्या कह रही थीं, मुझसे कोई छिपाने की ज़रूरत थोड़े ही है।

साधना—दूसरों के हित की उपेक्षा न करते हुए अपने आनन्द का साधन, तुम्हारे अनुसार, पाप नहीं है। फिर क्यों लोग अभी तक विधवाओं के विवाह को नीची नजर से देखते हैं?

चन्द्रनाथ—समाज की चाल प्रायः अन्धी होती है।...वैसे तो आज कोई भी विचारशील व्यक्ति विधवा-विवाह के विरुद्ध नहीं है।

चन्द्रनाथ को लगा कि साधना कुछ कहते-कहते रुक गई है। उसे किंचित् आभास भी हुआ कि उसके मन में क्या है। यदि साधना अपना दूसरा विवाह कर ले तो संसार में किसी को कोई कष्ट पहुँचने की सम्भावना नहीं है। इसके विपरीत उसकी वर्तमान स्थिति उसके प्रत्येक शुभचिन्तक को कष्ट देगी—उसकी मा को, उसके पिता को, स्वयं उसे......अथवा साधना कुछ और कहना चाहती थी?.... ...उसका विवाह हो जाने से समाज की हृदय-हीन रूढ़ियों के अतिरिक्त किसी की भी क्षति होने की संभावना नहीं है।

दूसरे दिन वह साधना को विश्व-विद्यालय ले गया। साधना ने तय किया था कि वह एम. ए. में इतिहास पढ़ेगी।

भर्ती के फार्म में अभिभावक की खाना-पूरी करते हुए साधना ने लिखा—अध्यापक चन्द्रनाथ, उसके भाई। उसे पढ़कर चन्द्रनाथ का

हृदय मिश्रित कृतज्ञता, दायित्व और आनन्द की भावना से भर गया। उसके चित्त के एक कोने से प्रच्छन्न संदेह का अन्धकार भी हटा हुआ प्रतीत होने लगा।

३१

अगले रविवार को साढ़े-सात बजे ही साधना चन्द्रनाथ के घर उपस्थित हो गई। पूछा—किस-किसको निमंत्रण दिया गया है? और कब तक भोजन तैयार हो जाना चाहिये?

चन्द्रनाथ—जिस-जिस के नाम तुम लिखकर रख गई थीं। योगेन्द्र बाबू और नरेन्द्र का परिवार, इतने ही लोग तो आयेंगे। उनमें कोई ऐसा नहीं जो शिकायत करे, तुम जब चाहो खाना दे सकती हो।

साधना—इतनी आज़ादी, चाहे शाम हो जाय!

चन्द्रनाथ—तो शाम तक लोगों को रुकना पड़ेगा। तुम्हारे हाथ का भोजन पाना मामूली बात है।

साधना—नहीं जी, मैं धुरन्धर पाकशास्त्रिणी जो हूँ। अच्छा भैया, कच्चा खाना रहेगा, या पक्का?

चन्द्रनाथ - मैंने सुना है कि कच्चा भोजन पेट में दर्द कर देता है।

'हटो भी, आज तुम हंसी करने के मूड में हो।...बड़ी मुश्किल है, ज़िम्मेदारी सब मेरे सिर पर है।.......शिवसरन, ओ शिवसरन!'

'जी सरकार, अभी आया।'

वह केतली में उबला पानी लौटकर उसमें चाय छोड़ रहा था।

साधना—सुनो, चाय ऐसी ही छोड़ दो। पहले नरेन्द्र बाबू की बहिन को बुला लाओ, समझे? (धीरे) मुझसे अकेले काम नहींसंभलेगा।

पहले पाँच-सात ही दिन में साधना की चित्तवृत्ति में काफ़ी

परिवर्तन हो गया है। उसके मुख पर उल्लास और व्यवहार में सहज स्फूर्ति दीखने लगी है। चन्द्रनाथ इससे प्रसन्न है।

आशालता को वहां पहुँचने में लगभग आधा घन्टा लग गया। तब तक साधना ने, चन्द्रनाथ की मदद से, चाय का सामान कमरे में इकट्ठा कर लिया।

आशा के आने पर चन्द्रनाथ ने कहा—आपने सोचा होगा कि आज मुफ्त की दावत है, लेकिन इस घर में मेहमानों को भी बिना काम किये भोजन नहीं मिलता।...साधना तो आज बहुत ही घबराई हुई हैं।

आशा—क्यों जीजी, क्या यह सच है?

साधना—भई, असली बात यह है कि मुझे बेगार करना पसन्द नहीं है। भला मुझे इस घर में स्वयं मेहमान बन कर आना चाहिये, या दूसरों की मेहमानदारी करने?

आशा—(मुस्करा कर)--ठीक तो कहती हैं!

चन्द्रनाथ—यदि ऐसा ही बेगार से बचना था तो लोगों को निमंत्रण दिलाने की क्या ज़रूरत थी।

साधना—वाह! मैं क्यों किसी को निमंत्रण दिलाती।

चाय पीने के कुछ ही मिनट बाद साधना और आशा रसोईघर में पहुँच गईं और वहां, चन्द्रनाथ की ओर पीठ किये, न जाने क्या-क्या सलाह-मंत्रणा करती रहीं।

कुछ देर बाद शिवसरन को दूध, चीनी, बेसन, दही आदि आवश्यक चीज़ें खरीदने भेजा गया। साधना ने आकर चन्द्रनाथ से पूछा—भैया, तुम्हें कद्दू की खीर पसन्द है कि नहीं?

चन्द्रनाथ—तुम तो इस तरह पूछ रही हो जैसे मैं ही मेहमान हूँ।

साधना—'मैं नहीं वे पूछ रही हैं।' और उसने आशा की ओर संकेत किया। 'अब तुम लोग तय कर लो कि तुम में से कौन मेहमान है और कौन मेज़बान।'

चन्द्रनाथ—उनसे कहो कि कोई चीज़ नरेन्द्र के मन की ज़रूर बनायें। रही मेरी बात सो मुझे सचमुच नहीं मालूम कि मुझे क्या चीज़ ज़्यादा पसन्द है।

साधना हंस पड़ी। ज़ोर से आशा को पुकार कर बोली—सुन रही हो, कह रहे हैं मुझे सचमुच नहीं मालूम कि मुझे क्या चीज़ पसन्द है।

आशा सुनकर मुस्कराने लगी। बोली—यह तो बहिन को मालूम होना चाहिये कि भैया को क्या पसन्द है।

साधना—देखो न, आखिर बात मेरे सिर पर पड़ी; भला बता दो तो कोई हर्ज है।

चन्द्रनाथ तुम मेरे लिये परेशान क्यों हो, जो तुम्हें पसन्द हो वह बना लो, वही मुझे भी पसन्द होगा।

साधना—यह बात है, मुझे पहले से मालूम होता तो अब तक बहुत-सी चीज़ें पसन्द कर लाती।

चन्द्रनाथ चकित होकर उसका मुख देखने लगा।

उसे लग रहा है कि आज उसके घर में विशेष प्राण आ गये हैं, विशेष श्री, विशेष पूर्णता। दो नारी-मूर्तियों ने समग्र वातावरण का कायापलट कर दिया है।

दस साढ़े-दस के बीच में क्रमशः नरेन्द्र और सरोजिनी तथा योगेन्द्र ने पदार्पण किया।

चन्द्रनाथ ने नरेन्द्र से कहा—क्यों, श्रीमती जी नहीं आईं?

नरेन्द्र—मैंने एक बार पूछा तो था, मुमकिन है उन्हें निमंत्रण न मिला हो।

चन्द्रनाथ—वाह, यह कैसे सम्भव है।

आशा और साधना अपना काम प्रायः समाप्त कर चुकी थीं, कटोरी-तश्तरियों में चीज़ें भी लगाई जा चुकी थीं। यह तय हुआ कि अब रोटी बनाने का काम शिवसरन ही करेगा।

शिवसरन कहीं से एक लड़के को पकड़ लाया था। वह बड़ी तत्परता से उसकी सहायता कर रहा था।

साधना के आने पर चन्द्रनाथ ने पूछा—क्यों बहिन, क्या सरोजिनी की मा को निमंत्रित नहीं किया था ?

साधना—कौन कहता है, मैंने तो सब के लिये लिख कर भेजा था।

आशा—भाभी की आज कुछ तबीयत ठीक न थी, इसीलिये नहीं आईं ; मुझ से कह दिया था।

सब लोग बैठे थालियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। आशा और साधना अखबार पढ़ रही थीं।

'बम्बई में जो कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा है, उसमें आप सम्मिलित होंगे ?' आशा ने सहसा सिर उठाकर योगेन्द्र बाबू से पूछा। साधना भी उन्हीं की दिशा में देखने लगी।

योगेन्द्र—अभी निश्चय नहीं किया है, लेकिन सेशन बड़ा महत्वपूर्ण होगा।

आशा—तब तो आप को ज़रूर जाना चाहिये, मुझे भी ले चलें।

योगेन्द्र—मैंने कहा न, अभी निश्चय नहीं किया है। मुझे डर है कहीं सरकार वहीं से हमारे नेताओं को गिरफ्तार न कर ले।

चन्द्रनाथ—सच ! अभी तो कांग्रेस ने कोई युद्ध की घोषणा भी नहीं की है।

योगेन्द्र—इस घोषणा के लिये ही यह अधिवेशन होगा। सुना है गान्धी जी एक बड़ा क्रान्तिकारी प्रस्ताव और कार्यक्रम देश के सामने रखने वाले हैं।....और यह ज़रूरी भी है, किसी संघर्ष-मूलक कार्यक्रम के अभाव में जनता दैन्य और निराशा के मूड में डूबती जा रही है।

आशा—यह आप ठीक कह रहे हैं। उधर जापान बढ़ा चला आ रहा है और इधर न हम खुद अपनी रक्षा का प्रबन्ध कर रहे हैं, न हमारी सरकार।

नरेन्द्र—रक्षा का प्रबन्ध क्या होगा, अंग्रेज़ों के बदले जापानियों का राज्य होगा, और क्या ।

चन्द्रनाथ—कम-से-कम यह निश्चित है कि सरकार हमारी रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकती ।

योगेन्द्र—कर सकती है, यदि वह हमारा पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त कर सके जो कि स्वतन्त्र-भारत में ही सम्भव है ।

आशा—जब तक चर्चिल की सरकार ज़िन्दा है, तब तक यह न होगा ।.......आखिर आप लोग करेंगे क्या ?

योगेन्द्र—हम लोग ही क्यों, आपको भी हिस्सा लेना पड़ेगा। शीघ्र ही कांग्रेस सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने वाली है ।... और यह युद्ध पिछले युद्धों से कुछ दूसरी तरह का होगा ।

आशा—(साधना की ओर देखकर)-हम लोग पीछे नहीं रहेंगी, इसका आपको विश्वास दिला सकती हैं ।

चन्द्रनाथ—मैं अब तक समझता था कि कुमारी आशालता कम्यूनिस्ट हैं ।

आशा—एक वर्ष पहले तक ज़रूर मेरी सहानुभूति उधर थी, लेकिन जब से कम्यूनिस्ट लोग युद्ध में सरकार की मदद करने लगे हैं, मेरा मत बदल गया है । मैं इस लड़ाई में अंग्रेज़ों की मदद करने के एकदम विरुद्ध हूँ ।

थालियाँ आनी शुरू हो गई थीं ।

नरेन्द्र ने थाली पर दृष्टि डालकर कहा—आज तो कद्दू की खीर बनी है, यह आशा की कार्रवाई मालूम पड़ती है, इसे यह चीज़ बहुत पसन्द है । बनाती भी बढ़िया है ।

आशा—यह नहीं कहोगे कि तुम्हें भी पसन्द है ।

नरेन्द्र—(शिवसरन को आते देखकर) ओहो ! कढ़ी भी है ।

आशा—और नुकती का रायता भी, मैं समझती हूं यह चीज़ योगेन्द्र बाबू को पसन्द आयेगी ।

योगेन्द्र—एक ही दिन भोजन कराके आपने मेरी रुचि के बारे में इतनी जानकारी प्राप्त कर ली।

आशा—आपने कहा था कि मुझे बेसन की चीजें पसन्द हैं। यही मैंने जीजी को बता दिया, बाकी सब उनकी सूझ है।

योगेन्द्र—इसके लिये मैं आप लोगों को धन्यवाद दे सकता हूँ।

साधना—अभी नहीं भोजन के बाद ; शुरू कीजिये न।

चन्द्रनाथ—(चखते हुए)—खीर तो सचमुच बड़ी बढ़िया बनी है।

योगेन्द्र—देखिये मेज़बान को अपनी चीज़ों की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।

चन्द्रनाथ—यह तो बड़ा भारी प्रतिबन्ध है। मिस आशा, आप को मेरे धन्यवाद से वंचित ही रहना पड़ेगा।

आशा—कोई हर्ज नहीं; सच पूछो तो मैंने स्वार्थ की प्रेरणा से ही यह चीज़ बनाई थी।

नरेन्द्र—यह दावत अच्छी रही; मालिक के मालिक और मेहमान के मेहमान क्यों आशा !

आशा—योगेन्द्र बाबू भी ऐसी दावत का प्रबन्ध कर सकते हैं।

योगेन्द्र—माफ़ कीजए, मैं अपने को धन्यवाद देने के अधिकार से वंचित नहीं करना चाहता।

भोजन समाप्त होने के कुछ देर बाद नरेन्द्र ने विदा ले ली। सरोजिनी भी आज रोकी नहीं गई।

नरेन्द्र के जाने के बाद चन्द्रनाथ ने साधना और आशा को लक्ष्य कर कहा—मुझे सख्त अफ़सोस है कि आप लोगों ने नरेन्द्र की पत्नी को सम्मिलित नहीं किया।

साधना—इसके लिये यही ज़िम्मेदार है।

आशा—मैं ज़िम्मेदारी लेने को तैयार हूं। (चन्द्रनाथ से) इसकी वजह मैं आपको फिर बताऊँगी।

फिर कुछ रुककर उसने योगेन्द्र से कहा आपने कहा कि शायद सरकार बम्बई में नेताओं को गिरफ्तार कर ले। क्या नेता लोग इसे नहीं जानते ?

योगेन्द्र—जानते हैं, और वे इसके लिये तैयारी भी कर रहे हैं।

आशा—खूब, यह विचित्र पालिटिक्स है।

योगेन्द्र—विचित्र नहीं, कहिये कि कुछ ज़्यादा आदर्शवादी हैं। विशुद्ध कांग्रेसी छिपकर काम करने में विश्वास नहीं करते। वे कभी गुप्त रूप में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कार्रवाई नहीं करेंगे।

आशा—आप भी तो कांग्रेसी हैं।

योगेन्द्र—(चन्द्रनाथ पर दृष्टिक्षेप करके)—मैं कांग्रेसी हूँ, पर विशुद्ध टाइप का नहीं।

आशा –(चन्द्रनाथ से) और आप ?

चन्द्रनाथ—धुरन्धर राजनीतिज्ञों के बीच मेरा कुछ कहने का साहस नहीं होता। लेकिन मैं इस बात में योगेन्द्र बाबू से सहमत हूँ कि अब हमें कुछ करना चाहिये। अकर्मण्यता हमें "डिमारेलाइज़" (नैतिकरीढ़-हीन) कर रही है।

आशा—आप मुझे धुरन्धर राजनीतिज्ञों में न गिनें, मैं पालिटिक्स की एक विद्यार्थिनी मात्र हूँ।

चन्द्रनाथ—आपने कभी राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया ?

आशा—कहाँ ? सन् बत्तीस में तो मैं बहुत छोटी थी। कामरेड लोगों की कुछ परिषदों में ज़रूर भाग लिया है।

चन्द्रनाथ—कम्यूनिस्ट पार्टी आजकल क्या कर रही है ?

योगेन्द्र—सरकार की सक्रिय सहायता।

चन्द्रनाथ—क्या आप नहीं चाहते कि रूस की विजय हो ?

योगेन्द्र—अवश्य चाहता हूँ, मैं ब्रिटेन की भी हार नहीं चाहता ; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम अपने देश की समस्या को भूल जायँ। स्टालिन के रूस ने भी नेशनलिज़्म (राष्ट्रीयता) को छोड़

नहीं दिया है। और यह समझना भी भ्रम है कि वह भारत की स्वन्त्रता के लिये कोई त्याग करने को तैयार होगा।

साधना चुप बैठी थी। योगेन्द्र ने उसे लक्ष्य कर कहा—आपने उस दिन मेरे जाते समय जो बात कही थी उस पर मैंने काफ़ी विचार करने की कोशिश की।

आशा—क्या बात थी जीजी ? कोई गुप्त चीज़ न हो तो हम भी सुनें।

साधना—योगेन्द्र बाबू ही ठीक समझा सकेंगे।

योगेन्द्र अप्रतिभ हो गया। चन्द्रनाथ ने कहा—प्रश्न यह था कि क्या हमें प्रेम में स्थिरता की आशा करने का अधिकार है ? क्या यह जरूरी है कि जिसे आप आज प्यार करती हैं उसे हमेशा प्यार करती रहें ?

आशा—हम उम्मीद तो ऐसी ही रखते हैं।

चन्द्रनाथ—यही नहीं, जो व्यक्ति इस सम्बन्ध में बदल जाता है वह हमें अपराधी जान पड़ता है।

साधना—योगेन्द्र बाबू ऐसे व्यक्ति को अपराधी मानने के विरुद्ध हैं।

आशा—जीजी शायद मदन बाबू को नहीं जानतीं, उनका "केस" इस चीज़ का एक अच्छा उदाहरण माना जा सकता है।

चन्द्रनाथ—न जाने क्यों हमें बरबस ऐसे व्यक्तियों को सराहने को जी होता है।......लैला-मजनू की कहानी की लोक-प्रियता इसका प्रमाण है। मदन बाबू तो अक्सर अपनी तुलना मजनू से कर डालते हैं।

आशा—वे कुछ हैं भी उसी टाइप के, मुझे सचमुच उनसे बड़ी सहानुभूति होती है।

योगेन्द्र—और माधुरी पर क्रोध होता है ?

आशा—कुछ-कुछ, क्या जाने बेचारी का क्या हाल है।

योगेन्द्र—देखता हूँ आप सब की पहले से बनी हुई भावनायें प्रश्न पर वैज्ञानिक ढंग से विचार नहीं करने देंगी।

चन्द्रनाथ – नहीं, नहीं, आप निःशंक होकर अपनी सम्मति प्रकट करें।

योगेन्द्र—प्रथमतः हमें इस परिस्थिति की उपेक्षा नहीं करनी होगी कि मानव हृदय और व्यक्तित्व बदलता भी है ।......मैं समझता हूं हमें प्रेम में परिवर्तन वहीं ज़्यादा खलता है जहां उसके मूल में प्रवंचन या धोखा हो।

चन्द्रनाथ—मुझे लगता है कि जिसे हम प्रेम करते हैं उसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसे तत्व रहते हैं जो हमें आनन्द दे सकते हैं, उन तत्वों का थोड़ा-बहुत आभास हमें रहता है ।.......लेकिन प्रेम करने के लिये यह ज़रूरी नहीं कि हम प्रेमास्पद की अपनी ज़रूरतों और प्रवृत्तियों को भी समझें। शायद इसी से प्रेमी लोग अक्सर निराश होते और धोखा खाते हैं।

योगेन्द्र—आपके इस वक्तव्य ने मेरा रास्ता साफ कर दिया है। प्रेमी लोग अपने आनन्द के लिये प्रेमास्पद पर इतना निर्भर करने लगते हैं कि उस सम्बन्ध में कोई बड़ा परिवर्तन उनके जीवन को एकदम निरानन्द छोड़ देता है। किसी को प्रेम का आश्वासन देने का अर्थ है उसे विविध और गहरे आनन्द का आश्वासन देना; इस आश्वासन को भंग करना स्पष्ट ही निर्दयता जान पड़ती है।

चन्द्रनाथ—दुनिया के प्रेमपात्र यह निर्दयता नियम से करते आये हैं, इसीलिये उर्दू के कवि प्रेमास्पद को क़ातिल कहते हैं।

आशा—हिन्दी कवियों ने ऐसा कोई नाम नहीं रक्खा है क्या?

'निर्मोही,' साधना ने धीरे कहा।

'खूब; ठीक नाम है,' आशा हँसती हुई बोली।

चन्द्रनाथ भी हँसने लगा। बोला—

'दोनों शब्दों में कितना अन्तर है! इस शब्द से ही प्रकट होता

है कि भारतीय प्रकृति कितनी कोमल है। उसका प्रेम और उपालम्भ दोनो बड़े कोमल ढंग से प्रकट होते हैं।

आशा—इससे यह भी प्रकट होता है कि हिन्दुस्तान के पुरुष ज़्यादा कठोर होते हैं, वे ही प्रेम की एकनिष्ठता का भंग करते हैं।

चन्द्रनाथ—उदाहरण के लिये मदन और माधुरी के प्रेम को ले लिया जाय।

आशा—'यही क्यों, और उदाहरण भी तो हमारे सामने है।' यह कह कर उसने योगेन्द्र और साधना की दिशा में देखा।

कुछ रुक कर आशा ने योगेन्द्र को लक्ष्य कर कहा—यह समझ में नहीं आता कि जहां दोनों ओर आकर्षण होता है वहां प्रेम में परिवर्तन क्यों होने लगता है, मदन और माधुरी तो दोनो ही एक-दूसरे के प्रति बराबर आकृष्ट थे।

योगेन्द्र—मेरा खयाल है कि आकर्षण हमेशा बायोलॉजिकल लेविल (शारीरिक स्तर) पर शुरू होता है। यदि प्रेमियों का उस लेविल से आगे विकास न हुआ और यदि घर-गृहस्थी की बाधायें न आई, तो उनका आकर्षण वैसा ही बना रहेगा। दोनों या एक का सांस्कृतिक विकास भिन्न दिशा में होने पर वह आकर्षण खत्म हो सकता है। आप क्षमा करेंगी, मेरा अनुमान है कि नारी शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त उपयोगिता का भी बराबर ध्यान रखती है।

आशा—इसका क्या यह मतलब है कि नारी का प्रेम निःस्वार्थ नहीं होता ?

योगेन्द्र—(मुस्करा कर)—यह प्रश्न आप नरेन्द्र बाबू से करें तो बेहतर हो। जैसा कि मिस्टर चन्द्रनाथ ने कहा, प्रेम अपने आनन्द के लिये होता है, हम किसी को प्यार करते हैं तो इसलिये कि उसे अपने बहुमुखी आनन्द का स्रोत समझते हैं। लेकिन पुरुष में प्रायः प्रेम का मोटिव (प्रेरक हेतु) अज्ञात रहता है। प्रेम की स्थिति में नारी कुछ ज्यादा सजग रहती है; वह पुरुष की अपेक्षा आत्म-नियंत्रण भी ज्यादा

रख पाती है। माधुरी प्रेम में कभी इतनी आत्म-विस्मृत न थी जितने कि मदन बाबू।....(कुछ रुककर) आप इसे नारी के लिये अनादर की बात न समझें, बल्कि मैं तो समझता हूँ कि प्रेम में बेहिसाब बह जाना कम विकसित व्यक्तित्व का लक्षण है।

आशा--बल्कि आप प्रेम करने को भी तो कम विकसित व्यक्तित्व का लक्षण नहीं समझते।

योगेन्द्र--एक दृष्टि से यह ठीक ही है। जहां हम हजारों व्यक्तियों के सम्पर्क से आनन्द पा सकते हैं वहां अपने सुख-दुख को एक व्यक्ति में केन्द्रित कर देना विचारशीलता नहीं कहा जा सकता।

आशा--(चन्द्रनाथ से)—आप इनकी बात का विरोध नहीं करते, या आपका भी यही मत है?

चन्द्रनाथ—मदन के उदाहरण से मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि प्रेम को इतना अधिक तर्क का विषय नहीं बनाया जा सकता।...मैं तो मन ही मन प्रार्थना कर रहा हूँ कि योगेन्द्र बाबू को कभी इस अहेतुक परिस्थिति में फँसने का अवसर मिले।

योगेन्द्र—आपकी शुभ कामनाओं के लिये धन्यवाद, पर शायद मुझे अब जीवन में कभी इतना अवकाश ही नहीं मिलेगा।

चन्द्रनाथ—प्रेम किसी की सुविधा नहीं देखता, योगेन्द्र बाबू।

कुछ क्षण सब मौन रहे। सहसा साधना ने चन्द्रनाथ को लक्ष्य कर कहा - भैया, तुम्हारे उस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

चन्द्रनाथ—किस प्रश्न का?

साधना -यह कि हम प्रेम में अटल रहने वाले प्रेमी की सराहना क्यों करते हैं, करना चाहते हैं?

आशा—योगेन्द्र बाबू ऐसे प्रेमी की हर्गिज़ सराहना नहीं करेंगे।

योगेन्द्र—हमारी सराहना की मनोवृत्ति कोई शाश्वत या न बदलनेवाली चीज़ नहीं है. समाज के विशिष्ट संगठन और परिस्थितियों के साथ उसमें परिवर्तन होता रहता है। कालिदास ने एक राजा की

प्रशंसा कराते हुए कहा है कि इस ने अपने दुश्मनों की स्त्रियों को बिना तागे में पिरोये मोतियों (यानी आँसुओं) के हार पहनाए हैं। आज शायद यह वर्णन प्रशंसा-रूप न समझा जाय। कालिदास की दृष्टि में रघु का दिग्विजय के लिये निकल पड़ना कोई अनहोनी या बुरी बात न थी, आज हम युद्ध छेड़ देने के लिये हिटलर को कोसते हैं—और मज़ा यह है कि खुद हिटलर भी युद्ध की ज़िम्मेदारी लेने से बचना चाहता है और उसके लिये दूसरे राष्ट्रों को दोषी ठहराने की कोशिश करता है।

फिर उसने विशेष रूप से साधना को लक्ष्य कर कहा—'आपका प्रश्न उसी समाज में सार्थक जान पड़ता है जहाँ काफ़ी लोगों को अपने भविष्य के बारे में अनिश्चय या सन्देह रहता है। ऐसे समाज में हमें वह व्यक्ति विशेष वीर मालूम पड़ता है जो दूसरे व्यक्ति-प्रेमास्पद—को सारे समाज की उदासीनता या विरोध के विरुद्ध अभय देता है, यह आश्वासन कि मैं सदैव तुम्हारा हूँ, तुम्हारे सुख-दुख का साथी; कल तुम्हारे लिये चाहे दुनिया बदल जाय, लेकिन मैं बदलने-वाला नहीं हूँ।'

क्षण भर सब चुप रहे फिर साधना ने कहा—इसका मतलब यह है कि प्रेम की स्थिरता अपने में कोई श्लाघ्य चीज़ नहीं है।

चन्द्रनाथ—योगेन्द्र बाबू का कहना है कि ऐसी स्थिरता खास-खास समाजों में उपयोगी हो सकती है, और इसलिये श्लाघ्य भी और शायद वे कहेंगे कि उपयोगिता की कसौटी है व्यक्ति और समाज का सुख-दुख। (योगेन्द्र से) मैंने ठीक समझा है न?

योगेन्द्र—ठीक ही है।

चन्द्रनाथ—तब तो हम साधना बहिन के पति को निर्दोष नहीं कह सकेंगे, क्योंकि हमारा समाज, विशेषतः स्त्रियों के लिये, सुरक्षा-हीनता का समाज है।

योगेन्द्र—सिर्फ स्त्रियों के लिये ही क्यों सारे नौकर-पेशा लोगों और

मज़दूरों के लिये कहिए। इस परिस्थिति का सुधार समाजवादी व्यवस्था में ही हो सकता है।

थोड़ी देर में योगेन्द्र चलने को उठ खड़ा हुआ। उसके जाने के बाद चन्द्रनाथ ने कहा—योगेन्द्र बाबू से हम सहमत हों या नहीं, पर यह मानना ही पड़ेगा कि वे बड़े सुलझे ढंग से सोचनेवाले हैं।

आशा—और वैसे ही ढग से बातें करनेवाले भी। आपको उनका पिछला इतिहास कुछ मालूम है?

चन्द्रनाथ—नहीं, मुझे तो कुछ नहीं मालूम......देखता हूं आप उनके बारे में बहुत-कुछ जानती हैं।

आशा—(ससंकोच मुस्कराकर)—मुझे नरेन्द्र भाई साहब ने सुनाया था।

साधना—क्या सुनाया था, कहिए न।

आशा—छोड़िये, उन्हीं से पूछ लीजिएगा।

साधना—कहिए न, आप शर्माती क्यों है। नरेन्द्र बाबू से मेरा उतना परिचय नहीं है।

चन्द्रनाथ—यदि मेरे सुनने की बात न हो तो मैं दूसरी जगह चला जाऊँ।

आशा—'नहीं, नहीं। .....कोई लम्बी-चौड़ी बात नहीं है। जब योगेन्द्र बाबू इंटरमीजियेट में पढ़ते थे तो वे मुहल्ले की एक लड़की से प्रेम करने लगे। वह लड़की विशेष पढ़ी-लिखी न थी, पर देखने में आकर्षक थी। दोनो समझते थे कि वे एक-दूसरे से विवाह करेंगे। शायद विवाह की बात भी चली। विश्व-विद्यालय में पहुंचकर योगेन्द्र बाबू एक दूसरी लड़की से जो उन्हीं के क्लास में पढ़ती थी आकृष्ट होने लगे। धीरे-धीरे यह नया आकर्षण प्रेम में परिणत हो गया। वह लड़की बुद्धि की भी तेज थी।

'योगेन्द्र बाबू शुरू से ही कान्शेन्श्यस (धर्मभीरु) टाइप के रहे हैं। पहली लड़की के प्रति वचन और कर्तव्य के निर्वाह की भावना ने

उन्हें भयंकर द्वन्द्व में डाल दिया। दो वर्ष तक यह द्वन्द्व चलता रहा। बी० ए० करने के बाद उन पर विवाह करने का दबाव पड़ने लगा, तब उन्होंने पहली लड़की और उसके अभिभावकों पर प्रकट किया कि वे उससे विवाह न कर सकेंगे। लड़की सुनकर बहुत परेशान हुई। योगेन्द्र बाबू को तीव्र मानसिक क्लेश हुआ।

'योगेन्द्रबाबू ने प्रतिज्ञा की कि वे तब तक शादी न करेंगे जब तक उस मुहल्ले की लड़की का विवाह न हो जाय। उन्होंने उसके लिये वर खोजने में भी सहायता दी। जब उसकी शादी हो गई तब उन्होंने अपनी बी० ए० की सहपाठिन से विवाह का प्रस्ताव किया। एम० ए० करने के बाद दोनों का विवाह हो गया'

साधना—क्या योगेन्द्र बाबू विवाहित हैं? आपने तो उनके यहाँ दावत का प्रस्ताव करते समय कुछ दूसरा ही संकेत दिया था।

आशा—उनका विवाह ज़रूर हुआ, पर एक डेढ़-वर्ष बाद ही पत्नी का देहान्त हो गया।

चन्द्रनाथ—कैसे? क्या बच्चा होने में?

आशा—नहीं, उन्हें टी० बी० हो गया।

चन्द्रनाथ—बहुत बुरा हुआ।

आशा—तब से मित्रों और सम्बन्धियों ने बहुतेरा दबाव डाला, पर योगेन्द्र बाबू दूसरी शादी करने को तैयार नहीं हुए। सारा समय पार्टी को देते हैं।

साधना—कितने दिन हुए उनकी पत्नी का देहान्त हुए?

आशा—तीन-चार वर्ष से कम न हुए होंगे।

साधना—और वह पहली लड़की?

आशा—सुना है उसे कोई कष्ट नहीं है, कई बच्चों की मा है। (चन्द्रनाथ को लक्ष्य करके) आपकी राय में योगेन्द्र बाबू ने उससे शादी न करके उचित किया या नहीं?

चन्द्रनाथ - यदि वह लड़की सुखी है तो कुछ अनुचित नहीं किया।...वस्तुतः केवल बायोलाजिकल (भौतिक-शारीरिक) आकर्षण पर अवलम्बित प्रेम काफ़ी नहीं है, वह स्थायी भी नहीं होता।

साधना—लेकिन वह तो कहते हैं कि प्रेम हमेशा ऐसे आकर्षण में शुरू होता है।

चन्द्रनाथ—शुरू होना एक बात है, विकसित और परिपक्व होना दूसरी। मेरा अनुमान है कि जहां भौतिक आकर्षण अनेक के प्रति हो सकता है, वहां प्रेम एक-दो जगह ही उत्पन्न होता है।

आशा—मैं समझती हूँ प्रेम एक ही से हो सकता है।

चन्द्रनाथ – तब हमें यह मानना होगा कि विधाता सोच-समझकर प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिये एक ही ऐसे साथी का निर्माण करता है जिसे वह प्रेम कर सके।

साधना—योगेन्द्र बाबू तो प्रेम को कम विकसित व्यक्तित्व का धर्म मानते हैं, कहते हैं हमें हज़ारों स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क से आनन्द लेने की कोशिश करनी चाहिये, किसी एक व्यक्ति से नहीं।

आशा—यह थियरी (सिद्धान्त) शायद उन्होंने पत्नी की मृत्यु के बाद बनाई है, सुना है पत्नी में वे काफी अनुरक्त थे।

चन्द्रनाथ—एक तरह से उनका विचार ठीक है, हमें अपने व्यक्तित्व में और अपने दो-एक निकट सम्बन्धों में इतना अधिक नहीं डूब जाना चाहिये कि दुनिया को भूल जायँ। यह स्वयं व्यक्ति के विकास और स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। शायद योगेन्द्र बाबू ने अपने जीवन में इसका अनुभव किया है। लेकिन.......

आशा—इस दृष्टि से तो विवाह करना ही उचित नहीं है, क्योंकि गृहस्थी के बन्धन से मुक्त रहकर हम अपने को अधिक से अधिक समाज सेवा के लिये अर्पित कर सकेंगे। उस दशा में हमारा जीवन पूर्णतया सामाजिक होगा।

चन्द्रनाथ - लेकिन प्रश्न का एक दूसरा पहलू भी है। विवाह

द्वारा कुटुम्ब का निर्माण करके हम अपनेपन के ममत्व का जितना गहरा परिचय पा सकते हैं उतना और किसी तरह नहीं। पति-पत्नी के सम्बन्ध में जितनी गाढ़ी मित्रता, जितनी अनन्यता और तादात्म्य सम्भव है उतना, शायद, नर-नारियों के दूसरे सम्बन्ध में नहीं। वहां मानव-हृदय की समस्त कोमलता, मधुरता और सरसता, अपनी पूर्णता में प्रस्फुटित होती है। यह कोमलता और सरसता मानव जीवन की सबसे बड़ी निधि है; मैं नहीं चाहूँगा कि कभी भी कोई समाज-व्यवस्था उसमें हस्तक्षेप करे। इसीलिये मैं प्लेटो की कम्यूनिज्म के विरुद्ध हूँ.... ...मैं उस विवाह-संस्था को जिसमें दो व्यक्ति पूर्णतया अपने को एक-दूसरे में लीन कर देते हैं बहुत सुन्दर और हितकर समझता हूँ

कुछ रुककर उसने कहा—आप शायद कहें कि इस प्रकार की लीनता व्यक्ति को असामाजिक और स्वार्थी बना सकती है, लेकिन मैं कहूँगा कि उस लीनता में ही व्यक्ति वस्तुतः व्यक्तित्व को भूलना सीखता है। वहीं वह जीवन की कम परिचित गहराइयों से सम्पर्कित होता है और प्रेम एवं ममत्व का अन्तरंग अनुभव प्राप्त करता है। उसके बिना वह शायद कभी समझ ही न सके कि मनुष्य के लिये मनुष्य की सहानुभूति का क्या अर्थ होता है।

आशा क्या विवाह से बाहर इस प्रकार का सम्बन्ध सम्भव ही नहीं है?

चन्द्रनाथ—माता-पिता और सन्तान में भी कुछ काल तक वैसी ही अभिन्नता रहती है।

आशा—मेरा मतलब था स्त्री और पुरुष में।

चन्द्रनाथ—पहले मैं समझता था कि यह सम्भव है, पर अब सोचता हूँ कि नहीं। अभिन्नता का सम्बन्ध वहीं सम्भव है जहां किसी प्रकार का दुराव न हो, नर-नारी के सम्बन्ध में यह भारी अड़चन है।

यह कहकर वह कुछ सोचने लगा।

आशा—(साधना से)—जीजी आपकी क्या राय है ?

साधना—भैया ने विवाहित सम्बन्ध का बड़ा सुनहला चित्र खींचा है, सो शायद इसलिये कि वे पुरुष हैं। पूर्ण अभिन्नता के लिये दोनो ओर से पूर्ण समर्पण होना चाहिये, यहां मैं भैया से सहमत हूं। लेकिन पुरुष ऐसा समर्पण कब करता है ? वह केवल पत्नी से ही ऐसे समर्पण की आशा करता है। अपनी स्वतन्त्रता को अखंडित बनाये रख कर वह यह आशा करता है कि पत्नी अपने व्यक्तित्व को उसमें डुबो दे।

चन्द्रनाथ—मेरा अनुमान है कि पुरुष भी आत्म-समर्पण कर सकता है, करना चाहता है, यदि उसे ग्रहण करने की क्षमता पत्नी में हो। हमारे देश में आत्म-समर्पण एक ओर से होता है इसका मुख्य कारण यह है कि यहां की नारी अवलम्ब की प्रार्थिनी रहती है, अपना भार दूसरे पर छोड़ देने की अभ्यस्त है ; उसमें स्वयं अवलम्ब देने की क्षमता नहीं है। हर पुरुष में, फिर चाहे वह कितना ही दृढ़ और कर्मठ क्यों न हो, कुछ दुर्बलतायें रहती हैं। उन दुर्बलताओं को समझ कर सहारा दे सकने वाली नारी ही उसका समर्पण प्राप्त कर सकती है।

आशा—आपका मतलब है कि समर्पण उसके प्रति किया जाता है जो कुछ अंशों में हमसे सबल है ; किन्तु यह समर्पण तो प्रेम नहीं हुआ, एक प्रकार की निर्भरता हुई।

चन्द्रनाथ—जिस पर हम किसी-न-किसी रूप में निर्भर नहीं करते, जिसकी हमें अपेक्षा नहीं है, उसका सम्पर्क हम चाहेंगे ही क्यों ? आप इसे पारस्परिक निर्भरता कह सकती हैं ; यह भी कहा जा सकता है कि प्रेमियों के व्यक्तित्व एक-दूसरे के पूरक होते हैं।...जो अपने में ही पूर्ण है, पूर्णतया आत्म-निर्भर है, उसे किसी के प्रेम की ज़रूरत ही क्यों होगी ?

आशा कुछ देर को चन्द्रनाथ और साधना के बीच देखती हुई चिन्ता-मग्न-सी हो गई। फिर हंसती हुई बोली—योगेन्द्र बाबू कहेंगे कि ऐसा प्रेम संघर्ष के वातावरण में ही अपेक्षित होता है, उनके

आदर्श समाज में उसकी ज़रूरत न होगी। क्योंकि वहाँ कोई किसी का शत्रु न होगा जिससे कटुता या अपमान मिलने की सम्भावना हो, इसलिये गहरी सहानुभूति की आकांक्षा भी न होगी। वहां न माधुरी की विशेष निन्दा की गुञ्जायश होगी, न बेचारे मदन बाबू की प्रशंसा की। क्यों जीजी, ऐसा समाज कैसा मालूम होगा?

साधना—क्या जाने, मैं तो ऐसे समाज की कल्पना ही नहीं कर सकती।

चन्द्रनाथ—शायद मनुष्य की कुछ ज़रूरतें आर्थिक-सामाजिक आवश्यकताओं से ज़्यादा गहरी हैं। एक प्रकार का एकाकीपन होता है जो लाखों आदमियों की भीड़ में भी दूर नहीं होता। संभवतः योगेन्द्र बाबू के समाज में भी इस एकाकीपन की अनुभूति लुप्त नहीं होगी।

आशा और साधना दोनों ही गम्भीर हो गईं। कुछ देर बाद आशा ने साधना से कहा—जीजी, शिवसरन से कह दीजिये कि मुझे घर पहुँचा दे।

शिवसरन को पुकारने से पहले साधना ने आशा को लक्ष्य कर कहा—तो कल आप निश्चित रूप में इलाहाबाद जा रही हैं?

आशा—इरादा तो यही है।

साधना—अच्छा, मुझे भूलना नहीं बहिन।

आशा—क्या यह भी सम्भव है! जब से आप लोग यहाँ आए हैं मुझे बनारस बहुत याद आने लगा है।

साधना ने शिवसरन को बुलाया। आशा कमरे से बाहर निकली। चन्द्रनाथ उठ खड़ा हुआ, और साधना बाहर निकल आई। फिर, दोनों को नमस्ते करके आशा धीरे-धीरे ज़ीने की ओर बढ़ गई।

४०

बिना किसी भूमिका के बिस्तर पर लेटते हुए चन्द्रनाथ ने साधना से कहा—मैं तो बैठे-बैठे थक गया बहिन, तुम्हें लेटने की इच्छा हो तो उस कमरे में प्रबन्ध कर दिया जाय।

'नहीं भैया, मेरी चिन्ता मत करो।...एक बात कहूँ, मुझे सबके सामने और वैसे भी नाम लेकर क्यों नहीं पुकारा करते?'

'क्यों? मुझे बहिन कहना अच्छा लगता है।'

'कहीं भी अच्छा नहीं लगता, मुझे बिलकुल पसन्द नहीं।'

'तब क्या कहा करूं?'

'मेरा नाम क्या इतना खराब है?'

'नहीं-नहीं, लेकिन पुकारने का नाम दो ही अक्षर का होना चाहिये।'

साधना—आपको अब तक मेरा पुकारने का नाम नहीं मालूम! माता जी कहा करती हैं मुन्नी, और पिता जी रानी बेटी या सिर्फ रानी।

यह कह कर वह ईषत् हँसी।

चन्द्रनाथ—ठीक, तुम्हें कौन-सा नाम पसन्द है?

साधना—(मुस्कुरा कर)—जो तुम्हें पसन्द हो।

चन्द्रनाथ—तो रानी बहिन

साधना—फिर वही, तब नाम रखने से फ़ायदा ही क्या हुआ।

चन्द्रनाथ—अच्छा भई, कहो विश्वविद्यालय में मन लगता है।

साधना—बहुत; लाइब्रेरी बड़ी अच्छी है।

चन्द्रनाथ—सिर्फ लाइब्रेरी ही पसन्द आई?

साधना—इमारत भी बढ़िया है।

'हूं, और?'

'और क्या, हॉस्टल में सखी-सहेलियां भी मिल गई हैं; खूब जी लगता है।'

चन्द्रनाथ चुप रहा।

'भैया!'

चन्द्रनाथ ने दृष्टि फेरकर देखा।

'याद है तुम पत्रों में लिखा करते थे कभी हम लोग साथ भी रहेंगे। अब साथ हैं न?'

चन्द्रनाथ—हां, एक तरह ; तुमने तो यहां रहना पसन्द ही नहीं किया।

'समाज का खयाल करना पड़ता है न।'

'हूं।'

कुछ देर में वह बोली—भैया, यह माधुरी कौन है जिसका सब लोग बार-बार जिक्र करते थे ?

चन्द्रनाथ—माधुरी इस मकान के मालिक महोदय की बड़ी लड़की है। हाल ही में उसकी शादी हुई है।

'और मदन बाबू ?'

'वे यहीं रहते हैं, विवाहित हैं, पर उन्हें माधुरी से बहुत प्रेम था और अब भी है। प्रेम माधुरी को भी बहुत अधिक था—मैंने उसे अपनी आँखों के सामने रोते और व्याकुल होते देखा है। पर शायद अब वह मदन बाबू को भूल गई है ; जब से विवाह हुआ है तब से एक पत्र तक नहीं लिखा।'

साधना—समझी, इसी से आप लोग अनुमान लड़ाते हैं कि वह मदन बाबू को भूल गई ?

चन्द्रनाथ—बड़े अमीर घर पहुंची है, भूलना अस्वाभाविक नहीं।

साधना—भैया आप कवि हैं लेकिन नारी हृदय को बिल्कुल नहीं समझते। नारी एक बार जिसे प्यार करती है उसे जीवनभर हृदय से नहीं निकाल सकती। मैं समझती हूँ माधुरी कुछ दिनों बड़ी व्याकुल रही होगी।

चन्द्रनाथ—इसका तो कोई प्रमाण नहीं मिला। वह चाहती तो कम से कम पत्र ज़रूर भेज सकती थी। पहले कहती थी कि विवाह बाद कहीं मेले आदि में गायब होकर मदन बाबू से मिल जायगी।

साधना कहती होगी, लेकिन हम भारतीय स्त्रियों में उतना साहस नहीं है, भैया मैं। जो यह क़दम उठा सकी हूँ सो इसलिये कि मुझे तुम में अटल विश्वास था।

चन्द्रनाथ चकित होकर उसे देखने लगा।

साधना ने वैसे ही तटस्थ दृष्टि किये कहा—मैं यह नहीं कहती कि माधुरी को कुछ भी सुख न होगा, लेकिन यह आप मान लें कि उसके हृदय के मधुरतम कोने में एक कसक, एक दर्द स्थायी अतिथि के रूप से रहता होगा, जिसे बाहर कर देना न माधुरी के लिये संभव ही होगा, न इच्छित। प्रेम के तादात्म्य का जो भीतरी अनुभव और सुख है उससे वह वंचित ही रहेगी, भले ही और हज़ार तरह के सुख उसे सुलभ हो जायँ।

चन्द्रनाथ—वह अपने पति को सच्चे दिल से प्यार करने की कोशिश भी तो कर सकती है, रानी।

साधना—कोशिश ज़रूर करेगी, और उसमें कुछ हद तक सफल भी होगी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह कोशिश करने पर भी पहले प्रेम को भूल सकेगी यदि वह प्रेम अबोध लड़कपन की चीज़ मात्र न हो।

'नहीं, माधुरी बड़ी समझदार और कुशाग्रबुद्धि लड़की है, अवस्था भी उतनी कम नहीं है।'

चन्द्रनाथ श्रान्ति महसूस कर रहा था; धीरे-धीरे उसने बातचीत करना बन्द कर दिया। उसकी आँखें भी झँप रही थीं।

सहसा साधना उसका एक हाथ अपने हाथों में लेकर दबाने लगी।

चन्द्रनाथ ने अर्ध-विस्मृत भाव से इसे महसूस किया, पर उसने कुछ कहा नहीं; चुपचाप वह दबने की क्रिया से मिलने वाले विश्राम का सुख लेता रहा।

उसकी आँखें मुँद रही थीं। सहसा उसने करवट लेते हुए साधना का हाथ अपने माथे पर रख लिया।

'सिर में दर्द है क्या भैया? तेल डाल दूँ?'

'नहीं, विशेष दर्द नहीं है।'

'मैं तेल डाल देती हूँ, ठीक हो जायगा।' कहकर वह उठी और तेल की शीशी ले आई। हथेली पर काफ़ी तेल उड़ेलकर उसने सब का सब सिर में डाल दिया।

'अरे, बहुत तेज पड़ गया,' चन्द्रनाथ ने सजग होकर कहा।

'नहीं, बहुत नहीं है; मैं सब सुखा दूँगी। इस काम का मुझे खूब अभ्यास है, पिताजी के अक्सर तेल डाला करती थी और ......'

वह चन्द्रनाथ के बालों में अंगुलियाँ संचालित करने लगी।

थोड़ी देर तक चन्द्रनाथ को उसकी हथेलियों और अंगुलियों की गति का आभास रहा, फिर उसे लगा जैसे वह सोने लगा।

और उस अर्ध-सुप्त अवस्था में ही वह जैसे अपनी निगूढ़ चेतना से एक अनिवार्य तृप्ति और विश्रान्ति का अनुभव कर रहा था। बहुत दिनों बाद प्राप्त होनेवाला नारी के हाथ का वह ममतामय स्पर्श उसके अन्तर को अपूर्व माधुर्य से विभोर बना रहा था।

काफ़ी देर बाद मानो सोते ही सोते उसने कहा—अब आराम करो रानी, थक गई होगी।

एक-डेढ़ घंटे बाद जब वह सोकर उठा तो उसने पाया कि साधना वहीं कुर्सी पर बैठी किताब पढ़ रही है।

'अरे तुम लेटीं नहीं, उस कमरे में बिस्तर बिछा सकती थीं।... लेकिन बिस्तर तो कहीं बंधा पड़ा होगा।'

'नहीं भैया, मुझे ज़रूरत ही नहीं महसूस हुई। मैं उतनी नाजुक नहीं हूँ जैसी दिखाई देती हूं।'

'नहीं, तुम नाजुक कहां हो; देखो न कैसी मोटी-ताजी हो।.. .... न जाने कितनी देर तक सिर दबाती रही थीं। आज खूब बेगार भरनी पड़ी।'

'हूँ, अपने काम को बेगार भरना कहते हैं न।'

जब से साधना विश्व-विद्यालय में गई है तब से कई बार उसके

मन में यह प्रश्न उठा है कि वह अपने खर्च का कैसे प्रबन्ध करती है। कई बार उसने चाहा है कि इस सम्बन्ध में उसकी ज़रूरतों को जानकर भरसक सहायता देने की चेष्टा करे, पर कभी उसे साहस नहीं हुआ। आन्तरिक मधुरता के साथ साधना के व्यक्तित्व में जो एक दृढ़ता और मनस्विता है वह जैसे उसे वैसा साहस करने से रोकती है। आज भी वह प्रश्न मानो उसके गले तक आकर रुक गया; जिह्वा तक नहीं पहुँच सका।

सांझ को साधना विश्व-विद्यालय चली गई।

४१

सात अगस्त की संध्या में चन्द्रनाथ से भेंट होने पर नरेन्द्र ने कहा—तुमने सुना, योगेन्द्र बाबू लापता हो गये!

चन्द्रनाथ—कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने बम्बई गये होंगे।

'नहीं; बम्बई जाते तो उनके साथियों को ज़रूर पता होता, इसमें छिपाने की कोई बात न थी। परसों मुझ से भेंट हुई थी तो उन्होंने कहा था कि वे बम्बई नहीं जा सकेंगे।'

'तब कहां चले गये?'

'क्या ठिकाना है।......योगेन्द्र बाबू देखने में जितने सीधे और सरल हैं, काम करने में उतने ही तेज़ हैं। ज़रूर कहीं छिप रहे होंगे। शायद उन्हें विश्वास हो गया है कि सरकार नेता लोगों को गिरफ्तार किये बिना न छोड़ेगी।'

* * *

आठ अगस्त को पढ़े-लिखे लोगों के दिल में बड़ी हलचल थी। सोच रहे थे, देखें बम्बई में क्या हो। एक बूढ़े पंडित जी ने चन्द्रनाथ से कहा—'गांधी जी इस बार अवश्यमेव कोई ऐसा अस्त्र देंगे कि म्लेच्छ राज्य विध्वंस हो जाय हमें पूरा भरोसा है।'

सांझ को चन्द्रनाथ दशाश्वमेध घाट से घूम कर लौट रहा था। राह में उसने पाया कि कुछ लोग आपस में बातें करते हुए रेडियो सुनने की फ़िक्र में बढ़े चले जा रहे हैं। उसके जी में आया कि वह भी कहीं रेडियो सुनने पहुंचे, पर यह सोच कर कि जो कुछ खबर होगी नरेन्द्र से मिल ही जायगी वह सीधे घर चला गया।

किन्तु रात में उसकी नरेन्द्र से भेंट न हो सकी। सवेरे का अखबार बड़े सनसनीपूर्ण शीर्षक लिये हुये आया—बम्बई में नेता लोग गिरफ़्तार, गांधी जी गिरफ़्तार इत्यादि। बाहर से आते हुए शिवसरन ने कहा – बाबू, सुनते हैं गान्धी जी पकड़ लिये गये?

चन्द्रनाथ ने कहा— हूँ, और सब नेता भी, पं० जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद वगैरः गिरफ़्तार कर लिये गये।

'काहे, किस बात पै सरकार? इसलिये कि लड़ाई में मदद नाहीं करते हैं?'

'हां, यह भी है। फ़िलहाल इन लोगों ने प्रस्ताव पास किया है कि अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान छोड़ देना चाहिए – भारत छोड़ो, नहीं तो कांग्रेस सरकार से लड़ाई छेड़ देगी।'

शिवसरन के टल जाने पर वह ध्यान से 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बारे में पढ़ने लगा। प्रस्ताव रखने वाले थे पं० जवाहर लाल नेहरू। 'प्रस्ताव कोई धमकी नहीं, स्वतन्त्र भारत के सहयोग का दावतनामा है। किसी दूसरी शर्त पर हमारा सहयोग नहीं हो सकता। उसके अभाव में हमारा प्रस्ताव संघर्ष और लड़ाई का वादा करता है।...... यह प्रस्ताव समस्त भारत की दबी हुई आवाज़, धारणा तथा इच्छाओं का प्रतिनिधि है।...मैं इस बात की घोषणा करता हूँ कि हम अपनी धारणा में निश्चित हैं। उसके बारे में किसी को गलतफहमी नहीं होनी चाहिए।...हम एक समुद्रतट पर खड़े हैं और यदि ज़रूरत हो तो ग़ोता लगाने के लिये भी तैयार हैं।'

आगे चल कर नेहरू ने आवेश में आकर कहा—'कुछ लोग हमें

धमकी दे रहे हैं, लेकिन वे नहीं जानते कि ऐसे नाजुक मौके पर धमकी का और भी भयंकर एवं घातक परिणाम होगा...हम जानते हैं हमारे रास्ते में बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं लेकिन हमें उनकी पर्वाह नहीं। यदि जापान ने भारत पर हमला किया तो हमें ही कठोर कुर्बानी करनी पड़ेगी, और तकलीफें बर्दाश्त करनी पड़ेंगी, हमें ही आग की लपटों में झुलसना होगा....अब तो हम आग में कूद पड़े हैं, या तो सफल होकर निकलेंगे या उसी में जल कर भस्म हो जायेंगे।'

सरदार पटेल ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा—'सरकार चाहती है हम उसमें और उसके हथियारों में विश्वास करें। क्या हम उन्हीं हथियारों का विश्वास करें जिन्होंने बर्मा और मलाया के लोगों की रक्षा की ? क्या हम ऐसे ही भाग्य का स्वागत करें जो उनका हुआ ? सरकार उन देशों से भाग खड़ी हुई और वहाँ के लोगों को जापानियों के रहमो-करम पर छोड़ दिया। कौन जानता है कि वह हमें उसी तरह नष्ट और तबाह करके नहीं चली जायगी।' उसके कुछ आगे गान्धी जी के भाषण का विवरण था। 'अब बीच में समझौता नहीं है। मैं नमक की सुविधायें या शराबबन्दी लेने को नहीं जा रहा हूँ। मैं तो एक ही चीज़ लेने जा रहा हूँ, आज़ादी। नहीं देना है, तो क़त्ल करें। मैं वह गान्धी नहीं जो बीच में कुछ चीज़ लेकर आ जाय। आपको तो मैं एक मंत्र देता हूँ, "करेंगे या मरेंगे।" जेल को भूल जायँ। आप सुबह शाम यही करें कि खाता हूँ, पीता हूँ, सांस लेता हूँ तो गुलामी की ज़ंजीर तोड़ने के लिये।...आज से तय करें कि आज़ादी लेनी है। नहीं लेनी है तो मरेंगे ..आप मान लें कि हम आज़ाद बन गये।' इसके बाद पत्रकारों, राजाओं, सिपाहियों, प्रोफेसरों, विद्यार्थियों सब के लिये अलग-अलग सन्देश था।

देश के उन तेजस्वी नेताओं की वक्तृतायें, और उनकी गिरफ्तारी का विवरण पढ़ कर चन्द्रनाथ बहुत विचलित महसूस कर रहा है। कितने निर्भीक हैं ये नेता, कितने पवित्र और उच्चाशय। अपने जीवन

की प्रत्येक सांस में उन्होंने आज़ादी का मंत्र जपा है, और अनेक बार की भाँति, आज वे फिर जेल में हैं। रह-रह कर उसके कानों में बूढ़े गान्धी की संकल्प-वाणी गूंज उठती है, करेंगे या मरेंगे। देश के सर्व-व्यापी दैन्य और निराशा के वातावरण में कांग्रेस का प्रस्ताव और गान्धी के ये शब्द मानो सौ-सौ बिजलियों की भाँति कौंध उठे हैं।

* * *

कुछ देर बाद सड़क की ओर कोलाहल सुनाई दिया, "इन्कलाब, ज़िन्दाबाद।" शिवसरन ने बाहर घूम-फिर कर खबर दी कि यूनिवर्सिटी से लड़का लोगों का जुलूस आ रहा है। चन्द्रनाथ धोती-कुर्ता पहने बाहर निकल गया।

शहर में हड़ताल थी। दूकानें बन्द थीं। यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों का एक बड़ा जुलूस नारे लगाता हुआ गुधौलिया की ओर बढ़ा जा रहा था। बहुत से पुरुष और स्त्रियां घरों के दरवाजों तथा छज्जों से जुलूस को देख रहे थे, बहुत से उत्साह-पूर्वक उसमें सम्मिलित होकर नारे लगाते हुए बढ़ते जा रहे थे।

क्रमशः जुलूस दशाश्वमेध की ओर बढ़ने लगा। वहाँ से वह टाउनहाल की ओर चलने लगा। क्रमशः अधिकाधिक लोग जुलूस में सम्मिलित होते जा रहे थे और उसका आकार-प्रसार बढ़ता जा रहा था।

टाउनहाल पहुँच कर जुलूस एक सभा में परिवर्तित हो गया। हिन्दू विश्वविद्यालय के एक अध्यापक ने अध्यक्ष का पद ग्रहण किया। कुछ उत्साही विद्यार्थियों के भाषण हुए और साथ ही यह प्रस्ताव पास हुआ कि सब लोग चल कर सरकारी इमारतों पर झंडा फहरायें।

उस दिन बनारस के मुहल्ले-मुहल्ले से छोटे-छोटे जुलूस निकल रहे थे। धीरे-धीरे वे सब जुलूस विद्यार्थियों तथा जनता के इस बृहत् जुलूस से मिल गये। और तब यह विराट् जन-समूह फौज़दारी अदालत पर झंडा फहराने के लिये चल पड़ा।

चन्द्रनाथ जुलूस में शामिल है, साथ ही वह जुलूस की भीड़ का निरीक्षक भी है। कितने लोग हैं जुलूस में, और कितनी तरह के! बूढ़े, बालक, जवान, सब जुलूस में सम्मिलित हैं। वहाँ अमीरी पोशाकवाले लोग नहीं हैं, प्रायः मध्यवित्त लोग हैं, और निम्न श्रेणी के। वहां सफ़ेदपोश कम हैं, अक्सर लोग अधमैले मोटे खादी और गाढ़े के कपड़े पहने हैं। कुछ सजीव संकल्प के साथ और कुछ यन्त्र की भाँति तटस्थ स्वर में 'इन्कलाब जिन्दाबाद,' 'भारत छोड़ो,' 'करेंगे या मरेंगे,' 'महात्मा गाँधी की जय' आदि नारे बोल रहे हैं। जहाँ अधिकांश विद्यार्थियों के स्वर में कड़क और मुख पर तेज है, वहां कुछ प्रौढ़ व्यक्तियों के चेहरे पर प्रच्छन्न निराशा और अविश्वास का भाव है—यत्न करने पर भी वे मानो आशा की स्फूर्ति का अनुभव नहीं कर पाते। उनकी मुद्रा मानो देश की गहराइयों में पैठी हुई है। काफ़ी बार वे ऐसे जुलूसों में शामिल हुए होंगे, और अनुभव ने उन्हें बता दिया है कि इन जुलूसों का इतना महत्व नहीं है, वे देश के और स्वयं उनके दैन्य और कष्ट का प्रतिकार करने में समर्थ नहीं हैं। बिना वास्तविक उमंग और उत्साह के अर्धभ्रान्त भाव से जुलूस के साथ घिसटते हुए ये लोग चन्द्रनाथ के मन में एक विशेष दर्द पैदा कर रहे थे।

कितने दिनों से यह देश गुलाम है, कितने काल से दरिद्र और पददलित; कितने दिनों से पीड़ित जनता के नेत्र ऐसे ही उदासी, नैराश्य और दीनता का भार ढोते रहे हैं!

जुलूस अदालत की ओर बढ़ रहा था, जोश और उत्साह से, निश्चित गति से। लेकिन यह क्या? अदालत के निकट पहुँचने पर लोगों ने देखा कि काफ़ी सशस्त्र पुलिस वहाँ पहले से मौजूद है। जुलूस अदालत के सामने रोक दिया गया, और पुलिस के एक अधिकारी ने गरज कर भीड़ से बिखर जाने को कहा। भीड़ निश्चल और खामोश थी, जैसे सब इसकी प्रतीक्षा कर रहे हों कि आगे क्या होता है। अधि-

कारी ने कई बार अपील की, पर व्यर्थ; भीड़ आगे बढ़ने को उद्यत थी। यकायक, अफ़सर के हुक्म से, पुलिस ने लाठी-प्रहार शुरू कर दिया। कट्-कट्, खप्-खप्—जनता पर लाठियां बरसने लगीं।

अनेक वीरों ने अडिग रह कर लाठियों के वार सहे, अनेक चोट खाकर गिर पड़े। अनेक लोग आगे बढ़े; बहुत-से खड़े रहे। निरीह, प्रतिकार-शून्य, चुपचाप खड़े हुए लोगों पर बढ़ते हुए सिपाहियों का लाठी-प्रहार दारुण था। धीरे-धीरे भीड़ हटने लगी, लोग तितर-बितर होने लगे। लोग हटे, पर एक अनिवार्य्य घृणा, क्षोभ और प्रतिकार का भाव लेकर। उनकी शान्त और ठंडी दृष्टियों के पीछे भयंकर संकल्प और प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी।

सांझ को नरेन्द्र ने आकर कहा—सुना कि तुम जुलूस में शामिल हुये थे, चोट तो नहीं आई?

चन्द्रनाथ—नहीं मैं उतना भाग्यशाली न था।

नरेन्द्र—देखो भाई, मैं इस तरह की पॉलिटिक्स के पक्ष में बिलकुल नहीं हूँ; मैं पीटने की नीति का विश्वासी हूँ, पिटने की नहीं। गान्धी की अहिंसा में मुझे एकदम "फ़ेथ" (आस्था) नहीं।

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। आज उसे भी लग रहा था कि अहिंसा, भले ही वह सिद्धान्त-रूप में अच्छी हो, युद्ध का व्यावहारिक अस्त्र बनने लायक नहीं है। आज उसकी कितनी इच्छा हो रही थी कि कोई, स्वयं वह, पुलिस के इन सिपाहियों को, उन्हें जो स्वयं अपने भाइयों पर प्रहार कर रहे थे, कड़ी-से-कड़ी सजा दे सकता।

और फिर नरेन्द्र ने कहा—देखो जी, हम लोगों को कुछ ज्यादा सावधान रहना पड़ेगा। ऐसा न हो कि प्रिंसिपल या सेक्रेटरी साहब के कानों तक बात पहुँचे।

चन्द्रनाथ—क्या कहते हो हमारे प्रिंसिपल तो स्वयं खद्दरपोश हैं, और सेक्रेटरी साहब......।

नरेन्द्र—बड़े देशभक्त हैं, यही न। अरे भाई ये सब प्लेटफार्म

के देश-भक्त हैं, लड़ने-भिड़ने वाले नहीं। और सेक्रेटरी साहब तो सरकार के भी उतने ही भक्त हैं जितने कि गाँधी जी के। प्रिंसिपल साहब एक ही डरपोक आदमी हैं। देखना, कल ही हम लोगों को चेतावनी दी जायगी।

और अगले दिन सचमुच प्रिंसिपल का आज्ञा-पत्र निकला कि कालेज के अध्यापक और छात्र विद्रोही तत्वों से बिल्कुल अलग रहें, वर्ना......

लेकिन इस आज्ञापत्र को सुननवाले बहुत कम लोग थे, अध्यापक, कतिपय मुसलमान छात्र और कुछ हिन्दू विद्यार्थी, वे जो कालेज की ओर से स्कालरशिप या दूसरे प्रकार की सहायता पा रहे थे।

प्रिंसिपल ने कहा - इस प्रकार के प्रदर्शनों से कोई लाभ नहीं, लोगों को रचनात्मक कार्य करना चाहिये जिस पर गांधीजी हमेशा जोर देते हैं......और कालेज की अस्तित्व-रक्षा के लिये, हम लोगों को इससे बिलकुल अलग रहना चाहिए। पढ़ाई भी जारी रखनी चाहिये, चाहे कितने कम छात्र आयें।

हरीजी ने कहा—इस हुल्लड़बाज़ी से छात्रों का बड़ा हर्ज होता है। हमें उन्हें शान्त रखने का उपाय करना चाहिये।

किन्तु छात्रों को शान्त रखना सम्भव न था। उनमें अभूतपूर्व उत्साह था, और पिछले दिन के लाठी चार्ज को लेकर काफ़ी क्षोभ और रोष। छात्रों के पूछने पर चन्द्रनाथ ने कहा—'तुम कोर्स की चिन्ता न करो, एक अक्षर भी पढ़ाई तुम्हारे पीछे न होगी।' इसे उन मुसलमान छात्रों पर जो इस समय कालेज में आते थे पहली बार रोष हुआ।

सांझ को कुछ देर के लिये साधना चन्द्रनाथ के पास आई। वह आन्दोलित थी, प्रसन्न थी। बोली—आज आप कालेज क्यों गए, आपको कालेज नहीं जाना चाहिए था। कालेज बन्द कर देना चाहिए। जानते हो, यह हमारा आखिरी युद्ध है, करेंगे या मरेंगे।

चन्द्रनाथ चुपचाप उसकी बात सुनता रहा। फिर पूछा—आज तो सुना लाठी-चार्ज नहीं हुआ।

'नहीं, आज पुलिस की हिम्मत नहीं हुई हम लोगों पर लाठी चार्ज करने की। पुरुष के जुलूस ने फौजदारी अदालत पर झंडा फहराया, और हम लोगों ने जब्त किया हुआ खादी-भंडार पुलिस से छीन लिया।'

'करेंगे या मरेंगे', यह नारा रह-रह कर चन्द्रनाथ के कानों में गूंजता है। लेकिन वह सोचता है—क्या करेंगे? इस प्रकार एक इमारत पर झंडा फहरा देने से क्या होगा? क्या गान्धीजी सिर्फ यही चाहते थे? उन्होंने कोई प्रोग्राम, कोई कार्यक्रम लोगों के लिये क्यों नहीं दिया? अहिंसा को न छोड़ते हुए ऐसा कौन-सा कार्यक्रम हो सकता है जो ब्रिटिश साम्राज्यशाही की जड़ों को हिला दे!

अगले द दिन बराबर चन्द्रनाथ को हाजिरी देने कालेज जाना पड़ा, दोनों दिन जुलूस भी निकले। पुलिस ने लाठियों के साथ कहीं-कहीं गोली भी चलाई।

तेरह अगस्त। कालेज में लोगों ने सुना कि आज पुलिस ने दशाश्वमेध घाट पर बुरी तरह गोली चलाई है। चन्द्रनाथ का दिल धड़कने लगा।

लौटते हुये उससे नरेन्द्र ने कहा—इस प्रकार का प्रदर्शन और जुलूस व्यर्थ हैं, इनसे कुछ होना नहीं।

चन्द्रनाथ ने चिन्तामग्न मुद्रा में कहा—हूँ।

घर पहुंचने पर शिवसरन सकपकाया हुआ उसके पास आया और उसने एक चिट्ठी उसके हाथ में दी। चन्द्रनाथ ने चिट्ठी खोल कर पढ़ी। उस पर किसी छात्रा का नाम था। लिखा था—'आपकी बहिन सुश्री साधना को चोट आई है, स्थानीय मारवाड़ी अस्पताल में पहुँचा दी गई है। घबराने की बात नहीं, जान का खतरा नहीं है।' पढ़कर चन्द्रनाथ के होश गुम हो गए। यह कैसी खबर है! क्या स्वयं साधना,

उसकी बहिन, पुलिस के प्रहारों का शिकार हुई है ? कहीं उसे गोली तो नहीं लगी ? क्या यह सम्भव है ?

तेजी से घर से निकल कर वह नरेन्द्र के घर पहुंचा, और उसे साथ लिये अस्पताल; अकेले जाने का उसे साहस नहीं हुआ।

पूछताछ करके वे साधना के समीप पहुँचे। मालूम हुआ कि वह कई घंटे अचेत-प्राय अवस्था में रही थी, और अभी ही कुछ-कुछ सचेत हुई थी। उसके दाहिने कन्धे को काटती हुई गोली निकल गई थी। शरीर से बहुत-सा रक्त बह गया था। ऐसी अवस्था में रोगी से बातचीत करने को एकदम मनाही थी।

चन्द्रनाथ ने पहले दूर से साधना को देखा। उसके कन्धे तथा बगल को घेरे हुए चौड़ी पट्टियाँ बंधी थीं, और वह आंखें बन्द किये निस्पंद पड़ी थी। चेहरा एकदम सफेद हो रहा था, मानो बर्फ में काटी हुई प्रतिमा हो। धीरे-धीरे वह खाट के समीप पहुंचा। साधना पूर्ववत् निःस्पन्द रही। कुछ क्षणों तक वह उसे देखता रहा, फिर सहसा उसके नेत्रों में आंसू छलछला आए। बहुत देर बाद साधना ने आंखें खोलीं, मूक भाव से उसकी ओर देखा, और फिर आंखें बन्द कर लीं।

अस्पताल के डाक्टर ने कहा—इनके लिये आप एक नर्स का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा हो, हमारे यहां नर्सों की कमी है। कोई घर की स्त्री ज़रा कड़े दिल की हो तो भी काम चल सकता है।

दूसरे दिन नरेन्द्र की मदद से चन्द्रनाथ ने एक नर्स को बुलवा लिया।

चौथे दिन, उसने आश्चर्य से देखा, वहां आशालता प्रयाग से आ पहुँची है। चन्द्रनाथ और नरेन्द्र से बिना मिले ही, जब वे कालेज में थे तभी, वह अस्पताल पहुँच गई थी।

जिस दिन साधना को गोली लगी थी उसके दो-तीन दिन के भीतर ही, पुलिस के दमन से परेशान होकर, लोगों ने सरकारी इमारतों पर झंडा फहराने के प्रोग्राम को स्थगित कर दिया। इसी बीच में भारत

सचिव एमरी ने, नेताओं को गिरफ्तार करने की सफाई देते हुए, एक वक्तव्य निकाला। वक्तव्य में बतलाया गया था कि इस बार के आन्दोलन में काँग्रेस सिर्फ सत्याग्रह करके सन्तुष्ट नहीं रहना चाहती थी, इसके विपरीत वह टेलीफोन, पोस्ट आफिस आदि का काम रोक कर, यातायात के साधनों को नष्ट करके, लगान रुकवा कर, अदालतें बन्द कराकर सरकार के शासन-यन्त्र को ही ध्वस्त या बन्द कर देना चाहती थी। इसीलिये काँग्रेस के नेताओं को बन्दी बनाना ज़रूरी हो गया।

इस वक्तव्य का जनता पर अभीष्ट से उलटा प्रभाव पड़ा। अब तक लोग नहीं जानते थे कि इस बार काँग्रेस का क्या कार्यक्रम था, वह कैसे युद्ध करना चाहती थी, एमरी के वक्तव्य ने उन्हें सुझाया कि काँग्रेस उनसे क्या करने की आशा रखती है। फलतः देश में एक नई स्फूर्ति फैल गई। देश के नवयुवक, विशेषतः विद्यार्थी, एमरी के संकेतित कार्यक्रम को कार्यान्वित करने को कटिबद्ध हो गये।

४२

कभी-कभी घटनाएं इतनी तेजी से घटित होती हैं कि उनके कारणों की छानबीन या निर्देश करना असम्भव जान पड़ता है। वे चारों ओर के शून्य से निकलती हुई प्रतीत होती हैं, निरभ्र आकाश से बरसती हुई। साधना के गोली लगना और फिर सहसा आशालता का आ पहुँचना चन्द्रनाथ के लिये कुछ ऐसी ही घटनायें थीं, और फिर यकायक जो देश में जुलूस निकालने और झंडा फहराने के संघर्ष के बदले तोड़-फोड़ का वातावरण पैदा हो गया वह भी नितान्त आकस्मिक था। उस देशव्यापी विप्लव की सम्भावना का आभास न सरकार को ही हो सका था, न काँग्रेस को। स्वयं जनता एक अप्रत्याशित रूप में, न जाने कहां से प्रेरणा लेकर, अचानक एक नये क्रान्तिकारी मार्ग पर चल पड़ी।

सरकार ने अखबार बन्द कर दिये थे, लेकिन प्रत्येक ज़िले, प्रत्येक शहर और प्रत्येक गांव में लोगों की आंखों के सामने देश-व्यापी हलचल का दिन-रात अभिनय होता। आस-पास के क्षेत्रों की खबरें पतझड़ के पत्तों की तरह हवा में फैल जातीं और दूर की महत्वपूर्ण खबरें लोगों के मनःपटल पर कौंध जातीं। कभी-कभी बाहरी समाचार गुप्त पर्चों द्वारा भी फैलाये जाते, पर जनता की बढ़ी हुई संवेदना का मुख्य रहस्य वह आन्तरिक सहानुभूति थी जो सारे देश को एकसूत्रता में बांध रही थी।

दूसरे ही दिन साधना पूर्णतया सचेत हो गई थी, वह इस स्थिति में आ गई थी कि दो-एक बात कह सके। उस दिन भेंट होने पर चन्द्रनाथ से पहला प्रश्न जो उसने किया वह था—आन्दोलन की प्रगति कैसी है, आप लोग क्या कर रहे हैं?

चन्द्रनाथ ने इस प्रसंग को टालना चाहा—उसे लेकर उसका मन असहाय रोष और निराशा से बोझिल था; पर साधना ने फिर प्रश्न दुहराया। लाचार होकर उसने दो-चार जगह के आन्दोलन का विवरण दिया, विद्रोहियों की वीरता का और कुछ दबे शब्दों में पुलिस की नृशंसता का। प्रयाग में छात्राओं के नेतृत्व में जाते हुए शान्त जुलूस पर गोली चलाई गई थी जिससे कई लड़के-लड़कियां घायल हुई थीं, पटने में सरकारी अफसर आर्थर ने सामने सीना खोल कर खड़े हुए ग्यारह वीर छात्रों पर गोली चलवाई जिससे छै वहीं मर गए, फिर भी वहां एक दुबले-पतले वीर छात्र ने सेक्रेटेरियट पर झंडा फहरा ही दिया। दूसरे शहरों में भी ऐसी ही घटनायें हो रही थीं।

'यह तो ठीक नहीं हो रहा है, भैया, ऐसे कब तक बलिदान दिया जायगा', साधना ने कहा।

चन्द्रनाथ—यही तो, मैं समझता हूं आन्दोलन को दूसरा रूप देना होगा, छिपे-छिपे काम करना होगा।

दो दिन बाद वातावरण बदल गया था, और जब चन्द्रनाथ ने

साधना के पास मूर्त्तिमती आशा को देखा तो उसका हृदय नये उत्साह और उल्लास से थिरक उठा।

साधना अब काफ़ी ठीक थी, यद्यपि बीच-बीच में दर्द से कराह उठती थी। चन्द्रनाथ को बैठने का संकेत करती हुई बोली—देखो भइया, मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ। ऐसे अवसर पर मेरी मा-बहिन के रूप में न जाने कहाँ से आशा देवी आ पहुँची हैं। पूछती हूं कैसे खबर मिली, तो कहती हैं, आकाशवाणी से। अखबार भी तो नहीं छपते आजकल।

चन्द्रनाथ—फिर भी खबरें इधर-से-उधर पहुँच ही जाती हैं। कैसे इलाहाबाद के गोलीकांड की खबर यहां आ पहुँची।

साधना—उसी दिन जब आपने मुझे यह खबर सुनाई थी मैंने आशा बहिन को याद की थी। प्रार्थना कर रही थी कि इन्हें कुछ न हो। न जाने क्यों इनसे इतनी मुहब्बत हो गई है।......आह!

पीठ की स्थिति बदलने के प्रयत्न में उसके दर्द उठ बैठा था। आशा ने झुक कर सहारा देते हुए कहा—हिलो-डुलो नहीं जीजी, और ज्यादा बात भी न करो, मैं तुम्हें कहानियाँ सुनाऊंगी।

'हूँ, मैं ऐसी बच्ची भी हूँ।....जाने किस दिन यह दर्द ठीक होगा। पड़े-पड़े परेशान हो जाती हूँ।'

साधना का चेहरा अभी तक बहुत सफेद है, किन्तु कमजोरी ने उसका आकर्षण कम नहीं किया है। उलटे उसकी आँखें ज्यादा बड़ी और कोमल मालूम पड़ती हैं।

आशा ने कहा—तुम बच्ची नहीं हो जीजी इसलिये मैं सच्ची कहानियां सुनाती हूँ।

चन्द्रनाथ—सचमुच इस समय की कहानियां सुनने लायक हैं। (धीरे से) आन्दोलन का नेतृत्व अब विद्यार्थियों ने ले लिया है और वे रात-दिन नये उत्पात खड़े कर रहे हैं। न जाने कितने पोस्ट आफ़िस और स्टेशन लूट लिये गये, कितने टेलीग्राफ़ और टेलीफ़ोन

स्टेशन व्यर्थ कर दिये गये, और कितनी रेल की पटरियां उखाड़ दी गईं।

'सचमुच ? तब रेलें कैसे चल रही हैं ?' साधना ने चकित भाव से कहा।

चन्द्रनाथ—कहां रेलें चल रही हैं ? मुगलसराय से आगे ई० आई० आर० की लाइन टूटी हुई है, छोटी लाइन भी बन्द है; और शायद आज इलाहाबाद और बनारस के बीच की लाइन भी तोड़ दी जायगी।

आशा—सच ? आपको कैसे मालूम ?

चन्द्रनाथ—पक्की बात तो नहीं है, लेकिन यह सम्भावना है। आप एक दिन और न आतीं तो फिर न आ सकतीं।

साधना—भले को आशा बहिन आ गईं, नहीं तो जाने मुझ पर क्या बीतती। और जब लाइन टूट जायगी तो यह जा भी न सकेंगी।

आशा—मैं प्रयाग जाना भी नहीं चाहती, वहां पिता जी बड़ा कड़ा नियन्त्रण रखना चाहते हैं।

अगले दिन बनारस में खबर पहुंची कि बलिया में सरकारी शासन समाप्त हो गया, और जनता का राज्य स्थापित हो गया है। साधना ने जब यह सुना तो बहुत प्रसन्न हुई। बोली—क्या ही अच्छा हो कि इस तरह के शासन काफ़ी जगह स्थापित हो जायँ, और हम लोग उसकी सरकार के खिलाफ रक्षा कर सकें। क्यों भैया, क्या यह असम्भव है ?

चन्द्रनाथ—यदि भारतीय सेना सरकार का साथ न देकर जनता का साथ दे तो यह असम्भव नहीं। पुलिस ने तो कहीं-कहीं अफसरों की आज्ञा भंग की है।

आशा—इसी डर से सरकार अक्सर जगहों पर गोरी फौज़ को भेज रही है। उसे हिन्दुस्तानियों में विश्वास नहीं रहा है।

साधना—इसका मतलब है कि अब उसके अन्तिम दिन निकट आ गये; काश कि हम लोगों के पास कुछ शस्त्र होते।

'लेकिन गान्धीवादी तो शस्त्र-युद्ध के विरोधी हैं', आशा ने चन्द्रनाथ पर अर्थभरी दृष्टि डालते हुए कहा।

चन्द्रनाथ—जहां हम हृदय से शत्रुओं को क्षमा नहीं कर सकते और हममें प्रतिहिंसा की भावना आती है, वहां असहाय भाव से मरने की अपेक्षा शस्त्रों द्वारा आत्म-रक्षा करना कहीं अधिक उचित है। गान्धी जी बराबर इस बात पर जोर देते रहे हैं।

चन्द्रनाथ के घर पर अक्सर इधर-उधर दौड़-धूप करके हारे-थके विद्यार्थी पहुँच जाते, अपने कृत्यों का विवरण देते और आगे के कार्यक्रम के सम्बन्ध में सलाह करते। चन्द्रनाथ को यह सब नितान्त स्वाभाविक, रोचक और महत्वपूर्ण लगता। उसके मस्तिष्क में स्वप्न में भी यह विचार न आता कि इस सबमें कुछ अनुचित हो सकता है। विद्रोही युवक प्रायः रेल, तार आदि उखाड़ने-नष्ट करने की बात करते, मनुष्यों की हत्या उनके उद्देश्य से सर्वथा बाहर थी। फिर भी पुलिस और फौज के दमन की मर्मभेदिनी खबरें सुनकर कभी-कभी उनमें हिंसा की भावना प्रज्ज्वलित हो उठती। उनकी मनोवृत्ति से चन्द्रनाथ भी अप्रभावित न रहता।

ऐसे अवसरों पर कभी-कभी नरेन्द्र भी आ पहुँचता, छात्रगण उसकी रसायनशास्त्र की जानकारी से लाभ उठाने की कोशिश करते। नरेन्द्र इस सम्बन्ध में काफी दिलचस्पी लेकर बातें करता। एक बार उसने कहा—इस प्रकार की लड़ाई मुझे नापसंद नहीं, पहले से खबर रहती तो कुछ केमिकल (रासायनिक) चीज़ें इकट्ठी करके रख ली जातीं।......कोई कारण नहीं कि गोरों की पल्टन के खिलाफ इन चीज़ों का प्रयोग न किया जाता। अहिंसा ने हमें कहीं का न रक्खा।

और तब चन्द्रनाथ को आभास हुआ कि मनुष्य में हिंसा की कैसी सहज प्रवृत्ति है।

धीरे-धीरे सरकार संघर्ष के इस नये तरीके का मुकाबला करने की अभ्यस्त बन रही थी ; गोरी फौज के संचार का क्षेत्र और वेग भी क्रमशः बढ़ रहे थे। गवर्नर हैलेट और कलक्टर नेदरसोल के भीषण कारनामे युक्तप्रान्त की जनता में अवरुद्ध रोष और घृणा के तूफान जगा रहे थे। शतशः शान्त और निरपराध व्यक्ति अंग-भंग किये और मारे जा रहे थे।

साधना का घाव भरने लगा था, लेकिन अभी वह काफी कमज़ोर थी। आशा और चन्द्रनाथ यत्न-पूर्वक देशवासियों के कष्ट की कथायें उससे छिपा कर रखते, और उन की विजय के समाचार कुछ अतिरंजित करके सुना देते। इससे साधना किंचित् प्रसन्नता का अनुभव करती।

प्रायः बीस दिन बाद अस्पताल के अधिकारियों ने यह आज्ञा दे दी कि चन्द्रनाथ साधना को अपने घर ले जाय।

जिस दिन साधना घर पहुंची उस दिन चन्द्रनाथ का हृदय एक अनिर्वचनीय आवेग से आन्दोलित हो रहा था। इससे पहले, कम से कम इस बार, उसने कभी साधना के प्रति इतनी आत्मीयता का अनुभव नहीं किया था। मन-ही-मन उसने किसी अज्ञात के प्रति कृतज्ञता का अनुभव किया कि साधना की जान बच गई, और वह सकुशल वापिस आ गई। उसे आशा के प्रति भी विशेष कृतज्ञता का अनुभव हुआ। अब तक जैसे उसने आशा की उपस्थिति को विशेष महसूस नहीं किया था, अब उसे लगा कि साधना के आरोग्य-लाभ का काफी श्रेय उसे है, और उसने बड़ी ममता से साधना की सेवा की है। भला वह आशा को इसका क्या प्रतिकार दे सकेगा?

वह आशा को धन्यवाद देने लगा। इस पर वह हँस कर बोली—आप समझते हैं जीजी खास तौर से आपकी हैं, मेरी नहीं; यह अन्याय है।

चन्द्रनाथ ने अप्रतिभ होकर कहा—अरे नहीं!

साधना मीठी झिड़की देकर बोली—यह कैसा झगड़ा है, मैं क्या कोई चीज़ हूं जो इसकी या उसकी है।

फिर कुछ रुक कर कहा—सचमुच बहिन, यदि तुम न आतीं तो जाने मेरा क्या हाल होता। तब शायद भैया भी आकर इतनी-इतनी देर मेरे पास न बैठते, क्यों भैया?

उत्तर में उसने बरबस मुस्करा दिया!

साधना ने बड़ी हठ से आशा को इस बात पर राज़ी कर लिया कि उसकी कमज़ोरी की अवस्था में वह रात को उसी के कमरे में आकर सोया करे। अभी तक रेलें अव्यवस्थित दशा में थीं, इसलिये आशा के इलाहाबाद जाने का सवाल नहीं उठता था। यों वह अपने पिता जी को बनारस रहने के इरादे से अवगत कर चुकी थी, और आने के बाद भी दो बार अपना कुशल-समाचार भेज चुकी थी।

४३

आशा सहज प्रसन्नमुख और खुली हुई है। साधना के पास वह सदैव मुस्कुराती हुई आती है, प्रसन्नता बिखेरती हुई-सी। प्रत्येक सांझ में साधना बड़ी उत्कण्ठा से उसकी प्रतीक्षा करती है। उसके अनुरोध से रात को आशा वहीं भोजन करती है, स्वयं साधना के साथ, और सुबह को बिना नाश्ता किये नरेन्द्र के घर नहीं जा पाती। एक दिन आशा ने हँसकर कहा—'जान पड़ता है जैसे जीजी के पास मेरा घर है और भाभी के यहाँ आफ़िस!' साधना ने उत्तर में कहा—'अभी जान ही पड़ता है, यथार्थ नहीं मालूम पड़ता!'

चन्द्रनाथ ने कहा—वास्तविकता यह है कि आप लोग घर की मालिक हैं और मैं मेहमान, तभी तो मेरी सब से ज़्यादा खातिर होती है।

साधना—बिल्कुल झूठ! यह तो दिन की तरह प्रत्यक्ष है कि घर की मालकिन सबसे ज़्यादा खातिर मेरी करती हैं। घर में असली मेहमान मैं ही हूँ।

आशा की मुस्कराहट मूक हास में परिवर्तित हो गई। लज्जा उत्पन्न करनेवाले परिहास के अवसर पर प्रायः उसके मुख पर गीली लालिमा नहीं दौड़ती, वह इसी प्रकार हँस देती है। उसके चेहरे पर संकोचपूर्ण लज्जा का भाव चन्द्रनाथ ने विशेष रूप से एक ही बार देखा है, नरेन्द्र के घर में, जहाँ पहली बार उससे भेंट हुई थी। इस बार आशा में एक दूसरा परिवर्तन लक्षित होता है, वह यथाशक्ति चन्द्रनाथ के चेहरे पर सीधी दृष्टि नहीं डालती। साधना-सम्बन्धी चिन्ता को लेकर कभी-कभी जब वे एकान्त में बात करते होते हैं तब ही उनकी दृष्टियाँ एक-दो बार मिल जाती हैं, वैसे आशा की दृष्टि हमेशा दूसरी दिशा में तकती मालूम पड़ती है। वह कभी वक्रता से भी किसी खास दिशा में देखने की चेष्टा नहीं करती।

लगता है जैसे आशा में किसी प्रकार की आवेगात्मक गांठ नहीं है। उसका व्यक्तित्व अवरुद्ध वासनाओं के स्पन्दन और संघर्ष से सर्वथा मुक्त जान पड़ता है।

बहुत थोड़े दिनों के अन्तराल के बाद वह इस बार इलाहाबाद से लौट आई थी, फिर भी, मस्तिष्क का आलोड़न करनेवाली घटनाओं की बहुलता के कारण, चन्द्रनाथ को लगता था जैसे वह बहुत काल बाद और बहुत परिवर्तित होकर बनारस आई है।

कालेज बन्द होने के कारण आजकल उसे दिनभर घर पर ही रहना होता। साधना के साथ वह भी उत्कण्ठा से आशा के आगमन की प्रतीक्षा करता, पर वह इस उत्कण्ठा को शब्दों द्वारा प्रकट न करता।

इच्छा रहने पर भी वह दिन में नरेन्द्र के घर बहुत कम पहुँच पाता। बात यह थी कि साधना अकेले परेशानी महसूस करती थी। डाक्टर ने कहा था कि गोली लगने की घटना का साधना के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ा है, इसलिये यह ज़रूरी है कि शरीर के साथ उसके मन की चिन्ता भी रक्खी जाय। उसके मस्तिष्क को विशेष

उत्तेजना और आघात से दूर रहना चाहिए। अतः चन्द्रनाथ साधना को शांत और प्रसन्न रखने की विशेष चेष्टा करता।

सरकार का देशव्यापी दमन-चक्र निश्चित वेग से चल रहा था। केवल अमन स्थापित करने की नहीं बल्कि प्रतिशोध की भावना से सरकारी कर्मचारी जनता पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे। जहां आन्दोलन जितना ही अधिक उग्र हुआ था वहां उतना ही तीक्ष्ण दमन और अत्याचार हो रहा था। बलिया जिले में आठ-सात पुलिस स्टेशन पूर्णतया जला दिये गये थे, बलिया की कोतवाली बरबाद कर दी गई थी। अनेक थानों में पुलिस की बन्दूकें छीन ली गई थीं। बलिया में तीन-चार दिन पूर्णतया जनता का राज्य रहा था—अंग्रेजी शासन बिल्कुल खत्म कर दिया गया था। फलतः बलिया के प्रति सरकार के रोष की सीमा न थी। मार्शल स्मिथ और नेदरसोल, गवर्नर हैलेट के प्रधान सलाहकार, बाईस अगस्त को फौज के साथ बलिया पहुँच गए थे और वहां उन्होंने यथेष्ट लूटमार और अत्याचार किये। सैकड़ों कांग्रेसियों के घर लूटे और जलाये गये और हज़ारों स्त्रियों और बच्चों को घरों तथा गांवों से बाहर निकाल दिया गया। कुछ भले घर की स्त्रियों के सिर के बाल काट दिये गए और बहुतों के गहने-कपड़े छीन कर उन्हें पुराने, मैले-कुचैले कपड़े पहनने को मजबूर किया गया। बहुत से लोगों को बिना अन्न-पानी घरों में बन्द कर दिया गया, कितनों को पेड़ों से बांध कर पीटा गया। एक बूढ़े कांग्रेसी कार्यकर्त्ता को ज़बर्दस्ती एक पेड़पर चढ़ने को कहा गया, जब उनका शरीर नीचे रपटने लगता तो पुलिस के सिपाही उन्हें राइफिल की नोक से मारते और नीचे न उतरने की कठोर आज्ञा देते। थोड़ी देर में वह वृद्ध व्यक्ति थककर पेड़ से नीचे गिर पड़ा। इतनी यातना देकर भी सन्तोष न करके उस वृद्ध को सात वर्ष का कठिन कारावास दिया गया।

मनुष्य ही नहीं अनेक पशु भी पुलिस के रोष के शिकार हुए।

एक महन्त के हाथी और कई किसानों के बैलों को गोली मार दी गई। पुलिस ने जगह-जगह घरों में घुस कर सन्दूक़ तोड़ डाले और सामान लूट लिया। दर्जनों गांवों में पुलिस ने कोई भी उपयोगी सामान बाकी नहीं छोड़ा। मानो सरकार भारतीय जनता के साथ भारत की सम्पत्ति को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहती थी।

देश के कोने-कोने से इस प्रकार के अत्याचारों की खबरें आ रही थीं। पुरुषों के प्राण और स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण गोरी फौज और पुलिस के लिये साधारण घटनायें थीं। चन्द्रनाथ और आशा इसकी भरसक कोशिश करते कि ये खबरें साधना तक न पहुँचें।

एक-डेढ़ महीने के भीतर, पुलिस और फ़ौज के दमन से संत्रस्त होकर, विद्रोहियों का आन्दोलन शान्त और समाप्त-सा दिखाई देने लगा। अखबार निकलने लगे। अब भी कहीं-कहीं से रेल की पटरियों तथा तार-टेलीफ़ोन आदि के खम्भों के काटे-उखाड़े जाने की खबरें आतीं, लेकिन क्रमशः इन घटनाओं की संख्या कम होने लगी। अक्तूबर आते-आते सन् बयालीस का वह आन्दोलन बहुत-कुछ ठंडा पड़ गया। लगता था जैसे जनता का जोश खत्म हो गया; किन्तु वास्तविकता कुछ भिन्न थी। बाहरी अभिव्यक्ति में रुद्ध होकर जनता के रोष एवं असंतोष की अग्नि भीतर-ही-भीतर दूने वेग से धधक रही थी। यह अग्नि भीतर-ही-भीतर विदेशी शासन की जड़ों को जला कर राख कर रही थी।

४४

साधना के स्वभाव में कुछ स्पष्ट परिवर्तन हुआ है। कभी-कभी वह बहुत अधिक मधुर हो उठती है और उस समय लगता है कि वह अपने ममता-माधुर्य में आस-पास के लोगों को सिर से पैर तक डुबो देगी। वह आशा के गले में बाँहें डाल देती है और कहती है—

'तुम मुझे कितनी अच्छी लगती हो, कितनी प्यारी; तुम इतनी अच्छी हो तो इलाहाबाद क्यों वापस जाना चाहती हो, क्यों जाओगी ? अकेले भला मेरा कैसे जी लगेगा ? विश्वविद्यालय भी तो बन्द है।' कभी-कभी अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी घटित हो जाने पर वह सहसा नाराज़ हो जाती है। ऐसे अवसर पर वह निर्दोष या अल्पदोषी शिवसरन को बुरी तरह डांट देती है। बीमारी की घटना ने उसमें हुकूमत करने की प्रवृत्ति को विकसित या प्रबुद्ध कर दिया है। चन्द्रनाथ भरसक कोशिश करता है कि कोई बात उसकी इच्छा के विरुद्ध न हो।

एक दिन वह यकायक चन्द्रनाथ से बोली—तुम मेरी बात क्यों नहीं मान लेते, कितनी बार कह चुकी हूँ।

चन्द्रनाथ ने चकित होकर कहा—कौन-सी बात तुम्हारी मैंने नहीं मानी ?

'कौन-सी बात तुमने मानी है; मैं पूछती हूं तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते ?'

'यह तो सिर्फ मेरे बस की बात नहीं है, रानी। कोई लड़की मुझे पसन्द करेगी ?'

'क्यों नहीं पसन्द करेगी, ऐसा तुम में कौन-सा ऐब है।' फिर कुछ रुक कर कहा—'अच्छा आशालता कैसी लड़की है ?'

चन्द्रनाथ—देखो रानी, बात सोच-समझ कर करनी चाहिए। आशा ने तुम्हारी बहुत सेवा की है; ऐसा न हो कि वह ऐसी ऊटपटांग बातों से नाराज़ हो जाय।

साधना—कोई मुझसे नाराज़ हो या खुश, इससे तुम्हें मतलब ? तुम मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देते ?

चन्द्रनाथ खामोश रह गया।

साधना—फिर वही चुप्पी, तभी तो कहती हूं कि मुझे जानबूझ कर परेशान करते हो।

चन्द्रनाथ—तुम्हारी बात का क्या जवाब दूं, मान लिया कि आशा भली लड़की है—और भली तो वह है ही, जितनी समझदार है उतनी ही सहृदय भी।

साधना—वही, वही, मैं जानती थी। तो फिर……तुम भी भइया निरे अनगढ़ आदमी हो, उतने सीधे होने से कहीं काम चलता है।

चन्द्रनाथ के मन में भय हुआ, न जाने यह लड़की किस से क्या कहे, और कोई उसका क्या अर्थ लगाए।

और आज उसे लगा कि उसमें, तीस से कई वर्ष इधर की इस अवस्था में ही, न जाने कैसा परिवर्तन हो गया है। शरीर से नहीं तो मन मे वह जाने कितना वयस्क और ज़रूरत से ज़्यादा गम्भीर बन गया है। क्यों नहीं वह इतने दिनों तक कहीं किसी लडकी से प्रेम करने लगा ? क्यों नहीं आज वह किसी के प्रति प्रणय-निवेदन करने की और उसके बाद, तिरस्कार या रुखाई मिलने पर, उत्कट प्रेमियों की भांति विरहाश्रु बहाने और विरह गीत लिखने की हिम्मत या कल्पना कर पाता ?

किसी ज़माने में वह सुन्दर प्रेम-पत्र लिख सकता था, लिखता था, अब उसे लगता है कि उसके लिये उस प्रकार के पत्र लिखना अशक्य है, और अवांछनीय भी, निरा लड़कपन; भला उतना उत्कट और अमर्यादित प्रेम कहीं बुद्धिजीवी प्राणी को शोभा देता है। अन्ततः नर-नारी के सम्बन्ध में इतना रहस्यमय और पवित्र है ही क्या ?

एक दिन उसने आशा आदि के सामने एक नितान्त गहरे तादात्म्य सम्बन्ध की बात की थी, ऐसे तादात्म्य का कल्पना वह बहुत दिनों से करता आया है। किन्तु असली जीवन में कहीं वैसा तादात्म्य होता है ?……यथार्थ जीवन में नरनारी शरीर के माध्यम से ही मिलते हैं, मिल सकते हैं, उनके मनों और आत्माओं का ऐक्य कहां घटित होता है ?

फिर भी इधर उसे नारी की आवश्यकता का पर्याप्त अनुभव हुआ है। अन्ततः, शायद शरीर की मांग के कारण ही, मनुष्य नारी को खोजता है। साथी को, ऐसे साथी को जिसे अंशतः मित्र भी कहा जा सके, खोज भी कुछ हद तक होनी ही है। और जब पुरुष नारी को खोजे तो क्या हर्ज है कि वह साथ ही एक सहने योग्य साथी को भी खोज ले !

उसका ध्यान बरबस आशालता की दिशा में प्रधावित होने लगा।

काफ़ी दिनों से वह इस लड़की को जानता है, यद्यपि विशेष निकट से उसे पिछले कुछ महीनों में ही देख सका है। उसके व्यक्तित्व में सहज शालीनता और सुघराई है, सहज सुविचारशीलता तथा बुद्धि। उसमें सहज प्रसन्नता है, और सहज कोमल आकर्षण। वह इस आकर्षण के बारे में सोचता है, उसका स्वरूप और केन्द्र क्या है?

साधना के संकेत में अनुचित क्या है ? और अनहोनी भी क्या बात है ? क्यों न वह फिर विवाह करे, फिर एक नारी को, उसके शरीर और मन को, अपने में सम्पृक्त अनुभव करे? और वह महसूस करता है कि काफ़ी दिनों से, अपने अन्तर्मन में, वह आशा के सम्बन्ध की इच्छा करता रहा है।

इस बार वह प्रयाग से सहसा क्यों चली आई ? क्या सचमुच उसे साधना से इतना स्नेह है ? यह भी क्या एक कारण नहीं है कि वह आशा के प्रति कृतज्ञतापूर्ण ममत्व का अनुभव करे।

वह चाह रहा है किसी तरह जल्दी-से-जल्दी इस प्रश्न का निपटारा हो जाय। उसे अपने भीतर एक विचित्र लालसा और वेदना का स्फुरण महसूस हो रहा है।

आशा आकर्षक है, कोमल और सौम्य रूप में, उसके आकर्षण में किसी प्रकार की मादकता का समावेश नहीं है। वह जैसे सहज मैत्री की प्रतिमूर्ति है।......उसका व्यक्तित्व किसी अतर्कित रूप में महत्वशाली नहीं है, उसका सौन्दर्य और आकर्षण असीमित नहीं

है—चन्द्रनाथ को इस सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं। उसकी प्राप्ति या सम्बन्ध के लिये कोई लम्बा-चौड़ा प्रयत्न, कोई बड़ी तपस्या अपेक्षित नहीं होनी चाहिये। फिर भी तो यह जानना ही होगा कि स्वयं उसका मन क्या है; उसके राग-विरागों, पसन्द-नापसन्द की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती।

अपने समझाने को वह कहता है—मादक सौन्दर्य की अपेक्षा यह सहज स्वच्छ आकर्षण ही अधिक वांछनीय है, और यह सहज शान्त स्वभाव भी। साथ ही उसके हृदय में यह सन्देह भी उठता है, यदि आशा नाहीं कर दे तो? तो उसे सचमुच मर्मान्तिक कष्ट होगा।......कैसे वह आशा की भावनाओं की साक्षात् चेतना प्राप्त करे?

सांझ को साधना ने कमरे में घुमते हुये कहा—मैं आज दोपहर-भर यही सोचती रही हूं। लड़की तुम्हें पसन्द है न?

वह आप ही अर्ध-शुष्क भाव से हँसी। फिर बोली—काफी बुद्धिमती और सरल प्रकृति है, आखिर तुम और चाहते क्या हो, सब तुम्हारी तरह "जीनियस" तो होते नहीं। उचित तो यही है कि तुम स्वयं उससे एकान्त में प्रस्ताव करो, लड़कियां चाहती भी यही हैं। ......नहीं तो फिर सब मुझे ही ठीक करना होगा।

साधना का यह "मूड" चन्द्रनाथ की समझ में नहीं आया। जैसे वह आशा पर विशेष अनुकम्पा करने जा रही हो, वह जो कल तक उसके प्रति इतनी कृतज्ञ थी। कहीं आशा इस प्रच्छन्न अनुकम्पा-भावना से अपमानित न महसूस करे। कुछ संकोच के साथ बोला—रानी, एम० ए० फ़र्स्ट क्लास राजनीति की विद्यार्थिनी से जरा सँभल कर बात करनी होगी।

साधना फिर पहले की भांति हंसी। बोली—जानती हूं, इतनी अबोध नहीं हूँ। लेकिन प्रतिभा के क्षेत्र में फ़र्स्ट क्लास ही सब-कुछ नहीं होता भइया, यों तो तुमने भी सिर्फ फ़र्स्ट क्लास ही पाया है।

इतने में आशा आ पहुँची, और आते ही दोनों को नमस्ते किया। नमस्ते का उत्तर देकर चन्द्रनाथ अपने कमरे में घुस गया, और साधना, विशेष स्नेह के प्रदर्शन के साथ, आशा को अपने कमरे में लिवा गई।

पता नहीं साधना और आशा में क्या-क्या बातें हुईं, तीव्र उत्कंठा रहते हुए भी चन्द्रनाथ उनके निशाकालीन संलाप का कोई अंश न सुन सका। किन्तु सुबह में जब आशा शिवसरन को साथ लेकर नरेन्द्र के घर की ओर जा रही थी तो उसने महसूस किया कि वह कुछ अधिक सतर्कता से उससे बचने की कोशिश कर रही है। उसकी गति में भी, उसे लगा, क्षिप्र असमंजस का भाव है। तो क्या साधना और उसके बीच उस सम्बन्ध की कोई चर्चा हुई है ?

दूसरे दिन आशा ने इलाहाबाद जाने का इरादा किया। इस बार नरेन्द्र के साथ चन्द्रनाथ भी उसे पहुँचाने स्टेशन गया। पांच मिनट को पानी के प्रबन्ध के लिए गये हुए नरेन्द्र की अनुपस्थिति पाकर चन्द्रनाथ ने आशा को साधना की देखभाल के लिये विशेष धन्यवाद दिया और फिर धीमे, किंचित् उदास स्वर में कहा—इस बार आपकी विशेष याद आएगी।

क्षण भर आशा कुछ नहीं बोली, फिर उसकी दृष्टि बचाते हुये उत्तर दिया—मुझे भी आपकी याद आयेगी.......और जीजी की भी, उनसे एक बार फिर मेरी नमस्ते कह दीजियेगा।

आशा को पहुंचा कर वापिस आने पर साधना ने चन्द्रनाथ से कहा—पहुंचा आये ? कुछ बातचीत भी हुई ? तुम समझते हो तुम्हें सब लड़कियां उतनी ही आसानी से मिल जायँगी जैसे मेरी जीजी मिल गई थीं।

यह कह कर वह हंसी। फिर बोली—भई, लड़की उतनी सीधी नहीं है जैसी देखने में मालूम पड़ती है। तभी तो मैं उसके मन की बात न निकाल सकी। पहले तो आपने हंसते-हंसते कहा—'यह आज

क्या नया राग सूझा है जीजी ? भला छोटों से कहीं ऐसी हंसी करनी चाहिए !' और अन्त में कहा—'इस प्रकार का निश्चय तो पिता जी ही कर सकते हैं, और कुछ हद तक भैया।'

चन्द्रनाथ का चेहरा उतर गया; सोचा, टालने के लिये ही ऐसी बातें कही जाती हैं। बोला—तुम यों ही किसी के सिर होने लगती हो, रानी; जाने उन्होंने क्या समझा होगा।

साधना—समझा क्या होगा, ऐसी मैंने कौन अनहोनी बात कही थी। आखिर मेरे भैया में कोई ऐब तो है नहीं, कहाँ ऐसा स्नेही और प्रतिभाशाली पति मिलेगा।

चन्द्रनाथ—प्रतिभा की परख "एचीवमेन्ट" (लब्धि) से होती है, रानी ; भला यहाँ अब तक क्या किया है ?

उसे यह सोच कर सचमुच ग्लानि हुई कि पिछले कुछ वर्षों में वह इतना कम लिख पाया है। काफ़ी दिन पहले उसने एक महाकाव्य की रूप-रेखा बनाई थी, पर अभी तक उसे शुरू भी नहीं कर सका। विद्रोहियों के पहले जुलूस के दिन भी उसके हृदय में एक नई कृति लिखने की स्फूर्ति हुई थी, ऐसी कृति जिसका केन्द्र दुखी, दलित मानवता हो—पर वह भी अभी प्रारम्भ नहीं की जा सकी है।

साधना ने कहा—लेकिन एक बात मैं कहे देती हूँ, यदि उस लड़की में बुद्धि है तो मेरे प्रस्ताव को अस्वीकृत न कर सकेगी। यों उसकी बातचीत से यह बिलकुल आभास नहीं हुआ कि वह उससे तनिक भी नाराज़ है। इसके विपरीत संकेत तो मिले।

कुछ रुककर कहा—और यदि मेरी आँखें धोखा नहीं खातीं तो मैं इससे पहले भी उसका तुम्हारे प्रति विशेष ममत्व का भाव देख चुकी हूँ, विशेषतः उस दावत के दिन।

चन्द्रनाथ—रानी, सहज शिष्टता की ग़लत व्याख्या नहीं करनी चाहिए।...और मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों तुम इस समस्या को लेकर इतनी परेशान हो। तुम्हारी बातों से कोई सोचेगा

मानो हम लोग इस चीज़ के लिये बहुत ज्यादा उत्सुक हैं।

किन्तु वास्तव में उसमें इस सम्बन्ध को लेकर काफ़ी औत्सुक्य जगने लगा था। साधना के विश्व विद्यालय चले जाने पर यह औत्सुक्य और भी बढ़ा हुआ मालूम पड़ने लगा। रह-रह कर उसे लगता जैसे वह कहीं से कुछ संवाद पाने की बाट जोह रहा है। वह कई बार नरेन्द्र के घर भी गया, कई बार सावित्री के निकट होकर बात करने की कोशिश भी की, पर उसे अपने सम्बन्ध में आशा के मनोभाव का कुछ भी पता नहीं चला। उसे आशा के प्रति खीझ होने लगी।

एक दिन उसने सोचा कि आशा को एक पत्र लिखे, पर, न जाने क्या क्या सोच कर, वह रुक गया। पत्र में आशा का पाणि-प्रार्थी बनते हुए उसे लज्जा के साथ भय भी लगता था। कहीं पत्र उसके पिता के हाथ में पड़े, तो... ... ?

४५

आशा के प्रयाग जाने के प्रायः दस दिन बाद चन्द्रनाथ को एक पत्र मिला। पत्र आशा का था, और साधना के नाम। काफ़ी अन्तर्द्वन्द्व के बाद, साधना की अनुमति की पर्वाह न करके, चन्द्रनाथ ने पत्र खोल लिया। लिखा था—

प्रिय जीजी,

बड़ा मुश्किल से यह सप्ताह प्रयाग में काट सकी हूँ, न जाने आप लोगों ने कैसा जादू कर दिया है। इससे पहले मैंने कभी अनुमान नहीं किया था कि मैं इतनी "सेन्टीमेन्टल" (भावुक) हूँ। क्यों आप मुझसे यकायक इतना स्नेह करने लगीं, और क्यों मुझे ही आप इतनी अपनी लगने लगीं, इसका कारण मैं खोजने पर भी नहीं जान सकी हूँ। आपके पास होने पर लगता है जैसे आप से कब का पुराना सम्बन्ध है।....इस सब का कारण आपकी सहज उदारता और स्नेह-

शीलता ही हो सकती है, क्योंकि मुझमें सचमुच कोई वैसा गुण नहीं है।

मानो इतना अपनेपन का सम्बन्ध काफ़ी नहीं है यह सोचकर आपने उस दिन वह प्रस्ताव कर डाला, ताकि मैं कभी आपके बन्धन से निकल न सकूँ। इस बांध रखने की कला में आप कितनी निपुण हैं! जीजी, जब से मैं आई हूँ तब से बराबर उसी सम्बन्ध में सोचती रही हूँ। क्या सचमुच मैं उस पद के योग्य हूँ, अथवा पक्षपातवश आप मुझे वैसा समझती हैं? जीजी, मैं एक नितान्त साधारण लड़की हूँ, अतः नहीं समझती कि किसी असाधारण व्यक्ति के योग्य हो सकती हूँ। फिर मेरे पक्षपातवश आप किसी को इतने महत्वपूर्ण सम्बन्ध के लिये मजबूर करें, यह उचित नहीं। मैं यह भी सोचती रही हूँ कि विवाह से पहले आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन जाऊँ ताकि मैं किसी को भार-स्वरूप न जान पड़ूं।

आपकी स्नेह-भाजन,
आशा

फिर पुनश्च के पश्चात् लिखा था—

यदि मुझे अपनी सीमाओं की इतनी तीव्र चेतना न होती तो मैं आपके आदेश का पालन करना अपना सौभाग्य समझती। मेरी बात का विश्वास करते हुए रुष्ट न होंगी।—आशा

चन्द्रनाथ ने एक सांस में पत्र पढ़ डाला, और फिर दूसरी बार भी पढ़ा। उसे लगा कि देखने में पत्र जितना सरल है, उतना ही जटिल भी है। क्या साधना पत्र का अभिप्राय ज्यादा ठीक से समझ सकेगी?

पत्र उसने पास ही पड़ा रहा। दो दिन बाद, काफ़ी सोचने-समझने के पश्चात्, वह बैठ कर आशा को पत्र लिखने लगा। शुरू में ही सम्बोधन की समस्या उठी, कैसे वह उस लड़की को सम्बोधित करे? बहुत सोचने के बाद उसने लिखा—

सुश्री आशा,

आरम्भ में ही मैं स्वीकार कर लूं कि मैंने अपराध किया है। रानी यहाँ नहीं हैं, कई दिन पहले विश्वविद्यालय चली गईं। अतः आपका पत्र मुझे मिला, और मैंने उसे खोल लिया। क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अवश्य ही पत्र खोलने में कोई कारण रहा होगा जिसका आप अनुमान कर सकती हैं। ट्रेन में आपके चलते समय मैंने कुछ कहा था; क्या उसका अर्थ स्पष्ट न था? क्या और खुल कर कहना ज़रूरी है?

'मेरे पक्षपात-वश आप किसी को इतने महत्वपूर्ण सम्बन्ध के लिये मजबूर करें!'—आप यह क्यों भूल जाती हैं कि कुल मिलाकर जीजी मेरे ज़्यादा निकट हैं, और मेरी इच्छाओं को ज़्यादा अच्छी तरह जानती हैं। तब 'मजबूर करने' का प्रश्न ही कहां उठता है? और क्यों वे मुझे, मेरे सुख का खयाल किये बिना, मजबूर करेंगी? शायद आप को 'मजबूर' किये जाने की भावना हुई हो।....आपने "अपनी सीमाओं की तीव्र चेतना" का उल्लेख किया है; मैं इस चेतना को महत्ता का द्योतक मानता हूं। मैं केवल यही कह सकता हूं कि उस प्रकार की धारणा निर्मूल है, और उसके आधार पर कोई निर्णय करना किसी के प्रति अन्याय।...आप के पत्र का 'असाधारण' विशेषण 'अग्राह्य' अथवा 'भाग्यहीन' का पर्याय जान पड़ता है। भविष्य में ऐसी कठोर पदावली का प्रयोग नहीं करेंगी।

आपका अपना,
चन्द्रनाथ

दोबारा पढ़ने पर उसे लगा कि पत्र पूर्णतया नीरस है, शुष्क गद्य। उसकी समझ में नहीं आया कि उसमें किस साहस और किस ढंग से वह कोई संशोधन करे।

चार-पांच दिन बाद सहसा नरेन्द्र की प्रयाग से बुलाहट हुई। चलने का इरादा प्रकट करते हुए नरेन्द्र ने चन्द्रनाथ से पूछा--तुम्हें या तुम्हारी बहिन को कोई मैसेज (संदेश) तो नहीं भेजनी है।

'सुविधा हो तो रानी से मिलते जाओ', चन्द्रनाथ ने उत्तर में कहा।

उसी सांझ को डाक से उसे आशा का पत्र मिला। उसने देखा कि सम्बोधन की पंक्ति में कोई शब्द लिखकर काट दिया गया है। लिखा था—

प्रिय चन्द्रनाथ बाबू,

आप का पत्र पाकर न जाने कैसी मिश्रित भावनायें मन में उठीं। एक नई अनुभूति, नया कम्पन और नया उल्लास। सचमुच मैं अपनी प्रतिक्रिया को ठीक से नहीं प्रकट कर पाती। और अब पत्र लिखते समय भी मैं पूर्णतया "नार्मल" नहीं महसूस करती। दिल धड़क रहा है। इसीसे अनुमान करती हूं कि यह एक बहुत बड़ा कदम है, बहुत बड़ा निश्चय। तभी तो आप को इतने दिनों से जानते हुए भी आशंकित हूं।.......क्या आप मुझ से पूर्णतया सन्तुष्ट हो सकेंगे? पूर्णतया, और हमेशा? क्या मुझे हृदय से यह अधिकार दे सकेंगे कि मैं..... आप को......अपना समझूं, केवल अपना? नारी पूर्ण समर्पण करना चाहती है, और पूर्ण अधिकार भी। क्या मैं विश्वास करूं कि आपने यह सब सोच-समझ लिया है?

मेरे इन प्रश्नों का बुरा नहीं मानेंगे, मेरा मन कहता है कि ये प्रश्न व्यर्थ हैं।.......आप मेरे अनजाने नहीं हैं। सुना था कवि लोग अस्थिर चित्त और चंचल मनोवृत्ति के होते हैं, मैं जानती हूँ आप वैसे नहीं हैं। फिर भी......यह सब लिख रही हूं, यद्यपि मन में कोई कहता है कि यह बात तो तय हो ही चुकी। कुछ आर्थिक कठिनाइयां भी दीख रही हैं पर शायद उन्हें हल करना कठिन न होगा। मेरे नौकरी करने में आप को आपत्ति नहीं होगी न? यों तो आपके विचार अनेक बार सुन चुकी हूं।

अन्त में, मैं फिर दुहराती हूँ कि आप अच्छी तरह सोच कर निश्चय करें; ऐसा न हो कि अपनी स्वाभाविक उदारता के कारण आप अपने को सहज ही बँध जाने दें।

मैंने भैया को बुलाया है। वे पिता जी से और फिर आपसे बातें करेंगे।

आपकी अपनी,
आशा

पत्र पढ़कर चन्द्रनाथ को महसूस हुआ कि सचमुच विवाह की घटना कोई साधारण वस्तु नहीं है। कितना बड़ा दायित्व और बन्धन है वह ! आशा ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं किया, यह जानकर उसे सन्तोष हुआ। किन्तु उसकी मनोवृत्ति और चरित्र के सम्बन्ध में आशा की कितनी ऊंची धारणा है, क्या वह इस धारणा का पात्र है ? क्या उसका यह कर्तव्य नहीं कि वह इस सम्बन्ध में आशा के भ्रमों का निवारण करे, उसे बता दे कि वह इतना स्थिरचित्त और चरित्रवान् नहीं है; कि वह....

उसका चित्त खिन्न हो उठा, और वह छत पर पहुँच कर आगे-पीछे घूमने लगा।

उसने संकल्प किया कि आशा से विवाह करके वह कोई ऐसा काम न करेगा जिससे आशा के चित्त को क्लेश हो। और उसने सोचा कि इतना पर्याप्त होना चाहिये। यह जानते हुए कि उसके अतीत अपराधों के मूल में दुर्निवार परिस्थितियाँ थीं, आशा अवश्य ही उसे क्षमा कर सकेगी।

यदि नरेन्द्र प्रयाग गया हुआ न होता तो वह आशा के पत्र का उत्तर उसी समय लिख देता ; पर कहीं पत्र नरेन्द्र के हाथ में न पड़े, यह सोचकर वह उसके वापिस आने की बाट जोहने लगा।

४६

आशा के उक्त पत्र के मिलने की घटना को दो मास से ऊपर बीत चुके थे। बड़ी मुश्किल से चन्द्रनाथ ने यह अवधि काटी थी, बड़ी उत्कण्ठा में, उत्कण्ठाभरी, प्रतीक्षा में। और आज जब वह

दिन और घड़ी जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहा था आ पहुँची थी तो वह प्रसन्नता से अधिक संभ्रम और आकुलता महसूस कर रहा था।

आज आशा उसके घर में मौजूद थी, वधू के रूप में; आज, उनकी सुहाग-रात थी।

दोनों पक्षों की सम्मति से यह तय हुआ था कि विवाह शीघ्र हो और, देश की स्थिति देखते हुए, दोनों ही ओर से यह इच्छा प्रकट की गई थी कि वह रस्म नितान्त सादे ढंग से अनुष्ठित हो। चन्द्रनाथ ने इस अवसर पर किसी को बदायूँ से बुलाना उचित नहीं समझा, कालेज के तथा बाहर के कतिपय मित्र ही वर-यात्रा में साथ जा सके थे। इन मित्रों में हरीजी भी थे जिन्होंने काफ़ी हद तक चन्द्रनाथ के अभिभावकत्व का बोझ संभाला। सहज ही वे बरात के मुख्य प्रबन्ध-कर्ता बन गए। क्योंकि चन्द्रनाथ ने अपना उपालम्भ-पत्र उनके पास नहीं भेजा था, अतः, बाहर से देखने पर, दोनों के सम्बन्ध में विशेष अन्तर नहीं पड़ा था। क्रमशः समय बीतने पर यह सम्बन्ध बहुत-कुछ पहले जैसा बन गया था। विवाह के अवसर पर प्रदर्शित सरपरस्ती एवं सद्भावनाओं के लिये चन्द्रनाथ ने उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ महसूस किया।

घर में वधू की अगवानी और खातिर का भार साधना पर पड़ा था। उसके निकट आते ही आशा चरणों में गिरने को झुकी थी, पर साधना ने बीच ही में पकड़ कर उसे सीने से लगा लिया था। इस दृश्य से चन्द्रनाथ की आँखों में बरबस आँसू आ गये थे। क्यों स्नेह का प्रदर्शन इतना करुण होता है?

'तुम उदास क्यों हो भैया, अब तो तुम्हें खूब खुश होना चाहिये,' कह कर साधना विशिष्ट ढंग से हँस दी थी। उसके व्यवहार में वह अल्हड़ उत्साह न था जो इस अवसर पर स्वाभाविक होता। स्वयं चन्द्रनाथ भी वैसी उमंग का अनुभव नहीं कर रहा था जैसे उसके

प्रथम विवाह के अवसर पर की थी। इसीलिये, अपनी मनः स्थिति का संकेत देते हुए, उसने साधना से, और उसके द्वारा सावित्री से, यह विनय की कि वे सुहागरात को लेकर कोई कौतुक न खड़ा करें।

साधना समझ गई थी, और आशा के आगमन के दूसरे दिन उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि नीचे एक-दो नौकरों को छोड़ कर घर में कोई न रहा। वह स्वयं भी बहाना करके विश्व-विद्यालय चली गई।

अगहन का महीना था, आशा इस समय अपने कमरे में थी, वही दम्पती का शयन-कक्ष निर्धारित हुआ था। चन्द्रनाथ बाहर छत पर टहल रहा था।

उसके जीवन में यह दूसरा अवसर था जब कि वह नवागता पत्नी के पास पहुँचने की तैयारी कर रहा था। अवसर उसके लिये दूसरा था, पर आशा के लिये पहला, वह अवसर जो नारी जीवन में प्रायः एक ही बार आता है। चन्द्रनाथ याद कर रहा था कि पहले अवसर पर उसने क्या महसूस किया था, और आज इस दृष्टि से क्या परिवर्तन हो गया है। उसे याद है पूर्व पत्नी से मिलन की उस प्रथम रात में उसमें कितना तीव्र कुतूहल था, कितनी उत्सुकता और कितना अधैर्य। आज उसमें उतना कुतूहल है न अधैर्य, इसके विपरीत वह जान-बूझ कर कुछ मिनटों की देर कर रहा है। आशा से वह पहले से परिचित है, एक सहज सुहृद् के रूप में; आज वह उसके प्रति इस विशेष सम्बन्ध को कैसे प्रकट करेगा ?

उसे लग रहा है कि आशा उसकी तुलना में नितान्त अबोध है, नितान्त अकलुष और शुद्ध। उम्र में वह उससे बहुत अधिक छोटी नहीं है, फिर भी उसे लगता है कि उन दोनों में बड़ा अन्तर है। उसके हृदय में आशा के प्रति वात्सल्य-मिश्रित ममत्व उमड़ रहा है।

धीरे से मोटे खद्दर का पर्दा और भिड़ा हुआ एक किवाड़ हटा कर वह कमरे में घुसा।

आशा पलंग से कुछ दूर पड़ी एक कुर्सी पर बैठी थी, उसके घुसते ही वह सहसा उठकर खड़ी हो गई। उसके सिर तक साड़ी पहनी हुई थी, पर मुख पर अवगुंठन न था; उसकी निम्न दृष्टि चन्द्रनाथ की ओर से समकोण बनाती हुई दिशा में थी, और शायद बहुत थोड़ा-सा उसकी ओर होने का प्रयत्न कर रही थी।

आशा की यह भारतीय शालीनता उसे प्रिय लगी। धीरे-धीरे वह उसके समीप पहुँचा और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर धीमे स्वर में बोला—आशा!

आशा की पुतलियाँ कुछ ऊपर उठीं, पर उसके मुख तक नहीं। चन्द्रनाथ ने उसके हाथ को अपने होठों तक उठाते हुये उसकी अंगुलियों को धीरे से स्पर्श किया, फिर हथेली को देर तक चूमते हुए अपने वक्षःस्थल पर ज़ोर से दबा लिया।

दूसरे क्षण में उसने आशा को कुर्सी पर बिठा लिया और स्वयं भी पास की कुर्सी पर बैठ गया। निकट ही मेज़ पर फल और मिठाई की कई तश्तरियाँ रक्खी थीं। चन्द्रनाथ ने मिठाई का एक टुकड़ा उठा कर आशा के मुख तक बढ़ाया, आशा ने ससंकोच उसे मुंह में ले लिया। उसी प्रकार एक टुकड़ा और देकर उसने काटने को सेब उठा लिया। आशा ने हाथ बढ़ाकर कहा—लाइए, मैं छील दूं।

खान-पान के माध्यम से मानो नये सिरे से परिचित होकर वे क्रमशः आपस में बातें करने लगे। आशा किंचित् संकोच से थोड़े शब्दों में वार्तालाप में योग दे रही थी।

'जानती हो, आशा, आज मैं कितना खुश हूं, कितने दिनों से मैं कल्पना कर रहा था कि तुम इस तरह एकान्त में मेरे पास बैठोगी, बिल्कुल एकान्त में, और मैं अनुभव कर सकूंगा कि तुम मेरी हो। क्या तुम्हें यह ऐक्य की भावना अच्छी नहीं लगती?'

'जी, बहुत अच्छी लगती है,' आशा ने मधुर स्वर में कहा।

चन्द्रनाथ ने कुछ आश्चर्य से लक्षित किया कि स्वयं उसके और

आशा के भी एक-दूसरे से बात करने के ढंग में परिवर्तन हो गया है। पहले पत्र में ही उसे आशा के लिये 'आप' लिखना अरुचिकर लगा था, आज वह अकस्मात् ही उसे तुम कह कर सम्बोधित करने लगा। आशा के 'जी' शब्द का प्रयोग करते ही उसका ध्यान अपने सम्बोधन के परिवर्तन पर पहुंच गया। और इन बाहरी परिवर्तनों की आड़ में जिस महान् परिवर्तन का आरम्भ उनके संपृक्त जीवन में हो रहा है उसकी सुरभिपूर्ण अनुभूति से वह सिहर उठा।

इस आरम्भ के साथ, अथवा उससे पहले, उन दोनों के बीच की कुछ-कुछ बातें साफ़ हो जानी चाहिएं ताकि वह आरम्भ स्वच्छ और अडिग नींव पर प्रतिष्ठित हो, यह चन्द्रनाथ सोच रहा है। वह नहीं चाहता कि आशा उसकी आन्तरिक गठन तथा अतीत इतिहास के प्रति अन्धकार में रहे। वह चाहता है उसकी यह नवीन सहचरी उसे पूर्णता में जाने और स्वीकार करे।

उसने अपनी जेब से एक पत्र निकाला और आशा को दिखला कर पूछा—यह किसका पत्र है ?

आशा ने उसे देखकर संकोचपूर्ण विस्मय से कहा—यह अभी तक आपके पास है !

'और क्या यह खो देने की चीज़ थी।......इसमें सबसे पहले भला क्या सम्बोधन लिखा जा रहा था ?'

आशा कुछ देर संभ्रम में मुस्कराती रही, फिर उसने फाउन्टेनपेन उठा कर लिखा, 'मेरे प्रिय...' और फिर धीरे से आगे 'तुम' जोड़ दिया।

उसके ईषत् खुले अधरों को चूमने के लोभ का संवरण करते हुए चन्द्रनाथ ने कहा—समझा, वे दो शब्द लिखकर कुछ संकट में पड़ गई थीं, इसीलिये प्रथम को काटकर आगे नाम लिखा। मुझे यह सम्बोधन कुछ रूखा लगा था।

आशा की मुस्कुराहट लुप्त हो गई।

चन्द्रनाथ मन में पत्र पढ़ रहा था, फिर उसे आशा की ओर खिसका कर बोला—तुमने पत्र में कुछ अधिकारों की मांग की है; बड़ी उचित मांगें हैं। लेकिन शायद मेरे चरित्र के बारे में तुम्हें कुछ धोखा हुआ है। बाहर से जो लोग सज्जन और निर्विकार दीखते हैं वे सदैव वैसे नहीं होते। मैं उतनी स्थिर मनोवृत्ति का व्यक्ति नहीं, जैसा कि तुमने सोचा या लिखा है। लेकिन...लेकिन शायद तुम मेरी वृत्तियों को बांधकर रख सकती हो—अवश्य ही उसके लिये प्रयत्न अपेक्षित होगा। वह प्रयत्न है संपूर्ण आश्रय और स्नेह का दान, और......मैं उतना उदार भी नहीं हूँ जैसा तुमने लिखा है। भला अच्छी चीज़ को हस्तगत करने की अभिलाषा में उदारता कहां है!

कुछ रुककर कहा—'तुम्हारे नौकरी करने के प्रस्ताव में तो कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती।' (हँस कर)—'कहो तो मैं बिल्कुल नौकरी छोड़ दूं और हृदय के साथ शरीर के पोषण का भार भी तुम्हीं पर डाल दूं। और कभी-कभी तुम्हारे मनोविनोद के लिये कविता लिख लिया करूँ।'

आशा किंचित् गम्भीर मुद्रा से सुन रही थी। कुछ देर बाद उसने फिर कहा—लेकिन तुम्हें डरने की ज़रूरत नहीं है, मैं स्वभावतः बुरा नहीं हूँ। मेरा खयाल है कोई भी आदमी स्वभावतः बुरा नहीं होता। मैं समाजवाद और मनोविज्ञान की इस दृष्टि से सहमत हूं कि मनुष्य की क्रियायें बहुत-कुछ उसके परिवेश से, परिस्थितियों से, निर्धारित होती हैं। क्रियायें ही नहीं, विचार और भावनाएँ भी। अतएव लोगों को सच्चरित्र बनाने के लिये हमें उन्हें अच्छे परिवेश में रखने की कोशिश करनी चाहिए। यदि हम चोरी और बेईमानी का अन्त करना चाहते हैं तो हमें ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिएँ कि हर व्यक्ति को अपने परिश्रम का मूल्य मिल जाय और कोई किसी का शोषण न कर सके।

'यही बात अन्य क्षेत्रों पर भी लागू है। जब मनुष्य को नारी का

अभाव होता है, अथवा नीरस परिस्थितियों में उसका मन ऊबता है, तब उसकी इच्छा होती है कि उसे कहीं कोई भी नारी मिल जाय जिसके पास वह अपना मन बहला सके। न जाने क्यों पुरुष मन बहलाने के लिये, मानसिक परितोष के लिये, नारी की खोज करता है। ऐसी अवस्था में कभी-कभी एक आदमी की, और एक भले आदमी की भी, ऐसी इच्छा हो सकती है कि वह वेश्या के पास चला जाय। ऐसे व्यक्ति को तुम क्या कहोगी ?'

प्रश्न सुन कर आशा यकायक चौंक पड़ी। बोली—आपका मतलब है कि हम उस व्यक्ति को सहानुभूति का पात्र समझें। किन्तु यदि ऐसी ही परिस्थिति में नारी पाई जाय तो ?

चन्द्रनाथ—तो उसे भी क्षमा और सहानुभूति का पात्र समझा जाय, है न ?

आशा—न्याय तो यही है।

उसने उस प्रसंग को वहीं समाप्त कर दिया, फिर कुछ क्षण बाद पूछा—तुम्हें रानी कैसी लगती हैं, आशा ?

'बहुत अच्छी,' आशा ने संक्षिप्त मधुर उत्तर दिया।

'उन्हें भी तुम से बहुत स्नेह है, हम लोगों के इस सम्बन्ध को घटित करने का बहुत-कुछ श्रेय उन्हें है।....जब से घर में क़दम रक्खा तब से मेरे विवाह का शोर मचाना शुरू किया, और फिर उनकी नज़र पड़ी तुम पर ; न जाने कब से वे इस सम्बन्ध के बारे में सोच रही थीं।'

'मुझ से तो अक्सर हँसी कर लेती थीं। लेकिन......'

'लेकिन क्या ?'

'कभी-कभी उनका भाव यकायक न जाने कैसा हो जाता है ; तब लगता है जैसे वे मन से काफ़ी दूर पहुंच गई हैं।'

'रानी ने बहुत कष्ट उठाया है, इसी से कभी-कभी अन्यमनस्क हो जाती हैं।'

'आप उन्हें कब से जानते हैं ?'

'बहुत दिनों से, प्रायः चार वर्ष से; बीच में तो एक प्रकार से हमारा सम्बन्ध टूट ही गया था—क्योंकि उनके पतिदेव की ऐसी ही इच्छा थी।'

वह सहसा उठ कर टहलने लगा, आशा भी उठ खड़ी हुई।

'अरे, बैठो, तुम क्यों खड़ी हो गईं', कहता हुआ वह आशा की ओर बढ़ा और उसके दक्षिण पार्श्व में ठिठक कर खड़ा हो गया।

४७

दो ही दिन के परिचय में चन्द्रनाथ ने पाया कि वह आशा में काफ़ी अनुरक्त है।

उसके हृदय में नवीन सहचरी को सम्पूर्णता में जान लेने का चाव था, साथ ही अपने को पूर्णतया जना देने का भी; उसकी संचित अभिलाषायें भी जल्दी-से-जल्दी अपने को चरितार्थ कर लेना चाहती थीं। शरीर से अधिक मन की भूमिका में वह भौंरे की भाँति आशा के चारों ओर मँडराने लगा।

उसे आशा से अपने अतीत के बारे में बात करना अच्छा लगता और वह स्वयं उसके अतीत के सम्बन्ध में भी पूछता। कभी-कभी वह आशा का ध्यान उन बीते हुए वर्षों की ओर ले जाता जब वह प्रयाग में क्लब की सदस्य थी जहाँ उन दोनों की प्रथम भेंट हुई थी। और वह पूछता—उस समय भला तुम्हारे मन में कभी यह विचार आया होगा कि तुम इस तरह मेरी बन जाओगी।...असल में तुम बहुत सीधी थीं, और पढ़ने-लिखने में ज्यादा व्यस्त रहती थीं, है न ? तुम्हारी बहिन को अध्ययन में कोई वास्तविक दिलचस्पी न थी।... हाँ, वे आजकल कहाँ हैं, क्या कर रही हैं, वही तुम्हारी बहिन प्रेमलता ? विवाह में उन्हें क्यों नहीं बुलाया था ?

आशा ने बतलाया—वे अकेली ही हैं, हाल ही में उनके एक बच्चा हुआ था, और वे मरते-मरते बचीं।

प्रेमलता के बच्चा हुआ था, यह मानो नितान्त अनहोनी बात थी। 'कै बच्चे हैं उनके ?'

'कहाँ, कोई भी नहीं। यह पहला बालक हुआ था, वह भी जाता रहा। जीजी की सास को बच्चे की बड़ी कामना है।'

'और स्वयं जीजी को ?'

'अब तक तो वे बच्चों से बहुत घबराती थीं...बराबर कन्ट्रासेप्टिव्ज़ (संतति निरोधकों) का प्रयोग करती थीं। पर बच्चे की मृत्यु होने पर उनका मन बदल गया है, कम-से-कम पत्र से तो यही जान पड़ता था।'

और आशा ने बड़े संकोच-सहित उस पर यह प्रकट किया कि अभी उनके घर में नया शिशु नहीं आना चाहिए, कम-से-कम कुछ समय तक, और यह कि सुधीर को जल्दी बनारस बुला लेना चाहिए।

सुधीर के प्रति आशा की ममत्व-भावना चन्द्रनाथ को प्रिय लगी।

चन्द्रनाथ अपने भीतर एक विचित्र वासना या अभिलाषा पाता है, यह कि भौतिक भूमिका में आशा उसकी पूर्वपत्नी सुशीला की पूर्ण स्थानापन्न हो जाय। आशा से सम्पर्कित होने पर, उसके वैषम्य से ही, वह जान पाया है कि इस भूमिका में सुशीला में क्या विशेषतायें थीं। आशा में एक विशेष अर्थ में खिंचे रहने की प्रवृत्ति है, एक विशेष संकोच-भावना, चन्द्रनाथ चाहता है वह उससे अधिक स्वच्छंदता से मिले, अधिक स्पष्ट उल्लास और प्रगल्भता से। अपनी इस अभिलाषा की स्पष्ट चेतना या अवगति से उसे मन-ही-मन लज्जा और आश्चर्य भी होता है।

साहित्य के साथ ही उसे दर्शन से भी प्रेम रहा है, वह अपने को विचारशील मनुष्यों की कोटि का समझता आया है। फिर उसमें

ऐसी रहस्यमय भूख क्यों है ? क्यों वह पत्नी के प्रणय में प्रगल्भ धृष्टता के समावेश के लिये इतना क्षुधित महसूस करता है ? वह सोचता है—मानव प्रकृति कितनी जटिल है, कितनी रहस्यपूर्ण ; सब प्रकार की तर्कनाओं से कितनी ऊपर !

उसे याद आया—एक समय में सुशीला की स्वच्छन्दता की अभिव्यक्ति से वह अप्रसन्न होता था, समझता था कि वैसी प्रवृत्ति संस्कृति अथवा शालीनता के विरुद्ध है। सहज सुलभ होने के कारण ही वह तब, अन्तः प्रकृति की तुष्टि के लिये, उस वस्तु का मूल्य नहीं जान सका था । और अब उस का अभाव होने पर वह उसकी रहस्यमय आवश्यकता का तीखा अनुभव कर रहा है।

एक दिन उसने आशा से पूछा—तुमने ब्रज काव्य भी कुछ पढ़ा है ?

'बहुत कम, यों मुझे सूर का बाल-वर्णन अच्छा लगता है ।'

'सूर पढ़ो, और बिहारी भी, समझीं !'

उसने लाइब्रेरी से "सूरसागर" और "बिहारी सतसई" के अच्छे संस्करण लाकर दिये । "सूर सागर" टीका-रहित था, अतः चन्द्रनाथ कभी-कभी स्वयं बैठ कर उसे पढ़ाता। बिहारी के सम्बन्ध में आशा ने कहा—'मैं टीका की सहायता से इसे समझ सकती हूँ ।' चन्द्रनाथ ने कतिपय दोहों पर चिन्ह लगाते हुए कहा—'इन्हें विशेष ध्यान से पढ़ना । और देखो, थोड़ा परिश्रम होगा; पर बाद में रस भी मिलेगा।'

वह बीच में कभी-कभी पूछ लेता कि उसने कहां तक पढ़ लिया।

एक दिन रात को अपने पास बिठा कर उसने आशा से बिहारी के एक दोहे का अर्थ पूछा; पुस्तक पर दृष्टि डाल कर आशा जैसे लाज से गड़ गई । बोली—आप बड़े वैसे हैं !

'वैसे कैसे !'

वह मुस्कुराने लगी, 'जैसे बिहारी के नायक थे।' फिर कहा, 'भला आपको देखकर कोई कैसे जान सकता था कि आप इतने....'

'इतने खराब हैं, है न ?'

'वाह ! यह मैंने कब कहा।'

चन्द्रनाथ—देखो आशा, जीवन की कुछ ऐसी ज़रूरतें हैं जिनपर राजनीति की दृष्टि कभी नहीं पहुँच सकती, वे सिर्फ साहित्य में ही व्यक्त होती हैं। या फिर मनोविज्ञान उन्हें समझने का प्रयास करता है। उन ज़रूरतों को समझना और मान लेना कोई बुरी बात नहीं है। बुराई होती है सत्य को ढकने या उसकी उपेक्षा करने की कोशिश से।....कभी-कभी मुझे लगता है कि सभ्यता के अधिकांश प्रतिबन्ध इसी प्रकार सत्य को ढकने अथवा प्रकृति को दबाने के प्रयत्न हैं। इसी से मनुष्य छिप कर उन्हें तोड़ना चाहता है और न तोड़ सकने पर भीतर-ही-भीतर परेशान रहता है। फ्रायड ने कहा है—जो वर्जित है मनुष्य उसकी कामना करता है, जो अधिक वर्जित है उसकी अधिक कामना करता है। समझ रही हो ?

'जी हां, मास्टर साहब।'

चन्द्रनाथ हंस पड़ा। 'माफ़ करना, पढ़ाते-पढ़ाते यह पूछने की आदत पड़ गई है।'

क्रमशः उसे यह देख कर सन्तोष हुआ कि आशा वक्रता से व्यवहार और बात करना सीख रही है। वह अब अपेक्षाकृत कम गम्भीर रहती और कभी-कभी अपने परिहास से उसे काफ़ी परेशान कर डालती। उसके इस परिवर्तन को साधना ने भी लक्षित किया। एक दिन चन्द्रनाथ ने आशा से कहा—कृपा करके रानी के सामने किसी भले आदमी पर कटाक्ष न किया करो।

'भले आदमियों पर न, मैं इसका ज़रूर ध्यान रक्खूँगी,' आशा ने गम्भीरता से कहा।

'अरे ! तो क्या तुम्हारी राय में मैं भला आदमी भी नहीं हूँ ?'

'मैंने ऐसा कब कहा ? किसी को आप ही अपने भलेपन में विश्वास न हो तो कोई दूसरा क्या करे ?'

न जाने कहां से आशा "किसी" और "कोई" का विशेष व्यवहार करना सीख गई है।

❀ * ❀

एक दिन चन्द्रनाथ ने आशा से गम्भीर होकर कहा—कितना अच्छा हो यदि तुम थोड़ी सी "सतसई" अपनी भाभी को भी पढ़ा दो।

'इससे भी अच्छा यह हो कि वे थोड़े दिन अपने ननदोईजी के साथ रह जायँ, मैं भाभी से कहूँगी।'

चन्द्रनाथ—तुम हर बात हँसी में डाल देती हो, मैं बिलकुल "सीरियस" (गम्भीर) बात कह रहा हूं।

'मैं भी "सीरियस" बात कह रही हूँ। आप को भाभी से हंसी का अधिकार है, और आप उनसे सब-कुछ कह सकते हैं। मैं भला उन्हें कैसे बिहारी पढ़ा सकूँगी।'

'क्यों, तुम्हें हंसी का अधिकार नहीं है?'

'लेकिन मुझे मास्टरी करने की तो आदत नहीं है।......असल में अब तक मेरा उनसे दूसरी तरह का सम्बन्ध रहा है, अब यकायक उसे कैसे बदलूं? भैया का उनसे व्यवहार भी कुछ ऐसा रूखा रहता है कि हंसी करना ठीक नहीं जान पड़ता।'

'भाई को समझाना भी तो तुम्हारा कर्तव्य है।'

'मैं जानती हूँ वह संभव नहीं है। भाभी में ही परिवर्तन होना ज़रूरी है, यद्यपि वह भी उतना सरल नहीं।'

चन्द्रनाथ—देखो आशा, शुरू में मेरा सुशीला के प्रति वैसा ही भाव था जैसा कि तुम्हारे प्रति—लेकिन इस स्वीकृति से तुम रूठोगी नहीं। मैं चाहता था कि हम लोग एक-दूसरे के जीवन में पूरी तरह घुल-मिल जाय। किन्तु उसने कभी मुझे समझने की, और कुछ नया सीखने की, कोशिश नहीं की। वही दोष तुम्हारी भाभी का है। क्यों वे अपनी वेशभूषा आदि से पति को सन्तुष्ट रखने की कोशिश नहीं

करतीं ! क्यों वे इतनी गतिहीन और अपरिवर्तनीय हैं ! एक जीवित प्राणी को हमेशा परिस्थितियों के अनुसार बदलने की कोशिश करनी चाहिये ।

आशा—सदियों के संस्कार इतनी जल्दी नहीं बदले जा सकते; भाभी पूरे अर्थ में एक भारतीय नारी हैं। उनमें मातृत्व प्रधान है पत्नीपन गौण; भैया को कुछ भी कष्ट हो जाने पर वे बहुत परेशान हो जाती हैं।

चन्द्रनाथ—किन्तु भैया के सबसे बड़े कष्ट की तो वे उपेक्षा करती हैं, एक आधुनिक, परिष्कृत रुचि की पत्नी न पा सकने के कष्ट का ! मेरी समझ में नहीं आता क्यों वे कोशिश करने पर नहीं बदल सकतीं—खेद यही है कि वे कोशिश ही नहीं करतीं। इस दृष्टि से वे हमारे इस देश की पूर्ण प्रतीक हैं, सदियों गुलाम रह चुकने पर भी हमारे देशवासी पुराने विश्वासों और व्यवहारों को वैसी ही श्रद्धा और लगन से निभाये जाते हैं।

आशा—माफ़ कीजिए, परिवर्तन की बात करना जितना सहल है, उतना उसे व्यवहार में बरतना नहीं। क्यों नहीं आप ही मांस और अण्डे खाना शुरू कर सकते ?

'क्योंकि मैं जीव-हिंसा को बुरी चीज़ समझता हूँ।'

'लेकिन अण्डे में तो जीव नहीं होता।'

'पर वह "आर्गेनिक" भोजन तो है।'

'आर्गेनिक भोजन तो दूध भी है तब दूध भी नहीं पीना चाहिए। यह गान्धीजी वाली बात हुई, क्योंकि दूध छोड़ते वक्त गाय ध्यान में थी इसलिये बकरी का दूध पिया जा सकता है।'

'देखो आशा, तुम्हें गान्धी जी की इस तरह आलोचना नहीं करनी चाहिए।'

'तब आप भाभी की आलोचना क्यों कर रहे हैं ? क्या इसका यह मतलब है कि पुरुष कभी ग़लती नहीं करते ? क्या भैया का कोई

दोष ही नहीं है ? कभी उन्होंने दिल से इस बात की कोशिश की कि भाभी का रहन-सहन बदल जाय ?'

'उनके इतिहास का मुझे पता नहीं, मैं समझता हूँ उन्होंने कोशिश ज़रूर की होगी।'

'कभी नहीं, मैं जानती हूँ वे शुरू से ही भाभी की आलोचना करते रहे हैं, सिर्फ आलोचना। ऐसी आलोचना से कोई सुधरता नहीं।'

रात को चन्द्रनाथ ने आशा से गम्भीर स्वर में पूछा—क्या सचमुच अंडा-मांस न खाने को तुम कन्ज़रवेटिव (रूढ़िवादी) होने का लक्षण समझती हो ?

आशा—देखती हूँ आज बिहारीलाल रूटने के "मूड" में हैं, उन्हें जानना चाहिए कि रात्रि का पूर्वार्द्ध कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में वाद-विवाद का समय नहीं होता।

यह बिहारीलाल नामकरण आशा ने हाल ही में किया है।

चन्द्रनाथ ने हंसी रोकने की चेष्टा करते हुए कहा—लेकिन फिर भी.......

आशा—इसका निपटारा जीजी के सामने होगा, वह विवाद ही क्या जिसका कोई मध्यस्थ न हो।

और फिर वह गम्भीर स्वर में बोली—सचमुच, आप नहीं जानते; जीजी बड़े रैडिकल व्यूज़ (क्रान्तिकारी मान्यताओं) की नारी हैं।... हां, वे तो बहुत दिनों से अंडे खाती हैं। मुझसे कह रही थीं कि आपको भी खिलाया करूं।

'सच, क्या मांस भी खाती हैं ?'

'नहीं, मांस नहीं खातीं। इस मामले में वे और मैं एकमत हैं।.......अंडों के बारे में आप पूछ लीजियेगा।'

'और क्या "रेडिकल" बातें हैं उनमें ?'

'यही आचार-नीति के सम्बन्ध में। कहती थीं उन्हें योगेन्द्र बाबू का सूत्र ही एकमात्र बुद्धि-ग्राह्य सूत्र मालूम पड़ता है, और यह कि

पुरुष और नारी के सम्बन्ध के बारे में निन्यानवे फ़ी-सदी धारणायें कोरा रूढ़िवाद हैं।'

चन्द्रनाथ गम्भीर होकर सोचने लगा।

४८

सुहागरात के भोर में जब साधना 'भाभी' को पुकारती हुई ऊपर घर में घुसी थी तो हड़बड़ा कर उठती हुई आशा लाज से गड़ गई थी। उठते ही उसने साधना के पैर छुए थे जैसे वह उससे अनजान में किये हुए किसी अपराध की क्षमा मांग रही हो। साधना ने "हैं, हैं", करते हुए आशा को गले लगा लिया था और उसके माथे को चूमते हुए चन्द्रनाथ से कहा था—'भैया! यह कहां का अन्याय है, रात भर मेरी भाभी को जगाये रक्खा है!'

दस मिनट बाद साधना घर की स्वामिनी की भूमिका में पहुंच कर शिवसरन को विविध आदेश देने लगी थी जैसे आशा और चन्द्रनाथ दोनों के ही खान-पान आदि की चिन्ता करना उसका विशेष कर्तव्य हो। दो-तीन दिन यही क्रम चला, उसके पश्चात् साधना चार-पांच दिन दम्पती की आंखों से ओझल रही। उसके बाद जब वह उस घर में आई तो उसकी और आशा की भूमिकाएं एक-दूसरे से बदल चुकी थीं—अब साधना मेहमान थी और आशा गृहिणी। भाभी को आवाज़ लगाती हुई साधना प्रायः सीधे चन्द्रनाथ के कमरे में पहुँचती, आशा को वहीं जाना पड़ता, और कुछ देर बाद वहां से उठकर वह साधना के आतिथ्य का प्रबन्ध करती।

कभी-कभी साधना चन्द्रनाथ के कालेज से लौटने के पूर्व आ जाती, तब वह आशा के ही कमरे में बैठ कर उससे बातें करती। पर ऐसा कम होता। प्रायः वह चन्द्रनाथ के पास से चलते समय ही थोड़ी देर को आशा के कमरे में रुकती, और वहां उसकी पुस्तकों, वस्त्रों आदि का मुआयना करती।

आशा के आगमन के प्रथम सप्ताह में वह चन्द्रनाथ से प्रायः उसी के सम्बन्ध में बातचीत करती। एक दिन उसने पूछा—

'क्यों भइया, बहू पसन्द है न ?'

'जो चीज़ बहिन की पसन्द है उसे भाई की पसन्द होना ही पड़ेगा।'

'हूँ, जैसे मेरे ही कहने से विवाह किया है, ऐसे अबोध हो न। मैं भाभी से कह दूंगी कि तुम भइया की पसन्द नहीं हो, इसलिये मेरे साथ चलकर रहो।'

'अरे नहीं, अभी से झगड़ा हो गया तो घर में रहना मुश्किल हो जायगा।'

ऊपर की बातचीत के लगभग पन्द्रह दिन बाद, आशा के कमरे में कुछ पुस्तकें देखकर आई हुई साधना ने चन्द्रनाथ से कहा—देखती हूँ इधर रुचि की सरसता में विशेष उन्नति हुई है, इसका कारण किसी का अधैर्य तो नहीं है ?

चन्द्रनाथ ने न समझने के भाव से कहा—किसकी रुचि की बात कर रही हो, रानी ?

साधना ने रूखे ढंग से हंस कर कहा—'कह रही हूँ कि मेरी जीजी को कभी किसी ने इस तरह बिहारी पढ़ाने की कोशिश नहीं की।' फिर कुछ रुक कर कहा—'बेचारी का भाग्य ही खराब था।'

चन्द्रनाथ सहसा हतबुद्धि होकर साधना को देखने लगा। वह पूछ रही थी, 'जीजी की भी कभी याद आती है, भैया ?'

'याद से लाभ ही क्या है', उसने उदास भाव से उत्तर दिया।

'दुनिया का यही नियम है, नया प्रेम पुराने सम्बन्धों को भुला देता है।'

आज साधना क्यों इतनी कटु बातें कर रही थी यह चन्द्रनाथ बिल्कुल ही नहीं समझ सका।

दो दिन पहले आशा ने साधना के सम्बन्ध में चन्द्रनाथ से कुछ बातें की थीं। बातों का विषय था, साधना की आर्थिक स्थिति।

आशा ने सीधे प्रश्न किया था—आप जीजी को खर्च के लिये क्या देते हैं ?

'मैं ? मैं तो अभी तक कुछ भी नहीं दे पाया; सोचता हूँ, कैसे यह प्रस्ताव करूं। तुम ही रानी से ज़िक्र करना न।'

'यह लो, मुझे पहले ही सन्देह था। भला यह मेरे ज़िक्र करने की बात है ! आपको यह प्रश्न बहुत पहले गुप्त रीति से हल कर लेना था।....मेरा अनुमान है कि जीजी अपने गहने बेच कर गुजर करती रही हैं।'

'सचमुच। यह तो बड़ा गजब हुआ, भयंकर भूल।'

और आज जब से साधना आई थी तभी से वह इस प्रश्न को छेड़ने को बात सोच रहा था। किन्तु साधना की बातचीत के नये स्वर ने उसे दोहरे असमंजस में डाल दिया। किंचित् भीत-से स्वर में उसने साधना को संबोधित किया—'रानी !'

'मेरी बात का बुरा न मानना भइया, आज कुछ यों ही जीजी की याद आ गई।'

चन्द्रनाथ फिर स्तब्ध हो गया। कुछ देर में साहस बटोर कर बोला—रानी, तुम नाराज़ न होना, मुझे एक बात पूछनी है।

साधना ने उपेक्षा-मिश्रित विस्मय की मुद्रा से कहा—पूछो न, ऐसी क्या बात है, मेरी नाराज़ी की इतनी चिन्ता क्यों !

चन्द्रनाथ ने कुछ क्षण ठिठक कर कहा—देखो रानी मैं ज़रा अव्यावहारिक हूँ, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे स्नेह में किसी तरह की कमी है। तुम्हारे खर्च के सम्बन्ध में मैंने बहुत पहले ही तुम से नहीं पूछा यह मुझ से भूल हुई, बहुत बड़ी भूल; लेकिन इसका यह मतलब न था कि तुम गहने बेच कर निर्वाह करतीं।

'ओहो ! यह बात तुम्हें भाभी ने सुझाई होगी। कितनी भोली है मेरी भाभी।' यह कह वह रूक्ष भाव से हंसी, 'भला मैं गहने बेच कर क्यों गुजर करती और करती भी तो ऐसी बुराई क्या थी; मैं क्या

जानती नहीं कि तुम्हारी आमदनी कितनी सीमित है। न जाने कितना खर्च तो मेरी बीमारी में पड़ गया।'

चन्द्रनाथ—आमदनी कितनी ही हो लेकिन उसमें घर के सभी लोगों का हिस्सा होता है, सभी मिलकर गुज़र करते हैं। कोई सदस्य अपनी चीज़ें बेच कर...।

साधना—मैं कहती हूँ मैं घर से काफ़ी रुपये लेकर चली थी, और वह खास मेरे रुपये थे; फिर क्यों मैं गहने बेचती? इसके अलावा मेरी आमदनी के दूसरे स्रोत भी हैं।

चन्द्रनाथ प्रश्नपूर्ण नेत्रों से उसका मुख देखने लगा।

'मैं एक ट्यूशन करती हूँ और......'

'ट्यूशन ! लड़कियाँ भी कहीं ट्यूशन करती हैं ! कहाँ ट्यूशन कर रही हो तुम ?'

'क्यों, लड़कियाँ ट्यूशन क्यों नहीं कर सकतीं ! क्या उनके हाथ-पैर नहीं होते ? या दिमाग़ नहीं होता ! एक ट्यूशन तो मुझे लंका में ही मिल गई है, मेरे पास साइकिल होती तो एक और भी...

'साइकिल तुम्हारे लिये कल ही आ जायगी। लेकिन रानी, तुम्हारा ट्यूशन करना ठीक नहीं, तुम्हारे बदले में भी तो जा सकता हूँ।'

'जी नहीं, आखिर आप चाहते क्या हैं; यही न कि स्त्रियाँ हमेशा पुरुषों पर निर्भर रहें, कभी स्वावलम्बी न हों ? सो अब नहीं चलेगा भइया, भाभी भी इसके खिलाफ़ हैं। देखना, शीघ्र ही वे कहीं नौकरी पर पहुँच जायंगी, है न भाभी ?'

आशा चौके से कुछ खाने का सामान लिये आ रही थी। साधना की बात सुनकर वह मन्द भाव से हँसी। साधना कह रही थी—तभी ठीक से भाभी की कीमत मालूम होगी जब रोज़-रोज़ पत्र और दूतियाँ भेजनी पड़ेंगी।

कुछ देर पहले चन्द्रनाथ को लगा था कि साधना आशा के

प्रति अकारण रुष्ट या अनुदार है, अब उसे उसकी दूसरी ही मुद्रा दिखाई पड़ी। दोनों में कौन से मनोभाव को वह यथार्थ एवं विश्वसनीय समझे ?

प्रारम्भ में दो-तीन दिन आशा साधना की उपस्थिति में चन्द्रनाथ से विशेष बात नहीं करती थी। साधना के बार-बार दुहराये अनुरोध से वह अब उससे खुलकर बोलने लगी है। अब वह उससे प्रायः सब तरह की बातचीत कर लेती है। कभी-कभी चुटकी भी ले लेती है, यद्यपि उसका स्वर अब कभी उतना उन्मुक्त नहीं हो पाता जैसा कि विवाह के पहले था।

चाय-पानी के बाद आशा थोड़ी देर को अपने कमरे में गई और वहां से हाथ के बनाये चित्रों एवं स्केचों की एक बड़े आकार की कापी लिये हुए लौटी। कापी को साड़ी के आंचल में छिपाये हुए मन्द भाव से हंसती हुई चन्द्रनाथ से बोली—कुछ देने का वादा करें तो एक चीज़ दिखलायें।

चन्द्रनाथ—क्या चीज़ है ऐसी, देखें।

आशा—वाह यों ही, ऐसी साधारण चीज़ नहीं है।

चन्द्रनाथ—(साधना से)—बताओ रानी इन्हें क्या दिया जाय।

साधना—पहले चीज़ देख कर उसके महत्व का निर्णय कर लो भइया, नहीं तो तुम्हें घाटा लग जायगा।

आशा ने धीरे-धीरे आंचल के नीचे से कापी निकाली।

चन्द्रनाथ ने कापी के पृष्ठ उलटते हुए पूछा—ये तो काफ़ी सुन्दर चित्र हैं, किसने बनाये हैं ?

अशा—मेरी एक सखी हैं, बड़ी होनहार......

चन्द्रनाथ—देखो रानी, कैसे चित्र हैं ये; तुम भी तो स्केच बनाया करती थीं।

साधना—(कापी उलटते हुए)—अच्छे हैं, लेकिन कुल मिलाकर काफ़ी साधारण हैं।

'जीजी, आप मेरी सखी के प्रति अन्याय कर रही हैं।'

'इसमें अन्याय क्या है, जैसा मैंने अनुभव किया वैसी राय दे दी।'

चन्द्रनाथ—भई, मैं चित्रकला का पारखी नहीं, लेकिन मुझे तो काफ़ी अच्छे लगते हैं। कुछ अतिरंजना का तत्व अवश्य है जो न रहता तो अच्छा होता।

साधना—अतिरंजना तो कला का आवश्यक तत्व है, उसके बिना वह प्रभावशालिनी नहीं होती।

चन्द्रनाथ—मैं समझता हूँ अतिरंजना अपरिपक्वता का चिन्ह है। श्रेष्ठ कला जीवन की भांति ही स्वाभाविक जान पड़ती है, और जीवन की गहराइयों की विवृति द्वारा ही हमें आलोड़ित करती है।

साधना—रविबाबू ने कहीं कहा है कि काव्य में वस्तु या भाव को अतिरंजित करके दिखाना पड़ता है।

चन्द्रनाथ—पता नहीं रविबाबू का ठीक अभिप्राय क्या है। मेरा अपना विचार है कि जहां कल्पना (जो अतिरंजना का अस्त्र है) अधिक प्रगल्भ होकर दीखती है वहां अनुभूति प्रायः छिछली और विरल रहती है। श्रेष्ठ कलाकार वास्तविकता द्वारा इतना पकड़ा रहता है कि उसे कल्पनाओं का इन्द्रजाल बुनने का अवकाश ही नहीं मिलता।

'तो फिर यह क्यों कहा जाता है कि कलाकार में कल्पना-शक्ति होनी चाहिये?' साधना ने असहिष्णु स्वर में कहा।

चन्द्रनाथ—इसलिये कि कलाकार जीवन की असंख्य सम्भावनाओं का अनुभव या मानसिक प्रत्यक्ष करता है।.......किन्तु सम्भाव्य की कल्पना यथार्थ के नियमों से नियंत्रित रहती है। ऐसी कल्पना ही सृजन-शक्ति का असली माप है, वही हमारे भावनात्मक जीवन का वास्तविक प्रसार करती है।

साधना—मतलब यह कि श्रेष्ठ कला यथार्थवादी होती है।

चन्द्रनाथ—यदि यथार्थ शब्द को पाप या कुरूपता का पर्याय न

बनाकर सम्पूर्ण जीवन के अर्थ में लिया जाय।...इस दृष्टि से बाणभट्ट की अपेक्षा टॉल्स्टाय महत्तर उपन्यासकार हैं, और रवीन्द्र की शिशु-सम्बन्धिनी रचनाओं से सूर का बाल-काव्य कहीं श्रेष्ठ है।

साधना कुछ देर चुप रही, फिर बोली—यदि मैं भूलती नहीं तो पहले तुम्हारे विचार कुछ और थे, भइया।

चन्द्रनाथ—मुझे याद नहीं पहले मेरे विचार क्या थे, लेकिन शायद तब मुझ में यथार्थ का इतना आग्रह न था। अब सोचता हूं काव्य-साहित्य का ही नहीं, व्यक्तित्व और सभ्यता का विकास भी यथार्थ की अधिकाधिक पकड़ में है, उससे पलायन में नहीं।

साधना—यह कहीं कूटनीति-विशारद भाभी का तो प्रभाव नहीं है, अयँ भाभी?

आशा—मुझ से ज्यादा तो आप ही का प्रभाव होना चाहिये, आप से पुरानी पहचान है।

साधना—मेरा...जैसे मैं किसी को प्रभावित करने लायक भी हूं।...मैं तो अब तक समझती थी, भैया, कि कला मुख्यतः कल्पना का ही क्षेत्र है, यद्यपि जीवन में यथार्थ के आघात से मैं पक्की रियलिस्ट बनती जा रही हूँ।

चन्द्रनाथ—ठीक दृष्टि से देखें तो रियलिज्म और आइडियेलिज्म (यथार्थवाद और आदर्शवाद) में कोई झगड़ा नहीं है। यथार्थ की सभावनाओं को लोक-कल्याण की दिशा में मोड़ने का प्रयत्न ही आदर्शवाद है।.......वह आदर्शवाद व्यर्थ है जिसकी जड़ें समाज और मानव-स्वभाव की वास्तविकता में नहीं हैं।

रात को आशा ने चन्द्रनाथ से कहा—आप अभी तक समझे नहीं, ये चित्र जीजी के बनाये हुए हैं।

'सच? तुमने पहले ही क्यों नहीं कह दिया, कहीं रानी बुरा न मान गई हो।'

'बुरा मानने की तो कोई बात आपने कही नहीं थी।'

'फिर भी भई, डर लगता है; आजकल वह ज्यादा संवेदनशील हो गई हैं।'

'जीजी कहती थीं वे दो-एक पत्रिकाओं में अपने चित्र भेजती भी हैं और वहां से कुछ पैसे भी मिल जाते हैं।'

'यह तो अच्छी बात है।...लेकिन रानी ने चित्रांकन में सचमुच बड़ी प्रगति की है।'

'कहती थीं उन्हें बरेली में एक अच्छे रिटायर्ड अध्यापक से जो कलकत्ते के किसी आर्ट स्कूल में शिक्षक थे सीखने का सुयोग मिल गया था।'

'तभी, लेकिन तुमने पहले ही क्यों नहीं बतला दिया ....'

४९

एक दिन आशा को अपनी बहिन प्रेमलता का पत्र मिला। आशा ने वह पत्र चन्द्रनाथ को दिखलाया, लिखा था—

प्रिय आशा,

प्रसन्न रहो। तुम्हारा पत्र समय से मिल गया था, पर तबीयत ठीक न होने से उत्तर न दे सकी। मेरा अब यहाँ बिलकुल जी नहीं लगता। पापा को लिखा है कि मुझे शीघ्र अपने पास बुला लें। तुम्हें बुलाने को भी लिख दिया है—तुम ज़रूर चली आना, मेरी अच्छी बहिन।

तुम ने शायद प्रिंसिपल देव के भतीजे डिपुटी अरुणकुमार का नाम सुना हो। आजकल वे गोरखपुर हैं। कुछ दिन पहले उनकी पत्नी साधना देवी घर छोड़ कर भाग गई थीं। उनका कोई पता नहीं चला। अब मिस्टर अरुणकुमार दूसरी शादी कर रहे हैं।....मैं साधना देवी को जानती थी, कुछ मानी स्वभाव की थीं। दोष उनके पति का ही था, लेकिन फिर भी यह बड़ी अनहोनी घटना हुई। तुम्हें मैं यह इसलिये लिख रही हूँ कि साधना देवी उसी गांव की हैं जहाँ चन्द्रनाथ

बाबू की पहली सुसराल है। शायद वे उन्हें जानते हों। अब भी पता लग जाय तो, मुमकिन है, हम लोग कुछ कर सकें।

चन्द्रनाथ बाबू को मेरी सस्नेह नमस्ते कहना और मेरी ओर से तुम्हें भेजने की प्रार्थना भी।

तुम्हारी बहिन,
प्रेमलता

चन्द्रनाथ ने पत्र चुपचाप पढ़ लिया।

'मेरी राय में तो आप जीजी को लेकर तुरन्त बरेली चले जायँ और सीधे जीजा जी के यहां पहुँचें', आशा ने कहा।

'यह मेरे और तुम्हारे निर्णय करने की बात नहीं है, आशा, मैं नहीं समझता कि रानी वहां चलने को तैयार होंगी।'

आशा थोड़ी देर सोचती रही। फिर बोली—उन्हें जाना भी नहीं चाहिये, मैं भी उनकी जगह होती तो न जाती। ऐसी उन्हें रोटियों की कमी नहीं है।

चन्द्रनाथ ने अन्यमनस्क भाव से कहा—हूँ।

कुछ देर बाद आशा ने ईषत् हंसकर चन्द्रनाथ से पूछा—जीजी के सवाल का क्या उत्तर लिख दूं?

चन्द्रनाथ ने मानो सचेत होते हुए कहा—किस सवाल का! तुम्हारे मायके जाने में मैं बाधा न दूंगा। लेकिन वहां रानी के बारे में एक अक्षर भी न बोलोगी, समझीं?

अगली बार जब साधना आई तो चन्द्रनाथ ने उससे कहा—तुम कुछ अपने घर की खबर भी रखती हो, रानी?

'मेरा घर, इसका मतलब?'

'मेरा मतलब बरेली से था।'

'अभी तक आप मुझे बरेली से सम्बन्धित करना नहीं भूले हैं, कहीं यह तो नहीं चाहते कि मैं बनारस से किसी तरह टल जाऊं।'

'कैसी बातें करती हो.......मैं सोच रहा था कहीं अरुणकुमार

तुम्हें खोई हुई या कुछ और समझ कर दूसरे विवाह की कल्पना न करने लगें।'

'कोई वैसी कल्पना करे या न करे, मुझे इससे कोई सरोकार नहीं। मुझे अपनी जिन्दगी से मतलब है, किसी दूसरे की से नहीं।' कुछ रुककर—'मेरा तो अनुमान है कि अब तक दूसरी शादी हो भी गई होगी क्योंकि काफ़ी दिन पहले दुलहिन के लिए विज्ञापन निकला था।'

यह कह कर वह हंसी। गोली-कांड के बाद की इस हंसी से जो सीधे मस्तिष्क में गूंज उत्पन्न करती है चन्द्रनाथ अच्छी तरह परिचित हो चुका है।

'तुम्हें विज्ञापन का कैसे पता चला था, रानी?'

'चल ही गया था, बल्कि एक सखी द्वारा पत्र डलवा कर निश्चय भी कर लिया था।'

कुछ देर खामोशी रही। फिर चन्द्रनाथ ने कहा—उस दिन मैं यह बिल्कुल ही अनुमान नहीं कर सका कि वे चित्र तुम्हारे हैं। सच-मुच तुमने इस क्षेत्र में असाधारण प्रगति की है।

'धन्यवाद, और यह बता दूँ कि उनमें तिहाई से अधिक चित्र यहीं आकर बनाये गए हैं।'

'इसी को कहते हैं गुप्त साधना, किसी को थोड़ा भी आभास नहीं।'

'साधना नहीं, ज़रूरत कहो: आखिर मुझे कहीं से खर्च भी तो जुटाना था।'

फिर बोली—एक चित्र मैंने हाल ही में बनाया है, देखोगे?

'ज़रूर, कहां है?'

'यहाँ नहीं है, अबकी बार आऊँगी तो लेती आऊँगी। भाभी कब जा रही हैं?'

'परसों सांझ को साढ़े-पांच बजे, छोटी लाइन से जायेंगी।'

'तो मैं परसों ही आऊँगी।'

इतने में नीचे किन्हीं वृद्ध महाशय ने चन्द्रनाथ को आवाज़ दी—प्रोफेसर साहब, ओ प्रोफेसर साहब !

आशा ने कमरे में घुस कर कहा—वही गीतावाले महाशय आप से मिलने आये हैं, जल्दी बात करके आइएगा।

'वह छोड़ेंगे तब न !' चन्द्रनाथ ने मुस्कुरा कर कहा। और वह एक मोटी कापी हाथ में लिये नीचे उतर गया।

५०

अन्तरंग मित्रों से अतिरिक्त लोगों से चन्द्रनाथ नीचे बैठक में बात करता है। यह नियम आशा के आने के बाद बनाया गया है। बैठक में दो कुर्सियाँ और एक चौकी जिस पर दरी-चादर का बिछावन है पड़े रहते हैं।

इस समय जो महाशय मिलने आये थे उनसे चन्द्रनाथ का हाल ही में परिचय हुआ था। वे सज्जन जाति के कायस्थ थे, अवस्था लगभग पैंसठ वर्ष, चेहरा अपेक्षाकृत छोटा और झुर्रियोंदार, दांत प्रायः टूटे हुए, होंठ मोटे, बाल पुराने ढंग के महीन कटे हुए और पूर्णतया सफेद, मूछें भी कैंची से महीन करके काटी हुई। जब वे बोलते तो मुंह के मध्य में हिलती हुई नितान्त गीली जीभ बड़ी भोंडी लगती। और क्योंकि उन्हें बोलने का व्यसन था इसलिये उनके सम्मुख बैठने वाले को यह दृश्य लगातार देखना पड़ता। पहली बार उन्हें देखकर चन्द्रनाथ के मन में आया था—क्या मनुष्य इतना कुरूप भी होता है !

उनका नाम था मुंशी रामसुखलाल, चन्द्रनाथ उन्हें "मुंशीजी" कहता। वे बिहार प्रान्त के सारन जिले के रहने वाले थे और कुछ काल काशीवास करने आये थे। पास ही एक सम्बन्धी के घर में ठहरे थे। उन्होंने गीता का एक पद्यानुवाद किया था। किसी से यह सुनकर कि चन्द्रनाथ कविता करता है वे दो दिन पहले अनुवाद की कापी

उसके पास डाल गये थे, ताकि वह देखकर आवश्यक संशोधन कर दे। अनुवाद के लिये प्रकाशक की खोज भी उन्हें थी। पिछले दिन भी भेंट होने पर उन्होंने चन्द्रनाथ से पूछ लिया था कि उसने अनुवाद देखा या नहीं, आज फिर वे उसी सिलसिले में आ पहुँचे थे।

चन्द्रनाथ ने मुंशी जी को नमस्कार किया और वहीं पड़ी कापी को देख खेद-सूचक स्वर में कहा—क्या कहूँ मुंशी जी, अभी थोड़ा-सा ही अंश देख पाया हूँ।

'अच्छा, बाकी फिर देखें। तर्जुमा कैसा लगा आपको, प्रोफेसर साहब! ग़लतियां बहुत होंगी?'

'नहीं, अच्छा है, काफ़ी अच्छा है। कितने दिनों में आपने इसे पूरा किया?'

'प्रोफेसर साहब, हम कुछ नहीं जानते। जी में आया, शुरू कर दिया, किसी तरह पूरा हो गया। चैत से असाढ़ तक; जाने कैसे, भगवान की इच्छा।'

यह कह कर उन्होंने प्रारम्भिक अंश पढ़ना शुरू किया—

ओं तत सत् हरी हो हरी,
प्रभु तेरी सूरत में स्वामों भरी।
ओंकार प्रणव को पहले जपूं,
सृष्टी का आरम्भ मन में लखूं।
बन्दों शिवा-शिव ब्रह्मदेव को,
दंडवत् करूँ मैं सूर्यदेव को।

चन्द्रनाथ ने उन्हें रोकने की इच्छा से बीच ही में कहा—काफ़ी अच्छा तर्जुमा किया है आपने।

'प्रोफेसर साहब, हम सच कहते हैं हमने कुछ पढ़ा-लिखा नहीं है। वही मसल है लिख लोढ़ा, पढ़ पत्थर; उर्दू न फ़ारसी, भैया जी बनारसी। प्रेम से पाया है, पढ़ कर नहीं।'

और वे फिर पढ़ने लगे—

न जानूं मैं युक्ती न व्याकरणों का सूत्र
आशा-भरोसा सब गौरी के सुत्त
न मालूम पिंगल न छन्दों का गुण
लगन है लगी प्रभु चर्चा की धुन।

मुंशी जी जब गाते तो उनका सिर विशेष भंगी से हिलता। चन्द्रनाथ के मन में उनके प्रति बड़ी सहानुभूति हुई।

मुंशी जी कहने लगे—प्रोफेसर साहब, मनुष्य का शरीर भोगने के लिये और करने के लिये है, बाक़ी सब सिर्फ भोगयोनी हैं। अनेक जनमों के बाद भगवान की भक्ती में रुचि होती है।......आज के आदमी पुनर्जनम नहीं मानते, धरम में विश्वास नहीं करते। लेकिन अगर पुनर्जनम नहीं और करमफल नहीं तो क्यों कुछ लोग सुखी हैं, कुछ दुखी; कोई अमीर है, कोई ग़रीब......

चन्द्रनाथ—आपके गांव में ऐसे विचारों के आदमी हैं?

'अब कहां हैं? हमें सत्संग भी नहीं मिला, जो कुछ लिखा है तजुर्बे से लिखा है, कुछ झूठ नहीं। बचपन से ही भक्ती की तरफ हमारा ध्यान था। शादी हुई, बच्चे हुए। चार लड़कियां मर गईं, तीन चौदह-पन्द्रह बरस की होकर शादी के बाद, एक बारह-तेरह बरस की जिसकी शादी नहीं हुई थी, एक लड़का पाँच बरस का; बीबी भी मर गई। लेकिन हमें दुःख नहीं हुआ। शुरू से ऐसा ही था। कष्ट अपने में है, बाहर नहीं। जिस चीज़ में आसक्ति है उसके न मिलने से दुःख होता है। मनुष्य वास्तव में स्वतन्त्र है, पर अज्ञान से बँध जाता है—बँध्यो कीर मर्कट की नाईं।

'आजकल लोग निश्चिन्त नहीं हैं, ख्वाहिशें बढ़ गई हैं। निश्चिन्त कैसे हों जब सन्तोष नहीं? एक बेटा हो, फिर दो; फिर पूछते हैं कितनी उम्र है? भविष्य पूछते हैं। विद्या मोक्ष के लिये है, धन के लिये नहीं, पर लोग कहते हैं, पढ़ोगे नहीं तो क्या भीख माँगोगे? मानो पढ़ना रुपये के लिये है!...बैरिस्टर, डॉक्टर, सब

रुपये के लिये पढ़ते हैं। आप लोगों का काम कुछ अच्छा है।......
ए प्रोफेसर साहब! काम कोई बुरा नहीं है।'

'अच्छाई-बुराई भावना पर निर्भर है', चन्द्रनाथ ने कुछ कहने की आवश्यकता महसूस करते हुए कहा।

'हां, इसीलिये गीता में निष्कामता की शिक्षा है, यानी करम-योग। ज्ञान-योग हम नहीं करते।'

चन्द्रनाथ ध्यान से मुंशी जी की ओर देख रहा था। कितनी साधारण शकल, और कितने असाधारण विचार! पत्नी और बालकों की मृत्यु ने इस व्यक्ति पर कोई असर नहीं किया। कैसी कठोर अनासक्ति है यह!

'तो मुंशी जी अब आप अकेले ही हैं?'

'अकेले तो सभी हैं। सिर्फ अपने करम साथ जाते हैं, और कुछ नहीं; सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा। बड़े भाई के लड़के हैं, उन्हीं के साथ रहते हैं।'

'अच्छा व्यवहार करते हैं वे?'

'हां, अच्छा व्यवहार करते हैं। हम में बुराई नहीं होगी तो क्यों कोई बुरा व्यवहार करेगा? गीता में भी कहा है—'कोई कि जो काम अच्छे करे, नहीं दुर्गती में कभी वह पड़े।'

मुंशी जी फिर अपना अनुवाद पढ़ने लगे। ऊबे हुए मन किन्तु निर्विकार मुखाकृति से चन्द्रनाथ सुनने लगा।

कुछ देर बाद मुंशी जी उठ कर खड़े हो गये।

'तो प्रोफेसर साहब इसे पढ़ लेना।...'

'ज़रूर पढ़ूँगा, यों इसमें ठीक करने को विशेष नहीं है।'

'अच्छा प्रोफेसर साहब, आशीर्वाद दीजिए।'

'कैसी बात करते हैं आप, आप बुजुर्ग हैं,' चन्द्रनाथ ने खड़े होते हुए कहा।

'नहीं, बुजुर्ग तो आप हैं, बुजुर्गी बअक्ल न बउम्र। आपने एक कहानी सुनी है, भक्त राका की ?'

'नहीं, मैंने नहीं सुनी।'

'हम सुनाते हैं। एक थे भक्त राका, बड़े ग़रीब, फटेहाल। लकड़ी तोड़कर गुज़र करते। नारद जी ने उन्हें देखा और भगवान से कहा—"भगवान यह तो बड़ा अन्याय है कि आपका भक्त इतना गरीब और दुखी हो।" भगवान ने कहा—"वह दुखी नहीं है, इच्छा हो तो आजमा लो।" नारद जी ने एक सोने का तोड़ा जंगल में भक्त राका के सामने डाल दिया। राका ने उसे देखा और मिट्टी से ढकने लगे। क्यों ढकने लगे ? यह सोच कर कि कहीं मेरी स्त्री इसे देखकर लोभ न करे। स्त्री दूर से देखती थी, बोली—"यह क्या खेल कर रहे हो, मिट्टी को मिट्टी से ढक रहे हो !" भक्त राका सुन कर हँसे। कहा—"अरे, हम तो राका भक्त हैं, तू बांका भक्त है !'

कहानी सुना कर मुंशी जी जोर से हँसे, और फिर बाहर चलने लगे।

'कल फिर मुलाकात होगी, प्रोफेसर साहब ; उसे देख 'रक्खें,' चलते-चलते उन्होंने कहा।

उनके जाने के बाद चन्द्रनाथ अनासक्ति के सम्बन्ध में सोचने लगा, और राका भक्त के और उसकी पत्नी के उस वाक्य के कि मिट्टी को मिट्टी से क्यों ढक रहे हो।

और वह सोचने लगा उस विराट् व्यापक विचार-परम्परा के सम्बन्ध में जिसे मुंशी जी ने सहज विश्वास से ग्रहण कर लिया था।

ऊपर आशा और साधना प्रतीक्षा कर रही थीं, मोह और आसक्ति की साकार प्रतिमायें। मुंशी जी के बार-बार दुहराये हुये अनुरोध को याद करता हुआ चन्द्रनाथ सोच रहा था—उनमें भी तो आसक्ति है, अपनी अनूदित पुस्तक का कितना मोह है !

५१

अगले दिन मुंशी जी सांझ के चार बजे फिर आये। चन्द्रनाथ ने उन्हें देख कर अपराधी के स्वर में कहा—अभी शुरू के छै अध्याय ही देख पाया हूँ, मुन्शी जी। दो-तीन दिन में सब देख लिया जायगा।

'कोई हर्ज नहीं, प्रोफेसर साहब, ऐसी जल्दी क्या है। जल्दी का काम शैतान का काम होता है।'

फिर कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा—ए प्रोफेसर साहब, सुना है दशाश्वमेध घाट पर एक बड़े अच्छे महात्मा गीता का प्रवचन करते हैं; चलिए, हम लोग चलें।

'कब से शुरू किया है ?'

'कल ही से तो, अभी कुछ हर्ज नहीं हुआ, कल पहला अध्याय समझाया था। सुना है एक अध्याय नित्य करेंगे।'

चन्द्रनाथ बिना विशेष उत्साह के राज़ी हो गया। जब वह आशा को खबर देने गया तो उसने किंचित् अधैर्य से कहा—देखिए, जल्दी लौटिएगा।

आशा कल मायके जानेवाली है, अतः उसके इस समय के अनुरोध का विशेष महत्व है, यह चन्द्रनाथ से छिपा न रहा। शायद वह प्रवचन सुनने न जाता यदि उसके अन्तर्मन में यह भावना न होती कि वह अपने को मुन्शी जी द्वारा प्रदर्शित विशेष आदर का पात्र सिद्ध कर सके। वह मुन्शी जी की अपने प्रति बनी इस धारणा में कि अंग्रेजी पढ़ कर भी वह भारतीय संस्कृति के प्रति विरक्त या उदासीन नहीं हो गया है और उसके महत्व से भली भाँति परिचित है कोई आकस्मिक अथवा अप्रिय परिवर्तन नहीं करना चाहता था। मुंशी जी के साथ उसका थोड़े ही काल तो सम्पर्क रहेगा, फिर क्यों वह उनकी बद्धमूल धारणाओं को ठेस पहुँचाने की कोशिश करे? और यह कोशिश सफल भी नहीं हो सकती क्योंकि मुंशीजी की अवस्था के लोगों

में प्रायः बदलने की शक्ति और इच्छा दोनो ही नहीं रह जाते।

घाट पर, ठंडा मौसम होने के कारण, साधारण से कम भीड़ थी, पर महात्मा जी के चारों ओर काफ़ी लोग थे। मालूम हुआ कि महात्मा जी नेत्रहीन हैं, और गीता उन्हें कण्ठस्थ है। श्रोताओं की संख्या क्रमशः बढ़ती जाती थी। कुछ पल बाद चन्द्रनाथ को हरीजी आते हुए दिखाई दिये, सदा की भाँति आत्म-विश्वास और प्रसन्नता से मुस्कराते हुए; चतुर्वेदी उनके साथ थे। हरीजी ने चन्द्रनाथ को नहीं देखा और अलग बैठ गये। कुछ ही क्षण बाद मुँह लटकाये हुए मदन आया और महात्मा जी की बाईं ओर एक सज्जन से बात करता हुआ बैठ गया।

श्रोताओं में कुछ लोग कह रहे थे कि आज महात्मा जी स्थितप्रज्ञ का लक्षण समझायेंगे, आज का प्रवचन विशेष महत्वपूर्ण होगा।

उनका अनुमान ग़लत न था। अन्य विषयों की भी महात्मा जी ने विशद व्याख्या की, पर स्थितप्रज्ञ पर उनका प्रवचन विशेष प्रभावशाली हुआ। कम-से-कम चन्द्रनाथ को ऐसा लगा। वैसे भी उसे गीता का यह प्रकरण बहुत पसन्द था। स्थितप्रज्ञ का आदर्श उसे अनिवार्य रूप से आकृष्ट करता, उसके अभिमत महापुरुषों में स्थितप्रज्ञ की बहुत ऊँची स्थिति थी। इसीलिये तुलसी जयन्ती के अवसर पर उसने उदात्त की व्याख्या के बहाने राम और भरत की स्थितप्रज्ञता—व्यक्तिगत हानि-लाभ एवं मानापमान से ऊँचे उठे रहने की वृत्ति का—विरुद-गान किया था। आज भी जब महात्मा जी ने व्याख्या की—दुःखों में जिसका चित्त उद्विग्न नहीं होता, सुखों का जिसे लोभ नहीं है, हर्ष-अमर्ष और भय से मुक्त, निन्दा और स्तुति में समान...तब उसके हृदय के न जाने कौन से तार झंकृत हो उठे और वह विभोर होकर उस वर्णन को पी गया।

किन्तु थोड़ी ही देर बाद आत्म-चेतन होकर वह मुंशी जी तथा

दूसरे श्रोताओं का निरीक्षण करने लगा। कितने सहज भाव से वे महात्मा जी की वाणी सुन और ग्रहण कर रहे थे, जैसे यह पूर्णतया स्वाभाविक हो, जैसे उसमें किसी तरह के प्रश्न या सन्देह की गुञ्जायश ही न हो। अरे, कैसे जड़ और प्रतिक्रियाशून्य ये श्रोता हैं, कौन कहेगा कि वे बीसवीं सदी में रहते और सांस लेते हैं। सब प्रकार की तर्कना और जिज्ञासा से शून्य, विचारों की एक संकीर्ण परिधि में घूमने वाले, सिद्धान्तों की आवृत्ति को सत्य की प्राप्ति समझने वाले ये अकर्मण्य श्रोता जिनका अन्तर कभी प्रश्न और सन्देह से आलोड़ित नहीं हुआ, स्थितप्रज्ञ के महत् सिद्धान्त का कैसे मूल्य आंक सकेंगे, और उसके भयंकर आत्म-विरोधों को भी कैसे देख सकेंगे!

वे देखो हरीजी उठ कर जा रहे हैं, सदा की भाँति मुस्कराते हुए। यह मुस्कराहट काहे की द्योतक है? स्थितप्रज्ञता की! सांसारिक स्थिति के प्रति उदासीनता की? नहीं-नहीं, उस दशा में मुस्कराना क्यों? हास भी क्यों? चन्द्रनाथ इन क्रियाओं को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है। उसे अकारण हास और मुस्कराहट, जिन्हें लोग शिष्टता की अभिव्यक्ति कहते हैं, प्रिय नहीं लगते। उसे प्रतीत होता है जैसे उनके साथ अपनी श्रेष्ठता का प्रच्छन्न भाव लगा रहता है, एक परितोष की भावना कि हम जीवन-संघर्ष में विजयी हुए हैं और हमारा स्थान उन लोगों से ऊपर है जो इस संघर्ष के शिकार हैं, जो कष्ट में हैं।....उसे लगता है कि हरीजी की मुस्कराहट भी यही प्रकट करने का अस्त्र है कि हम सफल हैं, शक्त हैं...कि हम परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की कला से अभिज्ञ हैं। मुस्कराहट द्वारा हरीजी दूसरों में अपनी क्षमताओं के प्रति विश्वास पैदा करते हैं, और उन्हें अपने दल में प्रविष्ट होने की प्रेरणा देते हैं...मुस्कराहट उनके जीवन-संघर्ष का एक अस्त्र है, वह शुद्ध ऐहलौकिक चीज़ है; उसका किसी पारलौकिक साधना या सत्ता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वह मुंशी जी के साथ कुछ दूर बढ़ा कि कहीं से मदन आकर साथ

हो गया। उसके साथ एक सज्जन और भी थे। मदन ने अपने साथी का परिचय कराया—

'आप हैं पं० हरीशदत्त त्रिपाठी, आजकल लखनऊ में रहते हैं, संस्कृत के बड़े भारी स्कालर हैं।' चन्द्रनाथ ने नमस्कार करते हुये पंडित जी पर दृष्टि डाली, शुभ्र पहाड़ी वर्ण और रचना, स्वस्थ, भरा चेहरा, तीस और पैंतीस के बीच अवस्था। शीघ्र ही वह त्रिपाठी जी से बातें करने लगा।

'यहाँ किस सम्बन्ध में आना हुआ ?'

'विश्वनाथ जी का दर्शन और गंगा-स्नान करने; यों यहाँ मेरा श्वसुरालय भी है और आजकल श्रीमती जी भी यहीं हैं; उन्हें ले जाना आवश्यक था।'

'आप अलमोड़े की ओर के मालूम पड़ते हैं।'

'अल्मोड़ा ज़िला का तो नहीं हूँ, पर हूँ उसी के आस-पास का।'

'लखनऊ में क्या सर्विस करते हैं ?'

'एक छोटे से कालेज में शिक्षक हूँ।'

'आज का प्रवचन कैसा लगा मदन बाबू ?' चन्द्रनाथ ने दूसरी ओर दृष्टि कर कहा।

'अच्छा था......उतना समझ में तो नहीं आया लेकिन फिर भी अच्छा लगा। ज़रा मन को शांति मिल जाती है।'

'पहुँचे हुए महात्मा हैं।' मुंशीजी ने मौन भंग करने के अवसर से लाभ उठाते हुए कहा।

चन्द्रनाथ—'स्थितप्रज्ञ' की व्याख्या बड़े ढंग से की।

मुंशीजी—क्या कहने हैं, खूब समझाते हैं। हमने आपको भक्त राका की कथा सुनाई थी, वह असली इस्थितप्रग्ग था, और उसकी बीबी उससे भी ज़्यादा।

यह कह कर मुंशीजी मग्न भाव से हँसे।

कुछ क्षण मौन रहा। उसे भंग करते हुए पं० हरीशदत्त ने

कहा—उनकी व्याख्या में कोई ऐसी नवीनता तो थी नहीं, वही निवृत्तिमार्ग की साधारण बातें थीं।

'वही तो असली चीज़ है', मुंशीजी ने कहा।

त्रिपाठी जी ने चन्द्रनाथ को लक्ष्य कर कहा—व्यक्तिगत रूप में मैं निवृत्तिमार्ग को हिन्दू जाति और हिन्दू राष्ट्र के लिये हितकर नहीं समझता। अपने धर्म और राष्ट्र की दुरवस्था से तटस्थ रहना मेरी दृष्टि में कोई श्लाघ्य आदर्श नहीं है। इसके विपरीत मैं सोचता हूँ कि जो जाति ऐहलौकिक सुख-भोग से किसी कारण वंचित रह जाती है वही ऐसे पलायनवादी आदर्शों की कल्पना करती है। जब हिन्दू राष्ट्र अपनी उन्नति के चरम शिखर पर था तब यहां संन्यास इतना प्रचलित न था और था भी तो वानप्रस्थ के बाद। हिन्दू राष्ट्रों का पतन होने पर ही मायावाद और निवृत्तिमार्ग इस देश में विशेष प्रचलित हुए।

चन्द्रनाथ—तो आप स्थितप्रज्ञ के आदर्श के क़ायल नहीं हैं!

त्रिपाठी—प्रोफेसर साहब, मैं तो घोर प्रवृत्तिवादी हूँ, कर्मकांडी मीमांसकों का सुयोग्य वंशधर। मैं कर्म में विश्वास करता हूँ, कोरे ज्ञान और सिद्धांतवाद में नहीं; ग्रहण में विश्वास करता हूं, त्याग में नहीं। त्याग हम हिन्दू बहुत कर चुके, जिसके फलस्वरूप यहां कुशन और हूण, शक और यवन और पुर्त्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ जाने कौन-कौन आये और घर बनाकर रहने लगे। अब महाशय जिना पाकिस्तान मांगेंगे, ईसाई लोग ख्रीष्टिस्तान, और लोग और स्थान; केवल हिन्दुओं को स्थान न रह जायगा। कष्ट की बात यह है कि आज भी हमारे नेता स्थितप्रज्ञता का ढोंग कर रहे हैं।

चन्द्रनाथ—आपके विचार बड़े उग्र हैं, अन्य पंडितों से बिल्कुल भिन्न।

त्रिपाठी—पता नहीं आप किन पंडितों की बात कर रहे हैं। हमारे देश के स्वर्ण-युग में राजनीति का संचालन पंडित ही

करते थे; चट्टानों जैसा दृढ़ उनका कलेजा होता था और बाण के अग्रभाग जैसा तीक्ष्ण मस्तिष्क; अयोग्य नरपतियों को अपदस्थ करके चन्द्रगुप्त जैसे सम्राटों को अभिषिक्त कर देना उनकी कूटनीति के लिये दुःसाध्य न था। आज तो (आप क्षमा करेंगे) भारतवर्ष में राजनीति वणिकवृत्ति के लोगों के हाथ में पहुँच गई है जिन्हें कहीं किंचित् भी रक्त गिरा हुआ देखकर मूर्च्छा आने लगती है। यह समझौते और भिक्षा की नीति आर्यों की नीति नहीं है, आर्यों की नीति है अत्याचारी को शासित करना, भुजाओं की शक्ति से अपने अधिकारों की प्राप्ति और रक्षा करना।

चन्द्रनाथ—क्या यह ज़रूरी है कि अधिकारच्युत व्यक्ति के पास शक्ति अधिक ही हो, अत्याचारी भी तो अधिक बलवान् हो सकता है।

त्रिपाठी—शक्ति संपादित करने से आती है, संगठन से, दृढ़ संकल्पशक्ति से; हिंसा-अहिंसा के सैद्धान्तिक विवाद से कभी राजनीतिक प्रश्नों का समाधान नहीं होता।......मैं यही तो कहता हूँ कि हम हिन्दुओं को शक्तिशाली बनने की चेष्टा करनी चाहिये। शेष प्रश्न तो स्वयं ही हल हो जावेंगे।

पं० हरीशदत्त त्रिपाठी मोटी धोती और मोटा गेरुआ रंग का कुर्त्ता पहन रहे थे। बोलते समय उनका चेहरा और भी दीप्त दिखाई पड़ता तथा किंचित् भारी स्वर विशेष गरिमा से मंडित प्रतीत होता।

गोदोलिया के चौराहे पर पहुँच कर त्रिपाठी जी ने चन्द्रनाथ से विदा मांगी। दोनों ने ही फिर मिलने की आशा प्रकट की। त्रिपाठी जी आज ही रात को जाने वाले थे, अतः चन्द्रनाथ के घर चलने के अनुरोध का पालन न कर सके। मदन भी त्रिपाठी जी के साथ ही चला गया।

राह में मुंशी जी ने चन्द्रनाथ से कहा—पंडित जी बड़े तेज मिजाज के जान पड़ते हैं, अभी नया खून है।

चन्द्रनाथ—हूं। लेकिन उनकी यह बात तो ठीक ही है कि हमें

अपने देश और जाति की समस्या से उदासीन नहीं होना चाहिये। ऐसी स्थितप्रज्ञता किस काम की जो हमें मानव-जाति के सुख-दुख के प्रति पूर्णतया उदासीन बना दे। मैं तो ऐसी एकान्त साधना की अपेक्षा लोक-सेवा को कहीं ऊँचा आदर्श समझता हूं।

मुंशी जी—यह भी ठीक है, लेकिन सच पूछो तो लोक-सेवा भी दुनियादारी है। ज्यादातर नेता लोग दुनियादार होते हैं; वे नामवरी चाहते हैं, और ताकत चाहते हैं। कहा है, लीडर को ग़म बहुत है पर आराम के साथ, दिनरात डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ। तो भाई भक्त आदमी दुनियादार नहीं हो सकता, और जो दुनियादार है वह भक्त नहीं हो सकता।

चन्द्रनाथ—गान्धी जी तो नेता होते हुए भी दुनियादार नहीं हैं, बल्कि सच्चे अर्थ में स्थितप्रज्ञ हैं।

मुंशी जी—गान्धी जी के बारे में सुना तो बहुत-कुछ है पर देखा कम है। हैं, गान्धी जी भी महात्मा हैं। लेकिन तिरपाठी जी गान्धी जी से खुश नहीं हैं, हाँ।

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर में वे लोग उसके घर के समीप पहुँचे। मुंशी जी बाहर से ही विदा हो गये।

अँधेरा हो चुका था, आशा उत्कण्ठा से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। कल वह जानेवाली थी; आज पति के घर में, कम-से-कम कुछ समय के लिये, उसकी अन्तिम मिलन-यामिनी थी। देर में आने के लिये कृत्रिम रोष के स्वर में उसने पति का उपालम्भ किया। स्पष्ट ही आज वह उससे अधिक आदर और प्यार चाहती थी।

आशा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, इस परिस्थिति ने उसके हृदय को स्पर्श किया। इस बृहत् उपेक्षाभर ब्रह्मांड में कोई एक व्यक्ति सम्पूर्ण आत्मीयता से किसी की प्रतीक्षा करे यह घटना उसे नितान्त मधुर लगी, नितान्त अर्थवती; किन्तु स्वयं ब्रह्माण्ड की दृष्टि से इसका क्या महत्व है? और एक स्थितप्रज्ञ साधक की दृष्टि से भी......

पिछले दिनों वह आशा में कितना अनुरक्त रहा है, कितना आसक्त; और कितना घनिष्ठ अन्तरंग परिचय उसने उसका प्राप्त किया है! इतना अपने को भूल जाने वाला स्नेह, इतना विश्वास, इतनी निर्भरता, इतना ममत्व...यही सब तो आशा है, इनके अतिरिक्त उसका स्वरूप और वास्तविकता कहाँ है? और उस वास्तविकता से उसका सम्बन्ध भी क्या है?

भोजन कराते हुये आशा ने पूछा—आज आप अन्यमनस्क से हैं, क्या बात है?

'कुछ नहीं', उसने मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा। और फिर आशा का हाथ पकड़ कर खींचते हुए बोला—तुम भी क्यों नहीं खा लेतीं, खाओ न।

किन्तु आशा नौकर की उपस्थिति में उसके साथ नहीं खाती। बोली—आप खा लीजिये, मैं तुरन्त ही खा लूंगी।

आशा के सम्पर्क के पिछले कुछ सप्ताहों में वह सचेत भाव से उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता आया है। इस प्रकार के प्रयत्नों की सफलता से उसे स्वयं भी आनन्द होता है। आशा के सौम्य मुख की प्रसन्न मुद्राओं से वह सुपरिचित है, आज भी वह उन मुद्राओं से उल्लास की किरणें फूटते देखना चाहता है। इन मुद्राओं में उसे कितना ममत्व है।......किन्तु ये मुद्रायें तो शरीर का धर्म हैं, मन और चित्त का, क्या उनसे भिन्न उसकी आशा का कहीं अस्तित्व है?

यकायक बातचीत के प्रवाह को रोक कर वह समीप उपस्थित आशा को गहरे अवधान से देखता है जैसे उसके बाह्य से भिन्न आन्तरिक वास्तविकता को जान लेना चाहता हो—जैसे वह निश्चय कर लेना चाहता हो कि दीखनेवाले मन और शरीर से भिन्न मानवता की कोई आत्मा भी होती है जो विश्व के अशेष सुख-दुख की उपेक्षा करके अपने में सन्तुष्ट रह सकती है। लेकिन कहां! उसे उस आत्मा का कहीं भी तो आभास नहीं मिलता। वह गम्भीरता से सोच रहा

है—यदि आशा का, मानवता का, सुख-दुख सत्य नहीं है तो फिर यह इतना साहित्य, इतनी दलबन्दियां और इतनी आर्थिक-राजनीतिक हलचलें, सब व्यर्थ ही हैं, निरर्थक और निःसार ; तब है ही क्या जिसके लिये मनुष्य जीवित रहे और प्रयत्न करे ?

कुछ दिन बाद चन्द्रनाथ को पता चला कि पं० हरीशदत्त त्रिपाठी राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ के सम्मानित सदस्य हैं।

५२

दूसरे दिन साँझ को पाँच बजते-बजते आशा चली गई। उसने तथा चन्द्रनाथ ने साधना की काफ़ी प्रतीक्षा की, पर वह न पहुंची। आशा के जाने के बाद घर में सहसा निस्तब्ध एकांत छा गया, ऐसा एकान्त जिसका चन्द्रनाथ अनभ्यस्त हो चुका था। प्रायः घंटे भर पहले मुंशी जी आये थे पर चन्द्रनाथ ने साथ चलने में असमर्थता प्रकट कर दी थी। वे संभवतः घाट पर गये होंगे, क्यों न वह भी वहीं चले ?

वह घर से बाहर निकला। गोधोलिया के चौराहे के पार पहुँचा था कि सहसा उसे मदन दिखाई दिया। 'मदन बाबू', उसने पुकारा। मदन रुक कर खड़ा हो गया। चन्द्रनाथ ने पहुँच कर कहा—दशाश्वमेध चल रहे हो, प्रवचन सुनने ?

'नहीं, यों ही जा रहा हूँ, रोज़-रोज़ प्रवचन सुनना मुझ से पार नहीं लगेगा।'

'क्यों ! कल का प्रवचन तो सुन्दर था।'

मदन ने कुछ देर विलम्ब करके यकायक कहा—हाँ, अच्छा उपदेश था। अगर कोई अपने को वैसा बना सके तो।...तो आप वहीं जा रहे हैं ?

'नहीं, वहां जाने का अब समय कहाँ है; चलो, यों ही घाट पर बैठेंगे।'

मदन ने ऐसे स्वर में जिससे सूचित होता था कि उसका कोई अपना निश्चय नहीं, है कहा—चलो।

घाट पर पहुंच कर चन्द्रनाथ ने पाया कि महात्मा जी का प्रवचन हो रहा है, यद्यपि अब उसके समाप्त होने का समय आ रहा था। मदन के साथ कुछ ही दूर वह जल के निकटवर्ती एक शिलाखंड पर बैठ गया।

शीतकालीन जल का दृश्य आकर्षक नहीं होता, अतः चन्द्रनाथ की दृष्टि प्रायः घाटों पर ही घूम रही थी। महात्मा जी के श्रोताओं के अतिरिक्त घाट पर विशेष भीड़ न थी, फिर भी साधुओं और भक्तों की संख्या नगण्य न थी। चन्द्रनाथ ने मदन से कहा—मुझे यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि यह काशी नगरी आज भी बहुत-कुछ वैसी ही है जैसी कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य या हर्ष के समय में थी। बीसवीं सदी के इस पंचम दशाब्द में भी जब कि विज्ञान के सैकड़ों आविष्कारों ने पृथ्वी की कायापलट कर दी है और राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं में सर्वत्र क्रान्तिकारी प्रयोग हो रहे हैं, जब कि भौतिकशास्त्र, समाज-शास्त्र, नर-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि के अन्वेषणों ने विचारशीलों की जीवन-दृष्टि में आमूल परिवर्तन कर दिये हैं, हमारे देश की यह नगरी अभी तक हजारों वर्ष पुरानी परम्पराओं को ढोती चली आ रही है। आज भी यहां लोग यह विश्वास लेकर आते हैं कि गंगाजी पापों का प्रक्षालन कर देती हैं, कि विश्वनाथ जी पर जल चढ़ाने से स्वर्ग-अपवर्ग मिलता है, कि ब्राह्मण भूदेव हैं जिन्हें दान करने से परलोक सुधरता है। अभी तक यहां साधुवेश का मान है और यहां आने वाले महात्मा, बड़े विश्वास से, हज़ारों वर्ष पुरानी शिक्षाओं को दुहराते हैं!

मदन—कुछ तो यहां की जनता कन्जर्वेटिव (रूढ़िवादी) है, जरूर, लेकिन जीवन के फन्डामेन्टल (मौलिक) सत्य इटर्नल (शाश्वत) होते हैं, साइंसवाले उन्हें बदल नहीं सकते।

चन्द्रनाथ—सुनता मैं भी आया हूँ कि सत्य शाश्वत है, नित्य है, लेकिन वह सत्य है क्या ? क्या कोई ऐसा सत्य है जो नित्य और ध्रुव है, जो बदलती हुई दुनिया का सापेक्ष नहीं है ?

मदन—एक ऐसा सत्य प्रेम है, प्रेम की पीर हर युग में वही रहती है।

चन्द्रनाथ—हूं; और कोई ऐसा सत्य है ?

मदन—कल महात्मा जी जो शिक्षा दे रहे थे वह भी इटर्नल सत्य है; हिन्दुस्तान के ऋषि-मुनियों ने जो कहा है वह हमेशा के लिये सच है।

चन्द्रनाथ—लेकिन ऋषि-मुनियों के अनुसार तो प्रेम मिथ्या है, माया है, मदन बाबू।

मदन—प्रेम कभी मिथ्या नहीं हो सकता, बशर्ते कि सच्चा हो, जैसा कि गोपियों का प्रेम था। असली प्रेमी माशूक़ में ही ईश्वर को देखता है।

चन्द्रनाथ चुप हो गया, यह मदन किसी प्रकार की आलोचना करने लायक नहीं है। वह ढाई अक्षर पढ़कर पंडित बनने वालों में है। काफ़ी दिनों इन शब्दों के मोह में फंसे रह कर चन्द्रनाथ अब उनसे मुक्त हो चुका है।

प्रवचन समाप्त हो चुका था, लोग क्रमशः जा रहे थे। चन्द्रनाथ ने मदन से कहा—चलो, थोड़ी देर महात्मा जी के पास बैठें।

मदन तैयार हो गया। चन्द्रनाथ ने पाया कि मुंशी जी भी वहां रुके हुये हैं।

कुछ लोग महात्मा जी को फल आदि की भेंट दे रहे थे, एक-दो उन से प्रवचन को लेकर चर्चा कर रहे थे।

पन्द्रह-बीस मिनट बाद अवसर पाकर चन्द्रनाथ ने महात्मा जी से प्रश्न किया—क्या साधक के लिये ईश्वर में विश्वास करना ज़रूरी है ? कई धर्म, जैसे जैन और बौद्ध, ईश्वर को नहीं मानते, बौद्ध लोग

आत्मा को भी नहीं मानते; इससे मालूम पड़ता है कि ईश्वर (अथवा आत्मा) में विश्वास धर्म का आवश्यक अंग नहीं है।

महात्मा जी ने प्रश्न सुना और सुनकर कुछ देर मौन रहे। फिर कहा—'मुक्ति-साधना के लिये ईश्वर में विश्वास आवश्यक नहीं है, उसे मानने न मानने से कुछ बिगड़ता नहीं। किन्तु एक चीज़ साधना के लिये परमावश्यक है, आत्म-निग्रह एवं सांसारिक भोगों से वैराग्य, इस सम्बन्ध में बौद्ध, जैन, हिन्दू हमारे देश के सभी विचारकों का मतैक्य है।' फिर उन्होंने सब को संबोधित करते हुये कहा—यही हमारे देश की प्रधान एवं मौलिक शिक्षा है, हमारे यहां लौकिक सुख-भोग को चरम नहीं माना गया।

उत्तर में कोई नई बात न थी और यह सोच कर कि उस चर्चा को आगे बढ़ाने से कोई लाभ न होता चन्द्रनाथ चुप हो रहा।

उसने सुना है कि अच्छे साधुओं के दर्शन और सम्पर्क का बड़ा प्रभाव पड़ता है; प्रज्ञाचक्षु महात्मा जी के सम्बन्ध में भी वह बहुत-कुछ सुन चुका था। अतः प्रश्न अथवा आलोचना किये बिना ही वह काफ़ी देर महात्मा जी के पास बैठा रहा। किन्तु लौटते समय उसे महसूस हुआ कि महात्मा जी के दर्शन या सान्निध्य का उसपर रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। उनके उत्तर ने उसकी बुद्धि को ही नहीं हृदय को भी प्रभावित छोड़ दिया।

राह में मुंशी जी ने कहा—ए प्रोफेसर साहब, महात्मा जी की यह बात समझ में नहीं आई कि बिना ईश्वर में विश्वास के भी साधना हो सकती है। ईश्वर में विश्वास न होगा तो फिर वैराग्य कैसे होगा? किसके लिये दुनिया के सुख को छोड़ा जायगा?

चन्द्रनाथ आलोचना के मूड में न था, 'हां-हूं' करके उसने मुंशी जी को टाल दिया।

महात्मा जी ने जो उत्तर दिया था, वह नितान्त साधारण था; उत्तर देने के ढंग में भी कोई विशेषता न थी। फिर भी, रात को सोते

समय, उनके कथन का एक अंश बार-बार उसके मस्तिष्क में गूंजने लगा—यह कि इस सम्बन्ध में हमारे देश के सभी शिक्षकों का मतैक्य है।

अवश्य ही मानवी चिन्तन पर जलवायु और भौतिक परिवेश का प्रभाव पड़ता है, तभी तो यहां के सब विचारक एक-से निष्कर्ष पर पहुंचते दिखाई देते हैं। किंतु सब क्षेत्रों में तो ऐसा नहीं है—दर्शनों के सिद्धान्त एक-दूसरे से कितने भिन्न हैं! कहां बौद्धों का क्षणभंग एवं अनात्मवाद और कहाँ वेदान्त का शाश्वतवाद!...फिर भी उसे लगता है कि इतने महान् विचारकों का साधना-सम्बन्धी मतैक्य एक असाधारण घटना है, असाधारण रूप में प्रभावशाली। क्या यह सम्भव है कि कहीं उसमें सत्य का कोई अंश हो?

उसी समय उसकी कल्पना के आगे विदा लेती हुई आशा की आर्द्र मूर्त्ति खड़ी होने लगी। थोड़ी देर तक वह मूर्ति उसके सम्मुख रही फिर सहसा उसका आकार-प्रकार बदलने लगा। चन्द्रनाथ ने देखा कि अब वहां एक दूसरी मूर्ति है—अन्तिम भेंट के दिन मदन से जुदा होती हुई माधुरी की। वह सहसा चौंक पड़ा। यह क्या है, यह क्या है; जीवन में इतना कष्ट क्यों है, और नारी इतनी कोमल, स्निग्ध और करुण क्यों है……

आशा के चलते समय चन्द्रनाथ ने उससे पूछा था—'कब आओगी?' उत्तर में उसने कहा था—'जब आप बुलायेंगे।' यह कहते हुए उसके अधखुले होंठों और आँखों में एक विचित्र भाव आ गया था—रहस्यमय आत्मीयता, अर्धस्फुट कष्ट, प्रच्छन्न विश्वास और ईषत् अधैर्य का। चन्द्रनाथ ने उसके नेत्रों को चूमते हुए कहा था—'हम जाने ही न देंगे।' इस पर आशा अतर्कित माधुर्य और आह्लाद से विभोर चेहरे से मुस्करा उठी थी। इस मुस्कराहट से चन्द्रनाथ क्षण-भर को चकित और अभिभूत रह गया था। बाद में उसके मन में प्रश्न उठा था--स्नेह और सौन्दर्य की ये अद्भुत अभिव्यक्तियां

सहसा व्यक्तित्व की किन तहों में से निकल पड़ती है !

और आज जब यकायक माधुरी की क्लिष्ट मूर्ति उसके कल्पना-नेत्रों के सामने आकर भूल गई तो उसके मन में दूसरा प्रश्न उठा—इतनी पीड़ा, इतना कष्ट सहसा कहां से निकलकर मानव व्यक्तित्व को आक्रांत कर देते हैं ! कहां से मनुष्य में इतनी दुःख सहने की क्षमता आई है !

क्या जिज्ञासु को यह अधिकार नहीं कि वह उन अहम्मन्य तत्व-वादियों से जो जीवन और जगत को समझने का दावा करते है इन प्रश्नों के उत्तर की मांग करे ?

५३

आशा के जाने के बाद दो दिन तक चन्द्रनाथ का घर में जी नहीं लगा, दो दिन तक उसने साधना की विशेष प्रतीक्षा भी की। तीसरे दिन जब वह सोकर उठा तो उसने पाया कि एक निश्चित कार्यक्रम उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। बात यह थी कि पिछली रात बहुत देर तक बैठा वह कतिपय अधूरी लिखी कापियों और पांडुलिपियों की जांच करता रहा था। उसे यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ था कि पिछले डेढ़-दो मास में अर्थात् विवाह के कुछ पूर्व से, उसने प्रायः कुछ भी काम नहीं किया था। उससे पहले वह दो भिन्न प्रकार के काव्य-संग्रह और एक निबन्धों का संग्रह तैयार कर रहा था, एक तीसरा काव्य-ग्रन्थ शुरू करने की प्रेरणा भी उसे निकट अतीत में ही मिली थी। किन्तु इस समय ये तीनों ही संग्रह अधूरे थे, काव्य-संग्रहों में से प्रत्येक में से अभी पांच-सात रचनाओं के लिये जगह थी, और निबन्ध-संग्रह में भी कुछ विषयों पर निबन्ध प्रस्तुत करने को थे।

अब तक शायद कभी भी उसने इतनी लम्बी कालावधि व्यर्थ नहीं की थी। किञ्चित् खीझ से भरा वह अपनी इस अकर्मण्यता अथवा दीर्घसूत्रीपन के कारणों की खोज करने लगा और तब उसने

लज्जा, ग्लानि और भय के साथ देखा कि इस सबका एक मात्र कारण उसका और आशा का नया सम्बन्ध था। आशा के व्यक्तित्व में बहुत दिनों बाद एक नारी को प्रेयसी अथवा सहचरी की भूमिका में पाकर वह सहसा अपने को और अपने काम को भूल गया था। पिछले दिनों में उसकी चिन्ता और भावनाओं का प्रायः एक ही केन्द्र रहा था—आशा और उसका सम्बन्ध, यह सम्बन्ध उसके शरीर और मन दोनों ही को व्यापृत रखने को पर्याप्त था। आज वह आश्चर्य से देख रहा है कि इस सम्बन्ध में और तो और स्वयं कविता को भी कोई जगह न थी। आशा के आने के बाद उस ने एक प्रेम-गीति भी नहीं लिखी—उसकी प्रतीक्षा की अवधि में ही उसने वैसी दस-बारह रचनायें की थीं। दूसरे विषय तो उपेक्षित रहे ही। यह परिस्थिति उसे विचित्र लग रही है; जो अनुभूति उसे दिन-रात घेरे रही उसने उसे काव्य-सृष्टि की प्रेरणा क्यों नहीं दी ?

किन्तु अब उसका सब प्रकार के सृजन-कार्य में खूब जी लग रहा था। कई अपूर्ण रचनाओं को उसने पूर्ण किया और कई संकल्पित कविताओं को लिख डाला। एक दिन रात में तीन घंटे बैठ कर उसने एक पूरा निबन्ध लिख लिया। सौभाग्य से इसी समय बड़े दिन की छुट्टियाँ भी हो गईं, चन्द्रनाथ को काम करने का सुनहला अवसर मिला। वह सबेरे ही उठ कर बिस्तर में पड़े-पड़े आठ-नौ बजे तक लिखता, फिर दोपहर में, फिर रात में; शेष समय नरेन्द्र या अन्य किसी मित्र के साथ गप करने में व्यय करता। आजकल उसे काम से न थकन होती, न ऊब। बीच-बीच में कभी-कभी आशा का पत्र आ जाता। उत्तर देते समय, इच्छा करने पर भी, वह वियोग-जन्य दुःख को बढ़ा-चढ़ा कर प्रकट न कर पाता। कभी-कभी आशा का पत्र पाकर उसे उसके सम्बन्ध में कविता लिखने की प्रेरणा मिलती।

एक बार उसने ऐसी एक कविता नकल करके आशा के पास भेज दी। कविता इस प्रकार थी—

प्रिय, कहाँ से आ सकीं तुम !
ये तरल कुवलय-विलोचन
यह चलित उडु-मीन चितवन
खिले-खोये कौन-सी नभ-दीर्घिका में पा सकीं तुम !
प्रिय, कहाँ से आ सकीं तुम !
दृग-विलोभन ये अधर-दल
मधुभरी मुसकान उज्ज्वल
कौन वासन्ती कुसुम-वन से सयत्न चुरा सकीं तुम !
प्रिय कहाँ से आ सकीं तुम !
ये मदिर अनमोल चुम्बन
ये तड़ित्संस्पर्श कम्पन
कौन-से घन-पात्र में ढाली सुरा से ला सकीं तुम !
प्रिय, कहाँ से आ सकीं तुम !
ये वचन रस-प्रीति घोले
ये प्रणय-आलाप भोले
कौन शुक-पिक-सारिका के कण्ठ से चुन पा सकीं तुम !
प्रिय कहाँ से आ सकीं तुम !
कौन-से परमाणुओं में
कौन-से विद्युत्कणों में
स्वर्णवल्ली-सी सचेतन प्रिय उठीं—खिल जा सकीं तुम !
प्रिय, कहाँ से आ सकीं तुम !

आशा ने इस पत्र का जो उत्तर दिया वह काफी लम्बा था। लिखा था—

मेरे हृदयेश्वर,

आपका प्रिय पत्र और कविता मिली। कविता सुन्दर ही नहीं अति सुन्दर है, वह जिस सौभाग्यशालिनी के सम्बन्धमें है वह भी अति सुन्दर। सोचती हूं कहाँ से इसकी प्रेरणा मिली है, मेरी अनुपस्थिति

में मुझ अकिंचनके धन पर यह किसने डाका डाल दिया। स्वयं मैं तो इसका विषय हो ही नहीं सकती—क्योंकि मैं किसी भी अंश में अलौकिक नहीं हूं, पूर्णतया इसी धरती की हूँ। दूसरा प्रमाण यह है कि मेरी उपस्थिति में आपको कभी ऐसी दिव्य प्रेरणा नहीं मिली।... एक अवांछित बात यह हुई कि कविता (पत्र नहीं) जीजी के हाथ में पड़ गई। आप जानते हैं वे पहले कभी-कभी कविता लिखती थीं, पर अब नहीं लिखती। आजकल तो जब देखो बच्चे की बातें करती हैं। मित्र मिलने आते हैं तो बड़े उदासीन भाव से व्यवहार करती हैं। कविता पढ़कर मुझे बधाई देने लगीं कि आप मुझसे बहुत स्नेह करते हैं। मैंने कहा, जीजी तुम भी हंसी करती हो; इस कविता में भला मैं कहां हूँ, किसी और के सम्बन्ध में होगी, मर्दों का क्या ठिकाना। सुनकर हंसने लगीं। बोलीं, 'तुम्हें बुलाने आयेंगे तो पूछूंगी।'...... आप यह न समझें कि मैं हंसी कर रही हूँ, सचमुच ही मुझे विश्वास नहीं होता कि कविता मेरे या किसी भी पार्थिव प्राणी के सम्बन्ध में हो सकती है। यदि मैं भूल नहीं करती तो ऐसी रचना को ही रोमांटिक या सब्जेक्टिव कहते हैं।...आपने जीजी से एक दिन आब्जेक्टिव कला की प्रशंसा की थी, पर क्या आपने कभी सोचा है कि स्वयं आपका मस्तिष्क कैसा है? मैं समझती हूँ गीति-काव्य उस प्रकार की कला का उपयुक्त माध्यम नहीं है। स्वयं मुझे उपन्यास और नाटक अच्छे लगते हैं, उतने ही अच्छे जैसे कि इतिहास, यद्यपि दोनों में भेद है।....आप इन अनर्गल बातों से नाराज नहीं होंगे, और यह भी नहीं समझेंगे कि इस कविता से मुझे दोहरा आनन्द नहीं मिला, यद्यपि सचमुच ही मैं अपने को इतनी सुन्दर कल्पनाओं के योग्य नहीं समझती।

मेरा यहाँ जी नहीं लगता, इसलिये भी कि जीजी प्रसन्न मूड में नहीं रहतीं। कभी-कभी किसी की याद भी सताती है।

जीजी को सप्रेम नमस्ते कह देंगे और भैया-भाभी को भी।

अपने सारे गुण-दोषों के साथ अपनी समझी जाने की अभिलाषिणी···

आपकी—आशा

पत्र पढ़कर चन्द्रनाथ प्रसन्न हुआ, कुछ चकित भी; उसे यह खयाल न था कि आशा इतने सीधे ढंग से उसकी रचना पर टिप्पणी कर सकती है। वह गम्भीरता से सोचने लगा कि उसकी कला-सृष्टि में अभी तक क्या कमियां हैं, किस कारण हैं, और वे कैसे दूर हो सकती हैं। दो दिन काफी सोच-विचार कर उसने आशा को पत्र का उत्तर लिखा।

आशा रानी,

तुम्हारे पत्र का उत्तर कुछ विलम्ब से दे रहा हूं, क्योंकि उसके द्वारा उठाये प्रश्नों पर जल्दी से सोचना-निर्णय कर लेना सम्भव न था। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि तुमने आत्म-प्रशंसा में भूलकर बदले में वैसी ही प्रशंसा कर देने के लोभ का संवरण किया।···तुम्हारी आलोचना को मैं आत्म-परीक्षण समझता यदि इस सम्बन्ध में कुछ अधिक विचार-विनिमय का अवसर मिला होता। लेकिन मुझे यह नहीं भूलना चाहिये कि तुम मेरे पास हाल ही में आई हो, अभी ही मिली हो, यद्यपि यह सोच कर आश्चर्य होता है कि इतनी जल्दी कैसे दो व्यक्ति एक-दूसरे को इतने अपने लगने लगते हैं।···गीतिकाव्य का जन्म प्रजातन्त्र और व्यक्तिवाद के साथ हुआ। उसमें मानव व्यक्तित्व के नये महत्व की चेतना है जिसका कारण शायद मनुष्य की वैज्ञानिक-यांत्रिक सफलतायें थीं। उसमें मनुष्य या प्रेमास्पद को उपास्य की जगह प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न भी है, क्योंकि उसी समय से उपास्य ईश्वर में विश्वास भी कम होता रहा है। आश्चर्य यही है कि हमारे गुलाम देश में भी यह व्यक्तिवाद इतने आशावादी रूप में—मैं रवीन्द्र के बारे में सोच रहा हूं—प्रतिष्ठित हो सका। सम्भवतः इसका मुख्य कारण रहा है हमारे लेखकों का जन-जीवन से विच्छेद। तभी तो रवीन्द्र में कहीं भारतीय जनता के

कष्टों की गूंज नहीं मिलती।....कुछ हद तक इस विच्छेद का विक्टिम या अपराधी मैं भी रहा हूं। जिसे अब तक धुंधले रूप में महसूस किया था उसकी स्पष्टतर चेतना तुम्हारे पत्र से प्राप्त हुई है। इसके लिये तुम्हें बधाई।

कला—जीवन—और यह कविता। मेरा विश्वास है कि जीवन के सम्पर्क से ही कला सप्राण बनती है। लेकिन एक प्रकार का जीवन समाज से विच्छिन्न व्यक्ति में भी है, उसका आदिम, जीव-प्रकृति से सम्बद्ध जीवन; इस जीवन का सम्पर्क सचेत क्षणों में उतना नहीं होता। कालिदास ने शकुन्तला को अनाघ्रात कुसुम कहा है, यह उपमा निपुण कल्पना मात्र नहीं, उसकी जड़ें मनुष्य और वनस्पति-जगत की मौलिक एकता में हैं। न जाने तारों, फूलों और पत्तियों से मनुष्य का कैसा निगूढ़ तादात्म्य है जिसकी झलकें कभी-कभी हृदय को मिलती हैं।...तुम्हें यह कैसे निश्चय हुआ कि शुक-पिक-सारिका के और स्वयं तुम्हारे स्वरों में कोई सादृश्य, कोई एकता नहीं है, और वासन्ती कुसुम-वन और तुम्हारी मुस्कराहट में कोई साम्य नहीं ?...तुम अपने बारे में सब कुछ स्वयं ही जानने का दावा क्यों रक्खो ? हम में कुछ चीजें होती हैं जिन्हें दूसरे ही देख सकते हैं—सिर्फ वे जो हमें प्यार करते हैं।

देखता हूं मेरी आशा में ईर्ष्या तत्व का भी अभाव नहीं है। तभी तो सोचती हो, कहां से इसकी प्रेरणा मिली है। शायद तुमने यह हँसी में लिखा है, पर मेरे निकट यह गम्भीर वस्तु है। कितनी बार मैंने चाहा कि तुम से अपने सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट बातें कह दूं, पर कभी अवसर न मिला; या यह कि साहस न हुआ। कभी-कभी मैं सोचता हूँ, क्या मैं तुम्हारे योग्य था, तुम जो कि एक नये फूल की तरह नये, विशुद्ध मधु से भरा प्याला लेकर आई थीं, एक निर्दोष हृदय और वैसा ही अनुराग।... सोचता हूं जो बात सामने कहने को मुँह नहीं खुलता वह पत्र में लिख दूँ—क्योंकि तुम से, तुम जो कि मुझे

इतना अपना समझती हो और जिसे मैं हृदय के इतना निकट महसूस करने लगा हूँ, कुछ भी छिपाना पाप है।

मैं कहना चाहता हूं— और मुझे विश्वास है कि मेरी आशा सब सुन–समझ कर भी मेरे प्रति अब जैसा ही भाव रख सकेगी— कि मैं...कि तुम से विवाह करते समय, उससे पहले, मैं शुद्ध न था। और इसका सिर्फ यही मतलब नहीं कि मैं एक दूसरी पत्नी के साथ रह चुका था—यह तो तुम जानती थीं, सभी जानते थे, बल्कि यह भी...कि मेरा अन्यत्र भी अवाञ्छित संबंध रह चुका था।...किंतु वह संबंध, मैं विश्वास दिलाता हूं, केवल शरीर का सम्बन्ध था, मन का नहीं और उसके लिये कुछ हद तक परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार थीं।

मैं आज तुम्हारे स्नेह की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि भविष्य में तुम्हारे स्थान में, शरीर और मन दोनों की भूमिकाओं में, कभी किसी दूसरे को जगह न होगी। मैं अवगत हूँ कि मैं यह प्रतिज्ञा तुम्हारे ही बल पर कर रहा हूँ। तुम्हारे स्नेह और ममत्व की शक्ति से ही मैं उसे निभा सकूंगा। तुम्हारी इन शक्तियों में मुझे पूरी आस्था है।

तुमने एक शिकायत की है—कि तुम्हारी उपस्थिति में वैसी कविता लिखने की प्रेरणा न मिली। किन्तु भला मैं तुम से समय बचाकर कविता को कैसे दे सकता था! क्यों कोई इतना मधुर हो कि कोई दूसरा सब-कुछ भूल कर उसी के पास बना रहे? मैं हंसी नहीं करता, सच ही कह रहा हूं; कविता को अवकाश देने के लिये तुम्हें अपना बन्धन कुछ ढीला करना पड़ेगा। नारी पुरुष की, विशेषतः कलाकार की, सबसे बड़ी दुर्बलता है; अपने पर और अपने प्रेमी पर संयम का दृढ़ प्रतिबन्ध लगाकर ही वह उसकी शक्ति बन सकती है।...गत वर्षों और पिछले कुछ दिनों के सम्मिलित अनुभव के बल पर मैं कह सकता हूं कि कविता लिखने की स्फूर्ति तब होती है जब कलाकार तीव्र अतृप्ति और अतितृप्ति की बीच की स्थिति में होता है—जब उसके शरीर और मन में, तीव्र लालसा से भिन्न,

जीवन की मीठी चाह होती है ।...मुझे लग रहा है कि कला-सृष्टि और चिन्तन भी जीवन के उपभोग के ढंग हैं, अतः उन्हें अनुष्ठित करने के लिये बाहरी व्यापारों से शक्ति रोक कर रखना ज़रूरी है। इसीलिये प्रायः कलाकार और विचारक एकान्त की कामना करते हैं। किन्तु इससे तुम यह निष्कर्ष न निकालोगी कि मैं अपनी आशा से अलग रह कर कुछ भी कर सकता हूँ। और मैं सोच रहा हूँ, क्यों मनुष्य बाहरी जीवन से सन्तुष्ट न हो कर इस आन्तरिक जीवन की चाह करता है, और क्यों इसमें उसे अधिक एवं उच्चतर तृप्ति मिलती है ! क्या इस वस्तुस्थिति का हमारी तात्विक रचना से कोई सम्बन्ध नहीं है !...कला और दर्शन में अपेक्षाकृत सीमित शक्तियों का व्यय करके हम अपरिमित जीवन का उपभोग करते हैं, क्यों नहीं हम सीमित बाह्य जीवन से सन्तुष्ट रहते !

अब मैं सबसे ज़रूरी बात करूं, तुम कब तक यहाँ आओगी, कब मैं इलाहाबाद पहुँचूं !...तुम्हारे पीछे रानी एक बार भी यहाँ नहीं आई हैं, न जाने क्या कारण है, आज हॉस्टल पहुँचने का इरादा है।

अभिन्न,

चन्द्रनाथ

५४

आज दिन के चार बजे से ही चन्द्रनाथ साधना की प्रतीक्षा कर रहा है। कल वह हॉस्टल गया था, साधना भेंट करने आई थी। पूछने पर कि वह क्यों नहीं आ सकी पता चला कि उसकी तबीयत कुछ खराब हो गई थी। क्या खराब हो गयी थी यह विवरण उसने नहीं दिया, पर चन्द्रनाथ को लगा कि उसका चेहरा बहुत उदास है।

सांझ को लगभग साढ़े-सात बजे साधना आई, प्रतीक्षा करते-करते चन्द्रनाथ अभी ही भोजन करने बैठा था। उसके आते ही चन्द्रनाथ ने कहा—रानी, खाना खा लो।

'नहीं, मैं खाकर आई हूँ, तभी तो कुछ देर हो गई।'

'यह अन्याय है, रानी, भाभी की अनुपस्थिति का यह अर्थ नहीं कि....'

'नहीं, किसी की उपस्थिति-अनुपस्थिति से क्या; और फिर मेरे लिये यह घर ग़ैर थोड़े ही है, भाभी कै दिन से आई हैं।'

'वही तो।'

'मैं आजकल जरा परहेज़ का खाना खाती हूँ, इसीलिये सोचा कि खाकर चलूं।'

'क्या खाना खाती हो तुम, रानी?'

'सब कुछ खाती हूँ, घी, दूध और दाल को छोड़कर।'

'अरे! घी और दूध क्यों छोड़ दिया है? तब भला तुम खाती ही क्या हो, ऐसी क्या शिकायत है?'

'कुछ नहीं', साधना रूखे स्वर में हंसी, और फिर उठाकर एक पुस्तक देखने लगी।

चन्द्रनाथ ने भोजन समाप्त किया और फिर साधना की कुर्सी के पास पलंग पर बैठ गया। ठंड बढ़ रही थी, उसने रजाई से अपनी टाँगें ढक लीं और कम्बल साधना की ओर बढ़ाते हुये कहा—इसे पैरों पर डाल लो, वैसे ही तुम कमज़ोर हो, कहीं ठंड न खा जाना।

साधना ने कम्बल लेते हुये कहा—मुझे ठंड-उण्ड न लगेगी, मेरे भीतर काफ़ी गर्मी है।

'हूँ, सो तो मैंने अगस्त में देखा था। उससे पहले मैं तुम्हें काफ़ी नाजुक समझता था।'

'और अब—अब मैं बड़ी कठोर मालूम पड़ती हूँ क्या?'

'अरे नहीं, मेरा यह मतलब न था। मैं कह रहा था कि मानसिक गठन में तुम औरों की तुलना में काफ़ी दृढ़ और साहसी हो।'

'औरों की किसकी? भाभी की तुलना में न?'

'नहीं, आशा को मैं अभी इतना नहीं जानता, किन्तु अपनी जीजी की तुलना में अवश्य ही तुम.......'

'यह इस समय जीजी की याद कैसे आ गई !'

'क्यों...? इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?'

'मैं समझती थी कि भाभी के आने के बाद तुम बाकी सब को भूल गये हो।'

'नहीं रानी, यह तुम्हारा अन्याय है। अपनी सारी कमियों के बावजूद जीजी मेरी अपनी थीं। और उनका चिन्ह तो आज भी मेरे साथ उपस्थित है, उन्हें भुलाया ही कैसे जा सकता है।'

'सुधीर को तुमने अब तक बुलाया क्यों नहीं ?'

'मैंने सोचा कि इन छुट्टियों में लग कर काम कर लूं, किसी छोटी छुट्टी में जाकर लिवा लाऊँगा।'

'एक बात पूछूं ?'

'पूछो न, ऐसी क्या बात है ?'

'क्या मेरे प्रति तुम्हें अब उतना ही स्नेह है जितना पहले कभी था ?'

कुछ झिझक के साथ चन्द्रनाथ ने उत्तर दिया—शायद बीच में कुछ कम हो गया था; शायद— क्योंकि मुझे ऐसे अवसर की याद नहीं आ रही है जब मैंने तुम्हें अपनी से भिन्न समझ कर याद किया हो, कभी तुम्हारे प्रति क्रोध भी हुआ तो वैसा ही जैसा बहुत अपनों के प्रति होता है। लेकिन अब तो तुम मुझे बहुत ही निकट मालूम होती हो, विशेषतः जब से तुम बीमार हुई हो।

'किसी की बीमारी के कारण उसके प्रति दया उमड़ सकती है, स्नेह नहीं।'

'यह कहना कठिन है कि कहां दया खत्म होती है और स्नेह शुरू होता है। लेकिन मैं समझता हूँ कि पिछले कुछ महीनों में तुम बराबर मेरे निकट आती रही हो, विशेषतः आशा के आने के बाद।...क्या तम्हें यह महसूस नहीं हुआ ?'

'हुआ है,' साधना ने उत्साह-शून्य स्वर में कहा। फिर बोली—मेरा वह चित्र देखोगे ?

'ज़रूर ; कितने दिनों के बाद तो तुम आज आई हो।'

साड़ी के ऊपर साधना कोट पहन कर आई थी। उसकी जेब में से सावधानी से उसने एक बड़ा लिफाफा निकाला और उसमें से एक चित्र। चित्र को कुछ देर तक वह स्वयं ही देखती रही, फिर चन्द्रनाथ के माँगने पर उसे दे दिया।

चित्र एक स्त्री का था। सहसा देखने पर उसमें कोई विशेषता नहीं मालूम पड़ती थी। वयोवृद्ध स्त्री, देखने में अभिजात कुल की, शरीर पर सफेद साड़ी, सूने निर्जन स्थान में एक तरफ़ जाती हुई। दूर क्षितिज में एक ओर पंचमी का चाँद और कतिपय तारे टिमटिमा रहे हैं, दूसरी ओर घना अन्धकार है, जैसे कोई रहस्यमयी खोह हो। स्त्री का मुख उस अन्धकार की दिशा में है, और पैर भी उधर ही बढ़ रहे हैं। पीछे से हवा साड़ी को आगे प्रेरित कर रही है। स्त्री के दोनो हाथ आगे की ओर फैले हुये हैं। उसके चेहरे पर निराशापूर्ण उत्सर्ग और उदासी का भाव है, जैसे उसने भले प्रकार संघर्ष की व्यर्थता को समझ लिया हो और अब चुपचाप, नैसर्गिक प्रेरणाओं की अनुकूलता में, अज्ञात भाग्य-शक्ति द्वारा निर्धारित दिशा में जा रही हो।

चन्द्रनाथ ने बड़े ध्यान से चित्र को देखा, फिर कहा—वृद्ध नारी का अंकन बड़ा यथार्थ हुआ है।...मालूम पड़ता है वह जीवन अथवा मानव-जीवन की प्रतीक है जिसका अन्त अन्धकारमय मृत्यु है।

साधना—आपको ऐसा लगता है ?

चन्द्रनाथ—क्यों, तुम्हारा अभिप्राय क्या था ?

साधना—मेरा कोई खास तौर से दार्शनिक अभिप्राय न था।

चन्द्रनाथ चित्र पर पुनः दृष्टि डालता हुआ बोला—यह एक संकट-ग्रस्त बूढ़ी स्त्री का चित्र भी हो सकता है। लेकिन तब उसमें इतनी चिन्तनपूर्ण उदासी दिखाने की क्या सार्थकता होगी।

साधना—इसे मेरी कला की कमी समझना चाहिये कि मैं जो कहना चाहती हूँ उससे कम या अधिक व्यक्त कर डालती हूँ।

चन्द्रनाथ—यह केवल तुम्हारी कमी नहीं है। कलाकार हमेशा विशेष को व्यक्त करता है, किन्तु प्रत्येक विशेष अनेक सामान्यों का प्रतीक होता है। इसीलिये दर्शक या व्याख्याता के लिये उसमें विभिन्न अर्थ देखना सम्भव हो जाता है। श्रेष्ठतम कला को सामान्य काल्पनिक व्याख्याओं से अलग विशेष के अंकन में ही महान् होना चाहिये। इस दृष्टि से मुझे यह चित्र सफल जान पड़ता है।

शिवसरन अपना काम कर चुका था और जाने की आज्ञा मांग रहा था। चन्द्रनाथ ने उससे कहा—तुमने उस कमरे में रानी का बिस्तर भी ठीक कर दिया?

'नहीं सरकार, अबहि कर देत हैं।'

यह शिवसरन कितना मूर्ख है। अब तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि साधना सांझ में आकर दूसरे दिन नौ-दस बजे से पहले गई हो। आशा के आने से पहले यही क्रम था, और उसके बाद भी यही क्रम चलता रहा है। फिर अब तो जाड़ों की रात है, कैसे साधना साइकिल पर इतनी दूर वापस जा सकेगी।

शिवसरन के जाने के बाद दोनो कुछ देर मौन रहे। फिर चन्द्रनाथ यह कहता हुआ कि नीचे का दरवाज़ा बन्द कर दूं उठ खड़ा हुआ। नीचे से लौट कर फिर बिस्तर में बैठ गया। बोला—थकन तो नहीं लग रही है, रानी?

'नहीं।'

कुछ देर फिर खामोशी रही। सहसा साधना ने चित्र को पुनः मेज पर से उठा लिया और उसे देखती हुई बोली—जानते हैं यह चित्र बनाते समय मेरे मन में क्या था?

चन्द्रनाथ ने दृष्टि घुमा कर पूछा—क्या था, ज़रा मैं भी तो समझूं कि चित्रकार का मस्तिष्क कैसे काम करता है।

साधना—नहीं, वैसी कोई बात नहीं, आखिर चित्रकार भी मनुष्य होता है, सिर्फ यह कि वह विकारों और भावनाओं को प्रत्यक्ष सम्बन्धों के रूप में प्रकट करता है।........इस चित्र को बनाते समय मैं मुख्यतः अपने सम्बन्ध में सोच रही थी, सोच रही थी कि बूढ़ी हो जाने पर मैं कैसी मालूम पड़ूँगी।

यह कह कर वह महीन स्वर में कंठ से हंसी।

साधना की बात और हास्य को सुनकर चन्द्रनाथ स्तब्ध रह गया। बोला—तुम भी बड़ी विचित्र हो, बूढ़े तो एक दिन सभी होते हैं, उसके सम्बन्ध में इतनी संवेदनशीलता क्यों ?

साधना—हां, बूढ़े तो सभी होते हैं। फिर भी एक जीवन सफल होता है, एक निष्फल। एक दिन मुझे लगा कि मेरा जीवन एकदम निष्फल है, सार-हीन, निरर्थक ; और ऐसा ही जीवन जीते हुये मैं सहसा बूढ़ी हो गई हूँ।......इस दृष्टि से बतलाओ कि चित्र ठीक बना है या नहीं।

यह कहकर चित्र देखती हुई वह फिर पहले की भांति हँसी।

चन्द्रनाथ लेटने की मुद्रा छोड़ कर सहसा सजग भाव से उठ कर बैठ गया। साधना के मुख पर दृष्टि गड़ा कर बोला—तुम्हारा जीवन निष्फल या निरर्थक है ऐसा क्यों समझती हो ? मैं तो ऐसा समझने का कोई कारण नहीं देखता।

'नहीं यों ही; कभी-कभी ऐसा लगता है'....कहते-कहते वह रुक गई।

'कैसा लगता है, कहो न।'

'जाने कैसा लगता है, लगता है जैसे कहीं कोई पूर्णतया अपना नहीं है, यानी ऐसा कि जिसे मैं सम्पूर्ण अर्थ में अपना समझ सकूं, और न कोई मुझे पूर्णतया अपना समझने वाला है। और लगता है जैसे जीवन में भारी शून्यता है, एक बड़ा खोखलापन।'

कुछ देर मौन रह कर चन्द्रनाथ ने कहा—ऐसा तुम्हें नही समझना

चाहिये, रानी; हम लोग अपने नहीं तो क्या हैं ?... तुम्हारा हम पर पूरा अधिकार है, विशेषतः मुझ पर। जब कभी ऐसी प्रतीति हो तो सीधी यहां चली आया करो। समझो कि हम लोग पूर्णतया अपने हैं।

'सो क्या मैं जानती नहीं, लेकिन फिर भी कभी-कभी न जाने मन की कैसी स्थिति हो जाती है।'

साधना ने एक दूसरी कुर्सी खींच कर अपनी टाँगें और पैर उसमें रख लिये थे, और उन पर कम्बल डाल लिया था—उसके हाथ कभी कोट की जेब में चले जाते थे और कभी टांगों पर पड़े कम्बल पर। इस समय वे दूसरी स्थिति में घुटनों पर थे और वह सूनी दृष्टि से सामने ताक रही थी।

चन्द्रनाथ ने धीरे से उसका एक हाथ उसके घुटनों पर से उठा कर गोद में रख लिया और उसे अंगुलियों से दबाता हुआ बोला—रानी, तुम्हें प्रसन्न रहने की कोशिश करनी चाहिये, तुम तो बड़ी बहादुर लड़की हो।

'कोशिश करने को क्या मैं कुछ उठा रखती हूँ ? लेकिन परिस्थितियों का भी तो असर होता है।'

'हाँ, सो तो है,' कह कर वह चुप हो गया। कुछ क्षण बाद विशेष स्निग्धता से साधना के हाथ और कलाई को अपने हाथ में थाम कर देखता हुआ बोला—'कितने नाजुक हाथ हैं तुम्हारे और कितने कोमल !' फिर धीरे-धीरे हाथ को होंटों तक उठा कर उसने उसे बीच हथेली में चूम लिया और उसके बाद धीरे-धीरे उसे अपने पहले स्थान पर पहुँचा दिया। फिर कुछ देर बाद बोला—प्रेम दो प्रकार का होता है, रानी; एक होता है व्यक्तित्व का मोह जिसके मूल में अवचेतन का आकर्षण रहता है। उस स्थिति में प्रेमास्पद का व्यक्तित्व तीव्र अनुराग से रंगे नेत्रों से देखा जाता है, और नितान्त मूल्यवान जान पड़ता है। किन्तु वह प्रेम वास्तव में एक प्रकार का आवेश होता है, प्रायः अपने में केन्द्रित और स्वार्थपूर्ण। प्राप्ति

और उपयोग द्वारा अपने को सन्तुष्ट करना उसका प्रधान लक्ष्य रहता है। कोई ज़रूरी नहीं कि ऐसा प्रेम टिकाऊ हो; रहस्य और भावावेश का आवरण हटने पर, वास्तविकता की आँच से, वह शीघ्र ही पिघल कर बह जा सकता है।...इसके विपरीत स्थायी प्रेम प्रेम-पात्र के शील और सौन्दर्य के घनिष्ठ परिचय में उत्पन्न होकर उसके प्रति बढ़ते हुये आदर एवं प्रशंसा के भाव से पुष्ट होता है। पहले प्रेम में भावावेश प्रधान रहता है, दूसरे में भावना और दृष्टि का समन्वय होता है। पहली कोटि का प्रेम प्रेमियों को विश्व से विच्छिन्न कर देता है जब कि दूसरा दोनों की जीवन-यात्रा को स्फूर्ति और बल देता है। प्रारम्भ में तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कुछ-कुछ प्रथम कोटि का था। वह ऊँची किन्तु अव्यावहारिक आदर्शवादिता से अनुप्राणित था, साथ ही उसमें मोह का अंश भी था। शायद इसीलिये बीच में वह कुछ हलका पड़ सका। पर अब वैसा नहीं है, अब हमारा सम्बन्ध दूसरी कक्षा में पहुँच चुका है। अब तुम उस सम्बन्ध पर निर्भर कर सकती हो और अधिकार-पूर्वक उसका अवलम्ब ले सकती हो।

साधना चुपचाप सुन रही थी।

'स्थायी प्रेम का आधार,' वह कह रहा था, 'समझपूर्ण सहानुभूति और त्याग होना चाहिये, एक-दूसरे के लिये कष्ट सहने की मौन तत्परता, वैसे प्रेम को जीवन-यात्रा का मुख्य संबल होना चाहिये।... मैं सोचने लगा हूँ कि बहुत तीव्र रूप में व्यक्त होने वाला प्रेम, वह प्रेम जो बहुत अधिक रोता और आहें भरता है, अन्ततः स्वास्थ्यकर नहीं होता। मदन और माधुरी का उदाहरण तुम्हारे सामने हैं।... मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि माधुरी अब मदन से पत्र-व्यवहार तक नहीं करती। मैं जानता हूं इसका यह अर्थ नहीं कि माधुरी को मदन से प्रेम नहीं रहा—सम्भवतः माधुरी की घोर निराशा ही इसका कारण है। किन्तु कारण कुछ भी हो, उसका फल तो मदन को भोगना ही पड़ रहा है।'

वह चुप हो गया, इस आशा में कि साधना कुछ कहे, पर साधना पहले की भाँति मौन रही। वह इस समय कुछ अधिक चुप और उदास थी।

कुछ देर बाद उसने ममताभरे स्वर में कहा—चलो रानी, अब तुम आराम करो; बहुत देर इस तरह बैठे-बैठे हो गई।

वह धीरे-से उठ कर खड़ी हो गई; चन्द्रनाथ उसे पहुँचाने को साथ चलने लगा।

दूसरे कमरे में पहुंच कर साधना बिछी हुई खाट पर बैठ गई।

चन्द्रनाथ ने उससे पुनः आराम करने को कहा, और कुछ मिनिट उस कमरे में टहल कर वह लौट आया। चलते समय उसने दरवाजा बन्द कर दिया था।

आकर अपने कमरे के किवाड़ भेड़ कर वह एक पुस्तक पढ़ने लगा। प्रायः चालीस मिनट बाद पुस्तक बन्द करके वह लघुशंका के लिये उठा, देखा कि साधना के कमरे की बत्ती जल रही है। उसे आश्चर्य हुआ, क्योंकि साधना के कमरे में इस समय पढ़ने-लिखने का भी कोई सामान न था।

'अरे रानी, तुम अभी तक नहीं सोईं!'—कहता हुआ वह साधना के कमरे में पहुँच गया।

दोहरे किये हुये सेमल की रुई के तकिये पर सिर रक्खे सीने तक रजाई ओढ़े साधना लेटी चुपचाप छत की ओर ताक रही थी। चन्द्रनाथ के पहुँचने पर वह धीरे से सिमट कर अधबैठी मुद्रा में हो गई और पास की कुर्सी का संकेत करके उससे कहा, 'बैठो।'

चन्द्रनाथ ने बैठते हुए कहा—तुम अभी सोईं नहीं?

'कैसे सोऊं, नींद ही नहीं आती।'

उसका कंठ-स्वर बड़ा उदास था; चन्द्रनाथ ने स्तम्भित होकर देखा कि उसकी आँखों की कोरों में कुछ बूँदें चमक रही हैं।

'अरे! यह क्या बात है।' कह कर उसने अपनी कुर्सी और

निकट खिसकाई और साधना का हाथ अपने हाथ में ले लिया। 'क्या बात है रानी, तुम रो क्यों रही हो? क्या हॉस्टल में किसी से झगड़ा हो गया?'

'नहीं', कह कर साधना अब सचमुच ही रोने लगी।

चन्द्रनाथ क्षणभर को किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा। फिर गहरे आश्चर्य के स्वर में बोला—तुम रोती क्यों हो रानी, ऐसी क्या बात हो गई है?

साधना ने रजाई पर सिर झुका कर हाथों से आंखें ढक लीं और वैसे ही रोते हुये कहा—कोई खास बात नहीं हुई है, रोज़ ऐसे ही रोती हूँ और ऐसे ही जागती हूँ। रात-रात भर नींद नहीं आती। शरीर में जलन पड़ती रहती है जैसे किसी ने आग फूंक दी हो।...कोई कहीं ऐसा नहीं मिलता जिससे मन की दो बातें कह सकूं।

चन्द्रनाथ सुनकर स्तब्ध रह गया।

साधना को किस प्रकार का कष्ट रहता है इसका कुछ-कुछ आभास उसे हो रहा है। इस कष्ट का संकेत उसे करके वह कितने विश्वासपूर्ण अपनेपन का परिचय दे रही है यह भी वह समझ रहा है। पर इसके उत्तर में वह क्या कहे, और क्या करे?

काफ़ी देर तक चिन्तन की मुद्रा में वह दीवार और छत के संधिस्थल को देखता रहा। फिर भूमि की ओर दृष्टि किये साधना के चेहरे से आँखें बचाता हुआ बोला—

'तुम्हारा कष्ट मैं समझता हूँ, रानी, लेकिन उसे धैर्यपूर्वक सहने के अतिरिक्त उपाय ही क्या है।'

'और यदि सहन न हो सके तो?' साधना ने सहसा मुख उठाकर तीव्र स्वर में कहा, 'सहनशीलता की शिक्षा देना जितना आसान है उतना उसे व्यवहार में बरतना नहीं। पिछले महीनों में मैं बहुत-कुछ प्रयत्न कर चुकी हूँ।'

कुछ क्षण बाद उसने और भी तेज स्वर में कहा—फिर प्रश्न

उठता है कि मैं ही क्यों सहन करूं, मुझे ही क्यों इसकी शिक्षा दी जाय, जब कि दूसरों के लिये कोई बन्धन या प्रतिबन्ध नहीं है ?

स्पष्ट ही वह अरुणकुमार की दूसरी शादी का संकेत कर रही थी। उसके कहने के ढंग से लगता था कि वह इस सम्बन्ध में बहुत काफ़ी सोच-विचार कर चुकी है।

'और इस सहनशीलता से लाभ भी क्या है ! क्यों मनुष्य ऐसे कष्ट को सहे जिसका प्रतिकार हो सकता है ? मेरे जलने और सहने से संसार में किसका भला होता है, और मेरे न सहने से किसे कष्ट होने की सम्भावना है ?'

यह क्या वह अच्छाई-बुराई की योगेन्द्र द्वारा दी हुई कसौटी का प्रयोग कर रही है ? चन्द्रनाथ उत्तर में कुछ भी न कह सका।

'साल भर वहां जलती रही और अब छै महीने से यहां जल रही हूं, जैसे मेरी ज़िन्दगी जलने के लिये ही है', कह कर साधना ने फिर मुख नीचा कर लिया और फिर रोने लगी।

'रोओ नहीं रानी...सुनो...मेरी बात सुनो', कहता हुआ वह साधना की पीठ और सिर पर हाथ फेरने लगा। फिर उसने माथे के ऊपरी भाग में हथेली जमा कर सिर को ऊंचा करने की कोशिश की।'

साधना ने प्रतिरोध किया। चन्द्रनाथ कह रहा था—चुप हो जाओ, रानी, हमें तत्परता से इस बात की कोशिश करनी चाहिये कि तुम्हारा पुनर्विवाह हो जाय।

'विवाह !' साधना ने सिर उठा कर उत्तेजित स्वर में कहा, 'तुम्हारी बुद्धि को भी यही सबसे बढ़िया उपचार मालूम पड़ा। मानो नारी के लिये इसके अतिरिक्त कोई गति ही नहीं है, जैसे वह उसके जीवन का चरम साध्य हो, उसका एकमात्र ध्येय।...हिन्दू समाज में भला कौन एक भागी हुई स्त्री से विवाह करने को तैयार होगा। और यदि कोई अभावग्रस्त गँवार तैयार भी हुआ तो क्या मेरा यही कर्तव्य होगा कि उसे कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करके उस पर श

और मन न्योछावर करती रहूँ ? इससे खराब स्थिति तो मेरी पहले भी नहीं थी, तब मुझे एक संभ्रान्त व्यक्ति की पत्नी होने का गौरव तो प्राप्त था।'

चन्द्रनाथ ने इस समस्या पर इस ढंग से कभी नहीं सोचा था। जब-जब साधना के विवाह की बात उसके मन में उठी तब-तब उसने यही अनुभव किया कि उसमें साधना के तैयार होने के अतिरिक्त और कोई अड़चन नहीं है। कोई युवक जिसे साधना पसन्द करे वह उसे अस्वीकार भी कर सकता है यह बात उसके दिमाग़ में आई ही नहीं। आज उसे अपनी इस निराधार आशावादिता पर आश्चर्य हो रहा था। जब कुमारी रहते हुये साधना जैसी सम्पन्न घर की लड़की के विवाह में कठिनाई हो सकती थी तो अब तो कहना ही क्या था—अब तो उसकी स्थिति हर तरह कहीं ज्यादा खराब थी;

साधना ने सिर रजाई पर करवट से रख लिया था, इस तरह कि उसका मुख चन्द्रनाथ की ओर था। वह इस समय सस्वर नहीं रो रही थी, पर उसकी आँखों से लगातार बूंदें टपक रही थीं, और वह धीरे-धीरे सुबक रही थी। चन्द्रनाथ उसे आर्द्र असहायता के भाव से देख रहा था। कभी वह सोचता—रानी की स्थिति कितनी दयनीय है, कितनी करुण; और कभी पूछता—उसकी स्थिति ऐसी क्यों है ? उसने ऐसा कौन-सा अपराध किया है ?

साधना का एक हाथ अपने हाथ में लेते हुये उसने कहा—'तुम्हें बहुत कष्ट हुआ है, रानी, और तुमने बहुत सहा है; मेरे हृदय की सम्पूर्ण सहानुभूति तुम्हारे साथ है। लेकिन मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।' उसके इन शब्दों से साधना और भी फूट कर रोने लगी। क्रमशः अपना सिर हटा कर उसने चन्द्रनाथ की गोद में रख दिया, और उसे गर्म-गर्म आंसुओं से भिगोने लगी। अपने मुख को उसके अंक में सटाते हुये बोली—बड़ी तकलीफ़ है मुझे भैया, भयंकर पीड़ा, जैसे रोयें-रोयें में आग बल रही है।....

इतनी पीड़ा न होती तो मैं तुम से न कहती...और कहूँ भी किससे, मेरा दूसर कौन है !

चन्द्रनाथ का हाथ साधना की पीठ और सिर पर घूम रहा है, वह एक साथ ही दया और संभ्रम का अनुभव कर रहा है। साधना की देह स्थिर नहीं है, वह बार-बार अपनी स्थिति बदल रही है। सिर उठाकर पुनः तकिये पर रखते हुये उसने चन्द्रनाथ का दाहिना हाथ पकड़ लिया है और उसे अपने मस्तक, कंठ तथा बांह पर दबाती हुई वह कह रही है—देखो ! मेरे शरीर में कितनी जलन है।

चन्द्रनाथ चुपचाप बैठा है, स्तब्ध, काष्ठवत्; वह उसे छूकर भी नहीं छू रहा है। सहसा उसे लगता है कि उसका हाथ साधना के गले से नीचे की ओर जा रहा है, नीचे और नीचे ; वहां उसे वक्षः-स्थल पर दबा कर वह कह रही है—देखो यहां कितनी आग है, कितनी पीड़ा।

वह वहां से हाथ हटाने की चेष्टा कर रहा है, पर हटा नहीं पाता। उसे वहां और भी ज़ोर से दबा कर वह कह रही है—देखो यहां कितनी गर्मी है। ओह ! तुम कितने निर्दय हो।

उसके हाथ को कुछ ढीले छोड़ कर वह फिर बोली—बताओ तुम्हें छोड़ कर मैं कहां जाऊँ ? पुरुष को ज़रूरत हो तो कहीं जा सकता है ; लेकिन नारी कहां जाय ? मैं कहां जा सकती हूँ ?

हतबुद्धि-सा वह कह रहा है—रानी, पागल न बनो।

साधना उसकी बात को अनसुना कर कह रही है—बताओ, मैं कहां जा सकती हूँ !

चन्द्रनाथ—अपने और मेरे सम्बन्ध का विचार करो ; सोचो···

'सम्बन्ध, हाँ इस सम्बन्ध को अंग्रेज़ी में फ्रैन्डशिप (मैत्री) कहते हैं। हम लोगों का कोई रक्त-सम्बन्ध नहीं है। और हो भी तो क्या, कोई सम्बन्ध मनुष्य के सुख-दुःख से ऊपर नहीं है।...तुम कह

रहे थे न कि उच्च प्रेम का आधार सहानुभूति और त्याग होना चाहिये। क्या मेरे लिये कुछ भी त्याग नहीं किया जा सकता ?'

'लेकिन रानी, ज़रा अपनी भाभी का खयाल करो; मैं उनसे वचन-बद्ध हूँ, यह उनके प्रति विश्वासघात होगा।'

'भाभी !....तुम्हें उन्हीं का खयाल है, मेरे दुःख का कुछ भी खयाल नहीं।....जैसे भाभी ही मनुष्य हैं, उन्हीं का कष्ट कष्ट है। भला मेरे कष्ट की तुलना में उन्हें क्या कष्ट होगा ? और क्यों होगा कष्ट उन्हें ? कौन उन्हें सब-कुछ बतलाने जायगा ? क्या ज़रूरत है कि उन्हें तुम्हारी प्रत्येक गति की खबर हो ? क्या मेरा कष्ट दूर करने के लिये उन से इतना भी नहीं छिपाया जा सकता ?...उफ़् !'

चन्द्रनाथ का मस्तिष्क उद्भ्रान्त हो रहा है, वह न ठीक से सुन रहा है, न सोच पा रहा है। सहसा वह उठ कर खड़ा हो गया, और उसने खींच कर अपना हाथ छुड़ा लिया। किन्तु हाथ छुड़ा कर वह गया नहीं, वहीं खड़ा रहा, जैसे अपराध के बाद दंड की प्रतीक्षा कर रहा हो। साधना ने तेज भर्त्सनाभरे स्वर में कहा—जाना चाहते हो ? तो जाओ, मैं पकड़ कर थोड़े ही रख लूँगी; और मुझे अधिकार भी क्या है, मैं किसी की हूं ही कौन, एक भागी हुई पतित नारी। मुझे भरोसा था कि तुम्हारे मन में मेरे लिये भी कुछ जगह है, मेरे सुख-दुख का भी कुछ खयाल है, पर वह भ्रम था।···आज तो मैं यहां रहूंगी ही, कल न जाने कहां जाऊं। लेकिन एक काम करो तो अहसान हो। अभी बाज़ार खुला होगा; जाकर मुझे थोड़ा सा ज़हर लादो, ऐसा ज़हर जो थोड़ा ही पूरा काम करे, जैसे पोटेशियम स्यानाइड; विश्व-विद्यालय बन्द न होता तो मैं ही प्रबन्ध कर लेती।

चन्द्रनाथ कुछ देर अवाक् खड़ा रहा; फिर धीरे-धीरे बाहर आ गया। बाहर वह छत पर टहलने लगा।

ठंडी हवा में उसका मस्तिष्क जैसे क्षण भर कुछ स्वस्थ हुआ, पर दूसरे ही क्षण असंख्य विचारधाराओं से आन्दोलित हो उठा। वह

कौन है ? साधना कौन है ? दोनों का क्या सम्बन्ध है ? और यह कैसी विचित्र परिस्थिति है ! वह कहती है उनका सम्बन्ध मित्रता है, यह सच भी है। मित्रता क्या होती है ? मित्र का क्या कर्तव्य है ?

कर्तव्य—कर्तव्य की कसौटी क्या है, कहां है ?

साधना अनवरत रो रही है, रो रही है; कितना कष्ट है उसे। यह कैसा कष्ट है ? स्पष्ट ही उसका मस्तिष्क, उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं है, अन्यथा वह कभी ऐसी बातें न करती, ऐसा प्रस्ताव न करती। उसे क्या हुआ है ? क्यों वह इतनी विकल है, इतनी बेचैन !...जैसे वह स्वयं आप न रह कर कुछ और बन गई हो, जैसे उसका व्यक्तित्व भीषण वेदना की ज्वाला में पिघल कर बह गया हो।

कैसी वेदना है यह— चन्द्रनाथ को स्वयं इसका अनुभव है, तभी तो उसे और भी कष्ट हो रहा है। कौन-सी शक्तियां हैं ये, कहां की प्रेरणायें, जो मनुष्य को व्याकुल-विह्वल कर देती हैं।

कौन कहता है व्यक्ति स्वतन्त्र है, मनुष्य स्वाधीन है। न जाने वह किन अज्ञात शक्तियों के हाथ की कटपुतली है—न जाने कहां से उसकी इच्छाएँ, उसकी वासनायें, उसके जीवन की सबसे प्रबल प्रेरणायें निर्धारित होती हैं !

क्या है मनुष्य, कौन है वह, क्यों वह यहां आता है ? धर्माचार्य कहते हैं प्रकृति की इन प्रेरणाओं से लड़ो, उन पर नियन्त्रण करो, उन्हें दबा डालो.......जैसे यह भयंकर द्वन्द्व, यह अनवरत संघर्ष ही जीवन का एकमात्र ध्येय हो, लक्ष्य हो !.......और यदि वासनाओं का दबाना ही उद्दिष्ट है तो वे हमारे अन्दर आईं ही क्यों ? क्या उष्णता का दमन या उससे मुक्ति भी आग का लक्ष्य हो सकता है ?

वह देखो रानी रो रही है, उसकी अपनी प्रिय रानी, उसकी बहिन, उसकी सुहृद्...उसकी मनस्विनी साथिन...वह क्यों रो रही है ? कौन भयंकर अग्नि उसे इस प्रकार लाचार बना कर जला रही है ?

समाज...सम्बन्ध...विधि-निषेध, मान सब का एक ही लक्ष्य हो-

व्यक्ति का उत्पीड़न।...क्यों वह साधना की इस असह्य वेदना, इस दुर्दम पीड़ा को दूर नहीं करे! क्यों वह इस आग को बुझाने का प्रयत्न नहीं करे! धर्म की, कर्तव्य की यह कौन-सी विचित्र धारणा है जो उसे एक दर्द से विछलती हुई नारी क. । गा करने से रोकती है!

कितना भयंकर भार है परम्परा का, समाज की रूढ़ियों का; अन्ध मान्यताओं का...ओह! क्या मनुष्य कभी सोचना भी सीखेगा! क्या कभी वह अपने को निर्लिप्त, विशुद्ध मनुष्य के रूप में भी स्वीकार कर सकेगा, ऐसे मनुष्य के जो हिन्दू नहीं है, मुसलमान नहीं है, ईसाई नहीं है; जो विभिन्न धर्मों, देशों और समाजों की रूढ़ियों से मुक्त हो चुका है!

वह आशा के सम्बन्ध में सोच रहा है, उसे हाल ही में लिखे हुए पत्र की याद आ रही है। किस साहस से वह आशा को धोखा दे, और फिर उसे मुख दिखलाये!....लेकिन आशा को इतना बुरा क्यों लगे, क्यों उसमें इतनी अतर्कित ईर्ष्या-भावना हो, इतनी अयुक्त अधिकार-भावना? क्यों मनुष्य के अपनेपन की, उसके सुख-दुःख की, परिधि इतनी संकुचित हो? क्यों आशा यह न समझ सके कि इन विशिष्ट परिस्थितियों में रानी का कष्ट दूर होना उसके सुहृदों की एक मात्र चिन्ता होनी चाहिए?

चन्द्रनाथ समाज के विधि-निषेधों से नहीं डरता, वह धर्म की मिथ्या धारणाओं का बन्दी भी नहीं है। लेकिन इतने भर से, वह देखता है, वे धारणायें और वे विधि-निषेध मिट नहीं जाते। और क्योंकि वे बहुसंख्यक मनुष्यों के अनिवार्य रूप से जड़ मस्तिष्कों में बद्धमूल रहते हैं इसलिए, स्वाधीनतम बुद्धि के व्यक्ति को, उनका फल भोगना पड़ता है। कोई भी व्यक्ति समान्य युग-चेतना से बहुत आगे नहीं बढ़ सकता। इसीलिये तो...उसे लगता है कि स्वयं साधना के हित के लिए यह आवश्यक है कि उसे कोई वैसा क़दम न उठाने दिया जाय।

वह फिर भीतर झांक कर देखता है, देखता है कि साधना उसी प्रकार रो रही है, कभी ज़ोर से, कभी मन्द स्वर में; और वह बराबर सिसकियां भर रही है।

बिना स्पष्ट संकल्प के वह भीतर चला जाता है, साधना के पलंग के पास; वहां वह खड़ा हो जाता है, मौन और निश्चेष्ट। साधना तकिये पर माथा सटाये लेटी है, और वैसे ही लेटी रहती है। कुछ ही क्षण बाद वह सहसा रोना बन्द कर देती है, पर उससे कुछ कहती नहीं, उसकी ओर देखती भी नहीं। उसके इस मौन से उसे महसूस होता है जैसे वह अपराधी है। वह कुर्सी पर बैठ जाता है, और, ईषत् आशंका के साथ, साधना का हाथ अपने हाथ में ले लेता है। किन्तु साधना में इससे कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, उसका हाथ पूर्णतया ढीला छूटा हुआ है, जैसे कोई जड़ वस्तु हो। वह कुछ समय तक हाथ को दबाता रहता है, फिर थोड़ी देर बाद कोमल भाव से साधना को संबोधित करता है, 'रानी!' पर साधना कोई उत्तर नहीं देती। उस ने कंठ से रोना बन्द कर दिया है, पर सिसकियां पूर्ववत् उठ रही हैं। वह कई बार उसे संबोधित करता है, पर व्यर्थ। वह सोच रहा है कि उसे कुछ समझाये, समझाये कि किस प्रकार सीमाओं का उल्लंघन करके व्यक्ति समाज के रोष को आमंत्रित करता और फिर विवश होकर दुःख भोगता है, कि स्वयं उसी के हित के लिए वह उसकी इच्छाओं का व्यतिक्रम करने को बाध्य है। वह चाहता है कि उसे कुछ गीता का उपदेश सुनाये, कुछ महात्मा जी का प्रवचन, बताये कि किस प्रकार भारतवर्ष के मनीषी शिक्षकों ने एक स्वर से आत्म-नियन्त्रण का उपदेश दिया है, और यह कि उस उपदेश में अवश्य ही कुछ सार है। इस प्रकार अपने को वासनाओं द्वारा विवश होने देना ठीक नहीं, शोभन भी नहीं। वह बहुत-कुछ कहना चाहता है पर उसका मुँह नहीं खुलता। साधना की प्रतिक्रिया-शून्य मुद्रा उसे निष्क्रिय और निस्तेज बना रही है।

कुछ देर इसी प्रकार बैठे रहकर वह उठकर खड़ा हो गया। दो मिनट शय्या के पास प्रतीक्षा करके, इस आशा में कि साधना कुछ कहे, वह कमरे के दरवाजे में जाकर खड़ा हो गया। वहाँ से मिश्रित संवेदनाओं में डूबा, वह साधना की ओर ताकता रहा—उसके अस्तव्यस्त केश; गहरे, लम्बे श्वास-प्रश्वास; काँपता हुआ वक्षःस्थल; आँसुओं से भीगा आँचल और नितान्त व्याकुल देह; उसे लग रहा था मानो उसके सामने मानवता ही घायल होकर पड़ी है। कुछ देर में, एक अर्धस्पष्ट संकल्प लिये, वह छत पर चला गया।

छत पर पहुँचकर वह फिर घूमने लगा, आगे से पीछे और पीछे से आगे। कमरे के द्वार में खड़े हुये जो संकल्प उसके मन में आया था वह अब अधिक स्पष्ट और मूर्त रूप लेने लगा है। कितना साहसपूर्ण संकल्प है वह, कितना क्रान्तिकारी, कितना भयंकर, पर साथ ही कितना विशुद्ध, मानवोचित और उत्सर्गपूर्ण! आश्चर्य कि उसे इस संकल्प में डर नहीं लग रहा है! आश्चर्य कि उसे उसमें कहीं भी पाप की, अपराध की गन्ध नहीं आ रही है! आश्चर्य कि वह उसके बारे में सोचकर किसी प्रकार की आशंका या भय से पीड़ित नहीं हो रहा है!

मुँह लटकाये, नितान्त गम्भीर मुद्रा में टहलता हुआ वह धीरे-धीरे अपने कमरे के दरवाजे में पहुँच गया।

वहाँ जाकर वह खड़ा हो गया। वह फिर अपने संकल्प की गुरुता और महत्व को आँक रहा है। उसे लग रहा है कि आज वह मुक्त है, एक विशेष अर्थ में स्वतन्त्र और मुक्त। भारतीय, बल्कि विश्व के, समाज और धर्म की अशेष रूढ़ियों को वह आज तोड़ रहा है, उन पर प्रहार कर रहा है, उनके बन्धन को खंडित कर रहा है। आज मानो वह युग-युग के विधि-निषेधों, परम्परा के समस्त प्रतिबन्धों, इतिहास की समग्र मान्यताओं के भार से सहसा मुक्त हो गया है; आज वह पूर्णतया स्वाधीन है, और उसका, अपनी बुद्धि और

अन्तरात्मा के अनुकूल, एक ही धर्म रह गया है—विफलों के प्रति करुणा, मानव-साथियों का सौहार्द। धर्म की, कर्त्तव्य की, इस नवीन धारणा से वह अभिभूत महसूस कर रहा है, उसकी स्पष्टता से चमत्कृत, उसकी सादगी से चकित। उसे आश्चर्य हो रहा है कि क्यों समाज और सभ्यता की मर्यादायें इस सीधे सत्य को ढकने और चत करने की चेष्टा करती हैं।

अपनी नई धारणा में वह पूर्णतया आस्थावान् है, निःशंक और निःसंशय। वह ऐसे किसी धर्म-ग्रन्थ और नीतिशास्त्र को मानने को तैयार नहीं है जो इस स्पष्ट सत्य की उपेक्षा करे। उसे स्वर्ग का लोभ नहीं है, मोक्ष की कामना नहीं है, न उसे धार्मिक लीकों में चलनेवालों की प्रशंसा की ही अपेक्षा है। वह आज यह सुनने को भी तैयार नहीं है कि संयम और वैराग्य, उदासीनता और तटस्थता, बहुत ऊँची चीजें हैं। इस प्रकार की किसी भी विचारणा से वह अपने व्यवहार को, अथवा रानी के व्यवहार को, निर्धारित नहीं होने देगा। वह आज समस्त लौकिक सम्प्रदायों और पारलौकिक शक्तियों को एक साथ चुनौती दे रहा है।

वह सोच रहा है कि वह अपने प्राणपण से प्रयत्न करके रानी के कष्ट को दूर करेगा, एक मित्र की दूरदर्शिता और ज़िम्मेदारी से, एक सुहृद् की सम्पूर्ण कोमलता और स्निग्धता से……।

रानी पर किसी प्रकार की आँच नहीं आनी चाहिये, कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए कि बाद में उसे लज्जा हो, अथवा उस पर समाज के रोष का पहाड़ टूटे। वह जो कि यों ही काफ़ी कष्ट उठा चुकी है आगे और अधिक कष्ट की भाजन न बने।

उसने अपना एक सन्दूक खोला और उसमें से कोमल रबर की एक वस्तु निकाली; आशा के अनुरोध से वह उस प्रकार की चीजों का व्यवहार करता है। फिर वह धीरे-धीरे, अपने कमरे और छत को पार करके, साधना के पास पहुँच गया।

वह इस समय पूर्ण शान्त मालूम पड़ती थी, चन्द्रनाथ के पहुँचते ही उठकर पलँग पर बैठ गई।

चन्द्रनाथ पास की कुर्सी पर बैठ गया और उसने बड़ी कोमलता से साधना का हाथ लेकर उसे सम्बोधित किया—रानी!

उसकी पलकें करीब-करीब आँखों को ढक रही थीं, वह चन्द्रनाथ की दृष्टि बचाये नीचे देख रही थी। चन्द्रनाथ ने उसके एक हाथ को चूमा, फिर दूसरे को, फिर दोनों को अपने हाथों में लिये हुये कहा—क्या नाराज हो गईं रानी!

साधना ने उत्तर नहीं दिया; कुछ क्षण बीत गये। 'तुम्हें इतनी जल्दी नाराज़ नहीं होना चाहिये, रानी, और न मेरे स्नेह में अविश्वास ही करना चाहिये। एक नई परिस्थिति में सोचने को कुछ समय लेना अस्वाभाविक न था, बल्कि बहुत ज़रूरी था, क्योंकि उसमें मुख्यतः तुम्हारे ही हित-अहित का प्रश्न निहित था। जिम्मेदारी से सोचे बिना मैं न स्वयं वैसा क़दम उठा सकता था न तुम्हें उठाने दे सकता था।

'इतनी देर में मैं इस प्रश्न पर काफी विमर्श कर चुका हूं...... मैं मानता हूं आत्म-नियन्त्रण श्लाघ्य है, वांछनीय है, कुछ देर पहले मैं तुमसे यही कहने आया था।...किन्तु अब सोचता हूं आत्म-दमन एवं आत्म-नियन्त्रण की भी सीमा होती है, होनी चाहिए; उस सीमा का अतिक्रमण होने पर वह निरर्थक आत्म-पीड़न बन जाता है। ...और सबसे बड़ी बात यह है कि हमारा संयम और नियंत्रण स्वेच्छाकृत होना चाहिये, हमारी जीवनचर्या का सहज अंग; परिस्थितियों द्वारा लादे जाने पर वह बेबसी का पर्याय बन जाता है। बेबसी को किसी दूसरे नाम से पुकार कर ग्रहण करना दम्भ है, मिथ्याचार है।

'मैंने निश्चय किया है कि मैं तुम्हारे व्यक्तित्व को समाज की रूढ़ियों द्वारा बद्ध और विवश नहीं होने दूंगा। उस व्यक्तित्व का मुझे

मोह है, उसकी इतनी बड़ी क्षति मुझे सह्य नहीं है। उसके लिए, जरूरत हो तो, हमें समाज का रोष सहने को तैयार रहना चाहिये।'

साधना के हाथ उसके हाथों में ही हैं, उन्हें दुलारते हुये उसने सहसा नितान्त धीमे स्वर में कहा—एक प्रश्न का उत्तर दोगी, सच्चे ! जब तुम बरेली से यहां आई थीं तब, या उससे पहले, क्या कभी तुम्हारे मन में यह भावना उठी कि हम दोनों के बीच वैसा सम्बन्ध स्थापित हो जाय ? वैसी भावना उठी ही नहीं या संकोचवश कहा नहीं !

'तुम्हारे मन में कभी वैसी भावना हुई थी ?' साधना ने उत्तर में पूछा।

'तीन वर्ष पहले, जब जीजी की मृत्यु हुई थी, तब मन में खयाल आया था कि यदि मरना ही था तो क्यों न वह वर्ष भर पहले मर गई जिससे तुम्हें पाने का अवसर मिलता। पर बाद में लगा कि यह विचार अनुचित था। इस बार, तुम्हारे आने पर भी, विशेषतः तुम्हारी परिस्थितियों का विचार करते हुये, एक-दो बार मन में वह विचार उठा, पर भीतर से किसी ने कहा—यह उचित नहीं। शायद तुम वैसा संकेत करतीं तो मेरी भावना बदल जाती। पर तुमने वैसा कभी नहीं किया, उलटे तुम मेरे विवाह को लेकर शोर मचाती रहीं। यदि मुझे थोड़ा भी आभास होता कि तुम . . .'

'मुझे भी यह अनुचित लगता था, विशेषतः यहाँ आने पर। मुझे तुम्हें भैया कहना ही अच्छा लगता है।'

उसने ऊपर की बात इतने स्वच्छ और निर्विकार स्वर में कही कि चन्द्रनाथ चकित हुये बिना न रह सका।

कुछ क्षण बाद साधना ने कहा—जाओ आराम करो, बहुत रात बीत चुकी है।

चन्द्रनाथ सहसा विस्मयभरी कृतज्ञता से उच्छ्वसित हो उठा। क्या वह सचमुच उसे द्वन्द्व और तनाव की उस कष्टपूर्ण स्थिति से मुक्ति दे रही थी !

'तुम नाराज़ तो नहीं हो, रानी ?' उसने प्रसन्नता और उद्योग की मध्यवर्तिनी भूमि से प्रश्न किया।

'नहीं,' साधना ने संक्षेप में उत्तर दिया।

वह उठ कर खड़ा हो गया। साधना उसी प्रकार सिरहाने की ओर पीठ किये बैठी थी। चन्द्रनाथ ने पुनः उसका हाथ अपने हाथ में लिया, फिर उसके सिर को अपने शरीर से चिपटाते हुये, झुक कर उस के माथे को चूम लिया।

और उसे याद आया कि एक बार साधना ने उसे इसी प्रकार चुम्बित किया था।

५५

अगले दिन दोपहर में चन्द्रनाथ ने आशा को पत्र लिखा :—

मेरी आशा,

साथ में रानी का पत्र है, वे चाहती हैं कि तुम जल्दी से जल्दी आ जाओ। मुझ से कहती थीं बुलाने चले जाओ, पर मैंने यह उचित समझा कि तुम्हें पत्र लिख कर तुम्हारी अनुमति ले लूँ। यदि तुम किसी कारण से रुकना ही चाहो तो बेखटके सूचित कर देना।

किन्तु अन्तिम वाक्य का यह अर्थ न लगाना कि तुम्हारे आने-न-आने के सम्बन्ध में मैं उदासीन हूँ, और सिर्फ रानी ही तुम्हें बुलाना चाहती हैं। वास्तविकता यह है कि मुझे इस समय तुम्हारी उपस्थिति की सख्त ज़रूरत है। यह ज़रूरत किसी रोमांटिक भावुकता से सम्बन्ध नहीं है—यद्यपि हमारे सम्बन्ध की नवीनता को देखते हुये, वैसी भावुकता क्षम्य मानी जा सकती है—वह कुछ ज़्यादा गहरी और महत्व-पूर्ण चीज़ है।....इस समय मुझे अपनी आशा की प्रेयसी से अधिक एक साथी के रूप ज़रूरत है, अनिवार्य आवश्यकता।...ऐसी समस्याओं का भार, जिनका सम्बन्ध पुरुष और नारी दोनों से है, अकेले पुरुष का मस्तिष्क कैसे उठा सकता है।....बात यह है कि इस बारे

में इधर मुझे काफी विमर्श और विचार करना पड़ा है, और मैं जिन नतीजों पर पहुँचा हूँ उनके सम्बन्ध में तुम्हारी सम्मति जानने को स्वभावत: बहुत उत्सुक हूँ।

एक बात का विश्वास तुम्हें दिलाऊँ, अपनी भूल स्वीकार करने लायक ईमानदारी मुझ में है। काव्य-सृष्टि में अभिरुचि होने के नाते व्यक्ति के सुख-दुख और संवेदनाओं से मेरा गहरा परिचय रहा है, और उनकी वास्तविकता से मैं सदैव प्रभावित होता रहा हूँ। व्यक्ति के लक्ष्य, उसके सुख की वास्तविक दिशा के सम्बन्ध में—यहां भी तुम्हें मेरा विश्वास करना होगा—मैं काफ़ी तत्परता और ईमानदारी से सोचता रहा हूँ और इसका मतलब यह है कि इस सम्बन्ध में मैं विश्व के अशेष विचारकों से प्रकाश पाने को प्रयत्नशील रहा हूँ। तुम्हें सुनकर शायद आश्चर्य हो, बचपन में मैं बहुत धार्मिक वृत्ति का था, आज भी पुरानी-से-पुरानी धार्मिक शिक्षाओं के प्रति मैं विरक्त नहीं हूँ। तुम्हें याद होगा कि जब शुरू में तुम से क्लब में भेंट हुई थी तो मैं गान्धी जी से बहुत प्रभावित था, और गान्धी जी की मान्यताओं पर प्राचीन शिक्षकों की गहरी छाप है। आज भी यह प्रभाव लुप्त नहीं हो गया है। संस्कृत साहित्य का विद्यार्थी रहने के नाते मुझे भारतीय संस्कृति का भी विशेष ममत्व रहा है।

किन्तु विश्व की सारी संस्कृतियों और मान्यताओं से अधिक मुझे ममत्व है—मानव-व्यक्तित्व का। मैं मानता हूँ कि धर्म और दर्शन के सब सिद्धान्त, नीति के समस्त विधि-निषेध, उस व्यक्तित्व के प्रसार और सुख के लिए हैं, उसके उत्पीडन और विनाश के लिये नहीं। और मैं पूछता हूँ—क्यों इतने ऊँचे आदर्शों की स्वीकृति और प्रचार के बावजूद इतिहास के प्रत्येक ज्ञात युग में अधिकांश मनुष्य पीड़ित और दुखी रहे हैं? और जब कि दुनिया का प्राय: हर मनुष्य किसी न किसी धर्म का अनुयायी है तब पृथ्वी पर इतना अन्याय और अत्याचार क्यों है? मैं धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मानव-

जाति बहुत-से आदर्शों का जीवन से लगाव स्थापित नहीं कर पाती और उन्हें प्रचार अथवा शब्द-मोह के कारण स्वीकार करके चलती रहती है। थोड़े से स्वार्थी और शक्तिशाली लोग उन आदर्शों की अपने अनुकूल व्याख्या करा के भोले जन-समूह का शोषण करते रहते हैं।

मुझे पता नहीं तुम कभी ऐसे शोषण का शिकार हुई या नहीं, पर मुझे अपने जीवन में उसका पर्याप्त अनुभव हुआ है। एक समय था जब मुझे सत्य, शिव और सुन्दर शब्द बड़े मोहक लगते थे, और उनका प्रयोग करनेवालों को मैं बड़ी श्रद्धा से देखता था। अनुभव ने सिद्ध किया कि ये बड़े लोग, प्रसिद्ध नेता और अध्यापक, शिक्षण संस्थाओं के अध्यक्ष, प्रिंसिपल और वाइस चान्सलर, वे जो इन शब्दों का अधिकतम प्रयोग करते हैं, अपने जीवन में उन्हें कोई व्यावहारिक महत्व नहीं देते। जीवनभर उनकी सत्य-शिवोपासना का एक ही रूप रहता है, व्याख्यानों और लेखों में उनका प्रयोग करके जनता को प्रभावित करना। तुमने कभी सोचा है सत्य क्या है? तर्कशास्त्र की दृष्टि से सचाई और मिथ्यापन वाक्यों के धर्म है; दूसरे अर्थ में सत्य तथ्य या वस्तु-स्थिति का द्योतक है। भला ऐसा सत्य जीवन का चरम लक्ष्य कैसे हो सकता है? लेकिन हमें उस शब्द का मोह है और उस मोह का मूल्य हम जीवनभर कष्ट उठा कर देने को तैयार रहते हैं। वैसे ही हम मंगलमय की खोज करते हुये अपने साथियों के, स्वयं अपने, सुख-दुख का कोई खयाल नहीं करते।

ऐसा ही एक शब्द है—तुम डरना नहीं—सतीत्व और उसी का सम्बन्धी पातिव्रत्य। सदियों से सती नारी की प्रशंसा सुनते हुये हम उसे नारी-जीवन का आदर्श समझने के अभ्यस्त हो गये हैं। संयोग-वश जिस पुरुष से विवाह हो जाय—फिर चाहे वह घोर स्वार्थी, क्रूर और मानव-द्रोही ही क्यों न हो—उसे प्यार करना नारी का धर्म है, और किसी दूसरे देवता-स्वरूप पुरुष को भी प्यार करने लगना घोर

पाप। मानो विवाह करने के बाद, नारी के लिये, पति से बाहर अच्छाई-बुराई ही नहीं रहती, और बुराई का तिरस्कार एवं अच्छाई का पक्षपात भी उसका कर्तव्य नहीं रह जाता। कोमलता, उदारता, सहृदयता, प्रतिभा आदि उच्चतम गुणों के रहते हुए भी हमारा समाज उस नारी को, जो किसी भी कारण पति-रूप में प्राप्त पुरुष से सन्तुष्ट नहीं रह पाती, घोर शंका की दृष्टि से देखता है। मैंने ऐसे पति-पत्नी देखे हैं जो एक-दूसरे के सम्पर्क से ऊब गये और एक-दूसरे को हृदय से घृणा करते हैं—मेरा अनुमान है कि हमारे समाज में ऐसे दम्पतियों की संख्या लम्बी-चौड़ी है—आश्चर्य कि समाज उनके जुदा होने में पाप देखता है और उनके साथ रहकर एक-दूसरे के जीवन को भार बनाते रहने में धर्म-रक्षा, जैसे मानव दुःख के परिमाण को बढ़ाना ही धर्म हो, और उसे कम करने का प्रयत्न अधर्म।...मेरा प्रस्ताव है कि जीवन की विभिन्न समस्याओं पर विचार करते हुये हम इन दुविधा-मूलक शब्दों, धर्म और अधर्म का, जिनके सम्बन्ध में सैकड़ों मतामत हैं, प्रयोग न करके मानव सुख-दुख का प्रयोग करें।

हम अपनी रानी का उदाहरण लें। मैं नहीं समझता कि कोई भी नीतिशास्त्र जिसमें सहृदयता का लेश है रानी के पति के पास से चले आने को पाप घोषित कर सकता है। किन्तु यदि रानी ने पाप नहीं किया है—और उनका पाप है तो यही कि उन्होंने बिना किसी को कष्ट दिये, बल्कि पतिदेव को सुखी बनाते हुए क्योंकि वे रानी से ऊब गये थे, अपने को मर्मान्तिक कष्ट से मुक्त करना चाहा—तो क्यों वे किसी भी रूप में कनौड़ी समझी जायँ, क्यों कोई उनके प्रति किसी तरह की अवज्ञा या अनुकम्पा का द्योतक संकेत करे, और क्यों कोई व्यक्ति उन्हें अपना साथी बनाने में थोड़ी भी हिचकिचाहट महसूस करे?

संयम और आत्म-निग्रह के कठोर आदर्श कुछ लोगों को बहुत ऊँचे जान पड़ते हैं। जीवन में उनकी आवश्यकता है इससे कोई

विवेकशील व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता—पिछले पत्र में मैंने इस दिशा में संकेत किया था। किन्तु उन्हें जीवन का एकान्त लक्ष्य बना डालना मैं अस्वाभाविक और अस्वास्थ्यकर समझता हूँ—अहन्ता की पुष्टि का एक अस्वस्थ, अनैसर्गिक तरीका।.......सैकड़ों पौराणिक आख्यानों के नायक ऋषि-मुनियों की कथाएँ ऐसे आत्म-निग्रह या आत्म-दमन की व्यर्थता सिद्ध करती हैं। और आज जब कि विचारशील लोगों को ईश्वर और परलोक दोनों की सत्ता में घोर सन्देह हो गया है, वैसे आदर्शों की शिक्षा निर्दय मज़ाक़-सा जान पड़ती है.......

और मुझे लगता है कि सन्तोष की भांति एकान्त संयम की शिक्षा के प्रचार का श्रेय भी मुख्यतः उन्हीं लोगों को है जिन्हें स्वयं किसी तरह का अभाव नहीं रहा—उन नरपतियों और धनपतियों को जो राष्ट्र या समाज की समूची भोग-सामग्री को अपनी बपौती समझते रहे। आज जनतंत्र के युग में उनके इस एकान्त अधिकार के सामने लम्बा प्रश्नचिह्न खींच दिया गया है......

रानी की समस्या का हल तुम कहोगी—तलाक का कानून है। मेरी दृष्टि में वह साधारण बात है, और कम महत्त्वपूर्ण। असली और महत्त्वपूर्ण चीज़ है मनोवृत्ति का परिवर्तन। नर-नारी के शारीरिक संबंध के प्रति, मेरी समझ में, स्वस्थ दृष्टिकोण यह है—कि वह उनकी गहरी मैत्री भावना की नैसर्गिक परिणति है। (सचमुच ही मुझे इसमें सन्देह होने लगा है कि नर-नारी का गहरा सौहार्द शारीरिक स्पर्श से सर्वथा मुक्त रह सकता है।) और इसका एक निष्कर्ष यह है कि जहाँ वैसी मैत्री या सौहार्द नहीं है वहाँ शारीरिक संबन्ध पाप या व्यभिचार है जो मानव-व्यक्तित्व को दूषित और क्षत करता है।......किन्तु यह आदर्श उसी समाज में ठीक से पनप सकता है जहाँ नारी आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर निर्भर नहीं है, और जहाँ गहरी आर्थिक विषमताएँ भी नहीं हैं।.......और भविष्य

में यदि विवाह-संस्था को क़ायम रहना है तो उसका आधार ऊपर कहीं मैत्री या सौहार्द ही होगा और उस पर कोई अनावश्यक प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकेगा—जैसे कि आज दो पुरुषों या दो स्त्रियों की आपसी मित्रता पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं है।

युगों से हम नमकहराम नौकर और असती नारी की निन्दा-गाथा सुनते आये हैं, पहला शब्द परमपूज्य मालिकों और दूसरा परम पवित्र पुरुषों द्वारा यत्नपूर्वक प्रचारित किया गया है। हड़तालों के इस युग ने पहले शब्द को निरर्थक बना दिया है, आशा है कि नर-नारी-सम्बन्ध का अधिक न्यायसंगत रूप दूसरे को भी निरर्थक बना देगा।

मुझे पूरा भरोसा है कि तुम इस पत्र के वक्तव्यों पर गम्भीरता से विचार करोगी—और उसे ग़लत नहीं समझोगी। उससे अनुचित लाभ उठाने की कोशिश भी नहीं करोगी! और हाँ, अपने आने के सम्बन्ध में सुनिश्चित सूचना दोगी।

तुम्हारा अपना,
चन्द्रनाथ

५६

उस दिन सवेरे में विश्वविद्यालय जाने से पहले साधना एक पत्र आशा के नाम लिख कर रख गई, और एक पुर्जा चन्द्रनाथ के लिये। पुर्जे में लिखा था—'साथ का पत्र भाभी के पास आज ही भेज देना, और इस अभागी बहिन को क्षमा कर देना, भइया।'

उस पुर्जे को पढ़ते हुए चन्द्रनाथ की आँखों में आँसू आ गये। उसी दिन उसने आशा को लम्बा पत्र लिखा।

दूसरे दिन सुबह वह नरेन्द्र के पास गया। नरेन्द्र ने कहा—अच्छा हुआ तुम आ गये। मैं इलाहाबाद जा रहा हूँ; आशा को लिवाता लाऊँ?

'जैसी उनकी इच्छा हो,' चन्द्रनाथ ने संकोच-सहित कहा।

आज वह नरेन्द्र से नर-नारी संबन्ध और विवाह की समस्या को लेकर बातें और विमर्श करना चाहता था। धीरे-धीरे वह नरेन्द्र के निर्भीक खरेपन में विश्वास करने का अभ्यस्त हो चला था और सोचने लगा था कि मानव-स्वभाव की वास्तविकताओं के सम्बन्ध में उस की साक्षी काफी विश्वसनीय होती है।

'तुम्हारी समझ में, नरेन्द्र, स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की आदर्श व्यवस्था क्या हो सकती है?' उसने थोड़ी देर बाद पूछा

'यह तुम किस दृष्टि से पूछ रहे हो?....तुम जानते हो मैं 'मैटीरिए-लिस्ट' हूँ, और मानता हूँ कि इन्सान को इस दुनिया में मौज से रहना चाहिए।'

चन्द्रनाथ—लेकिन तुम यह तो मानोगे न कि व्यवस्था ऐसी हो जिसमें सब सुखी हो सकें, और सचमुच सुखी हो सकें।

नरेन्द्र—इतना तो खैर कोई भी जिम्मेदार आदमी स्वीकार करेगा—और, तुम यह न समझो कि मैं जिम्मेदारी के साथ सोच ही नहीं सकता, या सोचता नहीं।...पहली बात यह कि किसी भी विवाह में एक ओर या दोनों ओर से ग़लत चुनाव होने की संभावना रहती है; तुम मेरा ही "केस" ले लो।

चन्द्रनाथ—इस बात से मैं सहमत हूं, और मैं यह भी मानता हूं कि इस संबन्ध में एक बार ग़लती कर डालने के लिये जन्म भर कष्ट उठाना न्याय-संगत नहीं है।

नरेन्द्र—इस का मतलब यह है कि पति-पत्नी दोनों को तलाक़ का अधिकार होना चाहिए।

चन्द्रनाथ—यहाँ दो प्रश्न उठते है; एक यह कि तलाक का अनियंत्रित अधिकार समाज में उच्छृंखलता पैदा कर सकता है, और दूसरा बच्चों का सवाल...

नरेन्द्र—पहले प्रश्न के उत्तर में मैं रूस की मिसाल सामने रक्खूँगा।

रूस में विवाह और तलाक के सम्बन्ध में किसी तरह की रोक-टोक नहीं है—दो व्यक्ति अपनी इच्छा से साथ हो सकते हैं, और इच्छा मात्र से अलग।...वहाँ विवाह की रस्म एक फार्मेल्टी है जिसे अदा करना ज़रूरी नहीं है। सिर्फ विवाह के दफ्तर में सूचना दे देनी पड़ती है।

चन्द्रनाथ—तब तो वहाँ बड़ी जल्दी-जल्दी तलाक होते होंगे।

नरेन्द्र—जी नहीं, बल्कि वहाँ योरप के दूसरे देशों से कम तलाक होते हैं।...असल में मनुष्य का स्वभाव इतना खराब नहीं है जितना तलाक-विरोधी धार्मिक लोग समझते हैं। हर व्यक्ति स्वभावतः एक ऐसा साथी खोजता है जिस के साथ वह गहरी मित्रता का सम्बन्ध बना सके और ऐसे साथी जल्दी-जल्दी बनाए या बदले नहीं जा सकते।

चन्द्रनाथ—तो तुम भी मानते हो कि मनुष्य में गहरी मित्रता की भूख होती है।

नरेन्द्र—मानना ही पड़ता है...दूसरे किसी सम्बन्ध से असली तृप्ति नहीं मिलती; इसका मुझे खूब अनुभव है।

चन्द्रनाथ सोचने लगा। कुछ क्षण में बोला—कहा जाता है स्वभावतः विविधता चाहता है।

नरेन्द्र—(हँसकर)—सो तो ठीक है।...मेरा खयाल है कि "वेरायटी" (विविधता) की उतनी भूख स्त्री में नहीं होती। और इसका मतलब यह है कि अगर कोई दूसरा प्रलोभन न हो तो स्त्री हर्गिज़ ऐसे पुरुष के प्रति समर्पण न करे जिससे उसे प्रेम नहीं है।

चन्द्रनाथ—और पुरुष?

नरेन्द्र—पुरुष?...व्यक्तिगत रूप में मेरा विचार है कि मुझे किसी भी स्त्री के पास जाते संकोच न होगा यदि वह देखने में मेरी रुचि के अनुकूल हो।

चन्द्रनाथ- लेकिन ऐसा करने से तुम्हारी पत्नी को (मानलो कि तुम्हें उस पत्नी से प्रेम है) तकलीफ हो तो?

नरेन्द्र—(सोचकर)—तो मैं भरसक प्रयत्न करूँगा कि मेरी पत्नी को मेरे दूसरे सम्बन्ध या सम्बन्धों की खबर न हो।

चन्द्रनाथ—लेकिन तुम उन सम्बन्धों से विरत नहीं होओगे।

नरेन्द्र—भई, सच यह है कि कभी-कभी वैसी इच्छा हो ही जायगी, चाहे पत्नी से कितना भी अधिक प्रेम हो। यह मैं प्रवृत्ति की बात कह रहा हूँ, आदर्श की नहीं। लेकिन यह ठीक है कि यदि मैं पत्नी को प्यार करता हूँ तो मुझे उसकी फीलिंग्ज़ (भावनाओं) का खयाल ज़रूर होगा। और मैं यह भी बता दूँ कि ऐसी पत्नी को कोई भी व्यक्ति आसानी से तलाक़ नहीं दे सकेगा, ठीक जैसे एक अन्तरंग मित्र को आसानी से नहीं छोड़ा जाता।

चन्द्रनाथ—इसका मतलब यह है कि गहरी मित्रता ही विवाह के स्थायित्व की गारंटी है।

नरेन्द्र —बिलकुल यही बात है।

चन्द्रनाथ—होना यह चाहिए कि पहले दो व्यक्तियों में गाढ़ी मित्रता का सम्बन्ध हो और बाद में विवाह; हमारे देश में उलटी ही आशा की जाती है।

नरेन्द्र—लेकिन अब हमें बदलना पड़ेगा, क्योंकि अब स्त्री और पुरुष दोनों के व्यक्तित्व बड़े जटिल होते जा रहे हैं।

चन्द्रनाथ—और बच्चों का प्रश्न ? तलाक के बाद बच्चों का क्या हो ?

नरेन्द्र—अच्छा याद आया।...अमरीका के एक जज मिस्टर लिण्ड्से ने एक निराला सुझाव सामने रक्खा है। उनका प्रस्ताव है कि विवाह से पहले युवक-युवती को मित्रों या साथियों की तरह रह कर एक-दूसरे के स्वभाव से परिचित हो लेना चाहिये। इस सम्बन्ध को जज महोदय ने "कम्पेनिओनेट मैरेज" (मैत्री विवाह) कहा है। इस अवस्था में मित्र स्त्री-पुरुष को अलग-अलग रुपया कमाना चाहिये और बच्चे पैदा नहीं करने चाहियें।

चन्द्रनाथ—और बाद में, यह अनुभव करके कि वे एक-दूसरे से पूर्ण सन्तुष्ट हैं, उन्हें विवाह कर लेना चाहिये।

नरेन्द्र—विवाह हमारे अर्थ में, यों तो मैत्री विवाह भी विवाह ही है; भेद यही है कि उस विवाह में "कन्ट्रासेप्टिव्ज़" का प्रयोग करना अनिवार्य है ताकि बच्चे न आ जायँ! बच्चों के आने पर विवाह आवश्यक हो जाता है।

चन्द्रनाथ—इस प्रकार के परीक्षित विवाह के बाद फिर तो डाइवोर्स का अधिकार न होगा?

नरेन्द्र—डिवोर्स का अधिकार तो रहेगा, लेकिन उसकी ज़रूरत कम हो जायगी; मेरा खयाल है बहुत कम। और तुमने जो बच्चों का सवाल उठाया था वह भी बहुत-कुछ हल हो जायगा, बल्कि कहना चाहिए उठेगा ही नहीं।

चन्द्रनाथ गंभीर होकर सोचने लगा। कुछ देर में नरेन्द्र ने कहा—तुम्हारा और आशा का विवाह कुछ हद तक जज लिण्ड्से के आदर्श के अनुकूल हुआ है—क्योंकि तुम लोग एक-दूसरे को अर्से से जानते थे।...यू आर बोथ वेरी फार्चुनेट (तुम दोनो बहुत भाग्यशाली हो); मैं इस विवाह से बहुत सन्तुष्ट हूँ।

चन्द्रनाथ ने संकोचपूर्ण सन्तोष का अनुभव किया।

थोड़ी देर बाद नरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा—तो मैं आशा को लिवा ही लाऊँ? यों तो उसे गये ज्यादा दिन नहीं हुए हैं। (कुछ रुक कर) तुम्हारा जी नहीं लगता होगा, है न?

५७

नरेन्द्र प्रयाग गया, दो दिन बाद उसे लौटना था। चन्द्रनाथ प्रतीक्षा करने लगा।

यह प्रतीक्षा क्या है? क्यों वह एक साथ ही मधुर और कष्टप्रद होती है? एक पुराने परिचित को पुनः समीप पाने की क्यों

? कहते हैं कि मनुष्य नूतनता चाहता है, नूतनता और विविधता, कि प्रेम के क्षेत्र में भी ऊब होती है और नवीनता की खोज। पर क्या इससे विपरीत बात भी सत्य नहीं है? और कहीं वही तो सत्य नहीं है? जिसे हम नवीन कहते हैं उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने का हमें अवसर ही कहाँ मिला था, उसमें ममत्व-बुद्धि ही कब बनी थी, अतः उसकी अभिलाषा को प्रेम कहा भी कैसे जा सकता है?

आशा उसकी परिचित है, काफ़ी दिनों की परिचित, उसका प्रत्येक स्पन्दन और स्पर्श उसकी चेतना का अंग बन चुका है? फिर भी वह उन स्पन्दनों और स्पर्शों की पुनरावृत्ति देखने को उत्कंठित है। यह कैसी उत्कंठा है, कैसी वासना! मानो हम अपने प्रेम-पात्र को हजारों बार शतशः आवृत्त रूपों में अनुभव करना चाहते हैं; उसे पाकर हम जैसे कभी तृप्त ही नहीं होते।

उसने कहीं पढ़ा है कि मनुष्य स्वभाव का वशवर्त्ती है, आदतों से जीने वाला; शायद व्यक्ति-विशेष को प्यार करना भी हमारा स्वभाव बन जाता है और तब हम उस प्रेम-क्रिया की आवृत्ति के बिना आकुलित अनुभव करने लगते हैं। यही कारण है कि पुरानी मैत्री आसानी से नहीं टूटती। शायद इसीलिये, इतने दिनों के विच्छेद एवं अलगाव के बाद भी, वह रानी के ममता-सूत्र को न तोड़ सका। और आशा ने तो बहुत जल्दी वैसा ताना-बाना तैयार कर डाला है—कितने कम समय में वह नितान्त पुरानी परिचित, बहुत दिनों की अपनी. मालूम पड़ने लगी है!

अपने समर्पण की समग्रता से ही नारी पुरुष को इतनी जल्दी बाँध लेती है।

और वह सोच रहा है, कैसे योरप के पति-पत्नी एक दूसरे को तलाक़ देते हैं, कैसे वे पुरानी प्रेम की आदतों को छोड़ पाते हैं! और कैसे साधना पति को छोड़ कर आ सकी है! क्या उसे कभी

अपने पति से प्रेम था ! क्या अरुणकुमार को ही उससे प्रेम था !

किन्तु विवाह से पहले तो प्रेम नहीं होता—होती है प्रेम की लालसा, समर्पण की चाह। यदि यह चाह या लालसा, प्रेम करने की अभिलाषा और संकल्प, पूर्ण न हो सकें तो ! तो अच्छा यही है कि तथा-कथित पति-पत्नी अलग हो जायँ।......यदि वह शुरू के कुछ महीनों बाद ही, शिशु की संभावना से पहले, सुशीला से अलग हो सकता......तो शायद दोनों में किसी को विशेष कष्ट न होता। और नरेन्द्र ! शायद उसे आज भी कष्ट न होगा, दो बच्चों के हो जाने के बाद भी। क्या वह अभ्यासजीवी नहीं है ! क्या कुछ लोग लगातार नई प्रतिक्रिया करने की क्षमता रखते हैं !

वह सोच रहा है—जज लिण्डसे का मैत्री-विवाह, शायद, परम्पराभंजक होते हुए भी, उतना अयुक्त नहीं है। उसका परिणाम बहु-संख्यक विच्छेद भी नहीं होना चाहिये, क्योंकि विवाहित मित्र कालान्तर में एक-दूसरे को प्यार करने के अभ्यस्त बन चुकेंगे।

* * * *

रात हो चुकी है। प्रयाग मे आनेवाली आखिरी गाड़ी का समय जाता रहा, पर अभी आशा नहीं आई। और कल कालेज खुलने वाला है !

दूसरे दिन, कालेज जाने के समय से प्राय: दस-पन्द्रह मिनट पूर्व, नरेन्द्र के साथ आशा ने पदार्पण किया। उन भागते हुए क्षणों में चन्द्रनाथ आशा से कुछ भी बात न कर सका।

किन्तु उस संक्षिप्त कालावधि में पति-पत्नी ने मधुर ढंग से एक-दूसरे की कुशल पूछ ली, और, नितान्त गूढ़ संकेतों से, आनेवाले मिलन का चाव भी प्रकट कर दिया। सदा की भाँति चन्द्रनाथ ने कहा—'तो अब मैं चलता हूँ' और आशा ने पूछा—'किस समय तक लौटेंगे ?'

अन्तिम घंटे में पढ़ाते-पढ़ाते चन्द्रनाथ को स्मरण हुआ कि उसे

शीघ्र घर चलना है और वहाँ कोई उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

किन्तु जब वह घर पर अपने कमरे में पहुँचा तो नित्य की भाँति आशा उसके पास आकर उपस्थित नहीं हुई। उसे आश्चर्य हुआ। कपड़े बदलने के कुछ क्षण बाद वह स्वयं आशा के कमरे में पहुँच गया।

आशा बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी। चन्द्रनाथ को आते देख उसने कुर्सी छोड़ दी, और पलंग पर बैठ गई। कुर्सी पलंग के पास सरका कर चन्द्रनाथ भी बैठ गया। पूछा—क्या पढ़ रही हो?

आशा ने कोई उत्तर नहीं दिया, और अनसुनी-सी करती हुई पुस्तक में व्यस्त रही। चन्द्रनाथ को अब आभास हुआ कि आशा किसी कारण उसी से रुष्ट है। पूछा—नाराज़ हो गई हो क्या, या पुस्तक बहुत ज़्यादा रोचक है?

'हाँ, पुस्तक बहुत रोचक है,' आशा ने स्वाभाविक संयत स्वर में कहा। उसके मुख पर उदासी की छाया थी।

'मुझे लगा कि मेरी आशा मुझ से नाराज़ हो गई।'

'आपको किसी की नाराज़ी से क्या मतलब।'

'इसके मानी!'

'मेरी जगह आपको दस प्यार करने वाली मौजूद हैं, नाराज़ होकर क्या कर लूँगी।'

चन्द्रनाथ भौंचक रह गया। 'यह आज तुम कैसी बातें कर रही हो? क्या किसी ने बहकाया है?'

'किसी को क्या पड़ी जो मुझे बहकाने आयगा, सच्ची बात छिप थोड़े ही सकती है।'

'कौन-सी बात! कैसी बात! मैंने कब तुमसे कुछ भी छिपाने की कोशिश की है!'

'कोशिश करने की ज़रूरत ही क्या है, बेचारी स्त्री कर ही क्या सकती है!'

'देखो आशा, झूठा दोषारोपण न करो, आखिर तुमने ऐसी कौन बात देखी-सुनी है ?'

'मैंने न कुछ देखा है, न देखने की इच्छा है।····मैं पूछती हूँ यदि ऐसा ही था तो शादी करके मुझे फँसाने की क्या ज़रूरत थी ? मैं खुशामद करने तो नहीं गई थी।'

क्षण भर चन्द्रनाथ स्तब्ध रहा। फिर बोला—आशा, तुम्हें ग़लतफ़हमी हुई है।

'मुझे ग़लतफ़हमी नहीं हुई है, आपका पत्र मौजूद है....उससे साफ यह निष्कर्ष निकलता है कि...'

कहते-कहते उसका गला रुँध गया, और उसके नेत्रों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

चन्द्रनाथ असमंजस से देख रहा था।

आशा कह रही थी—आप को रानी से मुहब्बत थी तो क्यों नहीं उन्हें सीधे घर में रख लिया। इस तरह मुझे और दुनिया को धोखा देने की क्या ज़रूरत थी।

सुनकर वह क्षण भर को अवाक् रह गया। फिर बोला—आशा, तुम रानी के और मेरे भी साथ अन्याय कर रही हो।

'मैं अन्याय कर रही हूँ ! मैं भला किसके बूते किसी पर अन्याय करूंगी।.......मैं पूछती हूँ इस वक्त यह पत्र लिखने की क्यों ज़रूरत पड़ी थी ?'

चन्द्रनाथ खामोश रहा।

आशा ने कहीं से पत्र निकाल कर हाथ में ले लिया था और कह रही थी—आपको इसमें संदेह होने लगा है कि नर-नारी की गहरी मित्रता शारीरिक स्पर्श से मुक्त रह सकती है। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि अचानक मेरे पीछे ऐसा संदेह क्यों होने लगा ? और क्या आपके और रानी के बीच वैसा सम्बन्ध नहीं है ?

'रानी मेरी बहिन है,' चन्द्रनाथ ने शान्ति से कहा।

'जानती हूँ, और यह भी जानती हूँ कि वे आपकी बहिन कैसे बनीं....सिर्फ नाम बदल देने से एक सम्बन्ध कुछ-से-कुछ नहीं हो जाता...और आप तो मानते हैं कि शारीरिक सम्बन्ध वैसी मित्रता की स्वाभाविक परिणति है ।'

'तुम यह भूल जाती हो कि रानी एक भारतीय स्त्री हैं, भारतीय संस्कारों में पली हुई ।'

'मैं बहुत-कुछ जानती हूँ, मैं यह भी जानती हूँ कि इस विषय में उनके विचार क्या हैं ।'

'देखो आशा, यदि रानी के मन में कोई कलुष होता तो वे तुम्हें वह पत्र क्यों लिखतीं, और तुम्हें तुरन्त बुलाने का इतना हठ क्यों करतीं ? सच पूछो तो उनकी इच्छा के बिना हम लोगों का यह सम्बन्ध भी न बनता ।'

'तो फिर आपने मुझे ऐसा पत्र क्यों लिखा ? क्यों आप ऐसे पत्र लिखते हैं ?' आशा ने रुआँसे स्वर में कहा ।

'क्योंकि....क्योंकि मैं तुम्हें बिलकुल अपनी समझता हूँ, अपने से अभिन्न । जो प्रश्न मैं स्वयं अपने मन के सामने रख सकता हूँ उन्हें क्या तुम्हारे सामने न रखूँ ?'

आशा मौन रही ।

'और मान ही लो कभी मेरे मन में कोई कमज़ोरी आ जाय तो क्या मैं, उससे लड़ने के लिये, तुम से शक्ति पाने की कोशिश न करूँ ? और यदि रानी में वैसी कमज़ोरी आये तो क्या उन्हें हम दोनों ही से सान्त्वना और शक्ति पाने का अधिकार नहीं है ?'

आशा ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह अपने कमरे में चला गया ।

रात को चन्द्रनाथ ने पाया कि आशा अपने कमरे में सुबक-सुबक कर रो रही है । वह घबरा उठा । उसे बहुत-सी बातें याद आने लगीं । सुशीला का प्रथम आगमन और उससे अपनी पहली नाराज़ी ; शी[illegible]ा की सहज मृदुता और सहज समर्पण-शीलता । और बाद को

दोनों के सम्बन्ध की कटुता। क्या अबाध मैत्री और प्रणय का सुख उसके भाग्य में ही नहीं है ? क्या सचमुच वह आशा को भी खो देगा, उसे अपनी न बना सकेगा ?

वह काँप उठा। उसे नरेन्द्र का कथन याद आया—'मैं इस सम्बन्ध से बहुत खुश हूँ।' क्या सचमुच उसी से कोई भूल हुई है, कोई असाधारण भूल ?

वह धीरे-धीरे आशा के पास पहुँचा और उसे कोमल संकेतों से मनाने की चेष्टा करने लगा।

आशा के बिलकुल निकट बैठकर, उसके सिर को अपनी गोद में झुका कर, उसे धीरे-धीरे दुलारते हुए उसने कहा—क्या तुम सचमुच बहुत नाराज़ हो, बहुत अधिक रुष्ट, अपनों से भी कोई कभी इतन गुस्सा करता है।...क्या तुम्हें सचमुच विश्वास है कि....कि मैं तुमसे प्रेम नहीं करता ; क्या तुम्हरा हृदय इस बात की साक्षी देता है, बोलो ! तुम नहीं जानती कि मुझे तुम्हारी कितनी प्रतीक्षा थी, कितनी आवश्यकता, कि तुम्हारी स्वीकृति का मेरे लिये क्या अर्थ था।....काश कि तुम मेरे भीतर झांक सकतीं....तब शायद तुम्हें एक अकेले, दुर्बल हृदय पर, उस हृदय पर जिसका एक मात्र सम्बल स्नेह और मैत्री है, इतना रोष न होता ..और उस पर तुम अविश्वास भी न करतीं।

थोड़ी देर आशा सुबकती रही, फिर चुप हो गई।

प्रभात में जब वह सोकर उठी तो देखा गया कि वह अप्रसन्न नहीं है।

५९

आशा के आगमन से तीसरे दिन कालेज से लौटते समय चन्द्रनाथ के साथ प्रकाशचन्द्र भी हो लिया। बोला—शादी के बाद आपने कभी बात ही नहीं पूछी ; चलिये, आज मैं स्वयं ही चलता हूँ।

चन्द्रनाथ ने आशा को प्रकाशचन्द्र का परिचय दिया। आशा ने मुस्कुराते हुए उसका स्वागत किया।

'बहुत दिनों से आपसे भेंट करने की अभिलाषा थी, सोचता था चन्द्रनाथ बाबू किसी दिन भी तो कहें, आखिर आज स्वयं ही चला आया', प्रकाश ने आकर्षक मुस्कराहट के साथ कहा।

आशा भी मुस्करा रही थी। बोली—भूल इनकी नहीं, मेरी थी; इन्हें यह सब सोचने की फुर्सत कहां, कालेज से आये और कोई किताब या पांडुलिपि लेकर बैठ गये।

'सच तब तो आप कभी-कभी बड़ी ऊब महसूस करती होंगी....हम लोग तो समझते थे कि यह आप ही के कारण सोसाइटी में "मिक्स" नहीं कर पाते हैं।

'लेखक लोग एकान्ती जीव होते हैं', आशा ने मृदु हास-पूर्वक कहा।

'खूब, तब वे शादी ही क्यों करते हैं। आशा देवी, यदि आप की जगह मैं होता तो इनसे झगड़ा किए बिना न रहता।...मेरी समझ में नहीं आता कि कवि लोग जो इतना अधिक मानवता-मानवता चिल्लाते हैं कैसे साक्षात् मानवता की प्रतिदिन उपेक्षा और अनादर करते हैं।—शेली के जीवन में भी यही चीज़ पाई जाती है।'

चन्द्रनाथ चुपचाप अखबार का एक लेख पढ़ने लगा था। आशा ने उसकी ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—'मानवता! कवियों के लिए वह एक शब्द मात्र है, मोहक ध्वनि। मेरा तो अनुमान है कि वे सिर्फ अपने को ही प्यार करते हैं, और कर सकते हैं; शेली के प्यार का केन्द्र स्वयं उसी का व्यक्तित्व था, न हैरिएट, न मेरी गॉडवि'न।

'बहुत खूब,' कह कर प्रकाश सस्वर हंसा, फिर तुरन्त ही गम्भीर होता हुआ बोला—'मुझे नहीं मालूम था कि आप साहित्य में भी इतनी पारंगत हैं।...अपने को रोमांटिक कवियों से विशेष दिलचस्पी है, फिर भी आपके वक्तव्य की सचाई माननी पड़ती है।'

आशा—कवि लोग चाहते हैं नारी उनसे प्रेम करे, उन्हें प्रेरणा दे, रात दिन उनके कृतित्व का बखान करे; पर स्वयं वे किसी नारी के बन कर नहीं रहना चाहते। शायद नारी भी उनके लिए कला का एक उपकरण मात्र है, मात्र साधन, और भी एक अस्थायी साधन।

प्रकाश— बहुत ठीक, बहुत ठीक; आप बिलकुल सच कहती हैं। कवि बायरन का जीवन इसका प्रमाण है।

आशा—और कवि लोग चाहते हैं अपने लिए अनियंत्रित स्वतन्त्रता, समाज से भी और राज्य से भी; और वे चाहते हैं कि संसार की सारी सुन्दर और मेधावी नारियां उनका मनोविनोद करने के लिए स्वतन्त्र हो जायँ।

प्रकाश—आप ठीक कहती हैं।...लेकिन क्या आप स्त्रियों की स्वतन्त्रता के भी विरुद्ध हैं?

आशा—(हंस कर) भला मैं स्वयं अपनी स्वतन्त्रता के विरुद्ध क्यों होऊँगी।

प्रकाश—तब तो शिकायत व्यर्थ है। कवि भी स्वतन्त्र रहे और कवि की पत्नी भी, बल्कि मैं तो कहूंगा प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री स्वतन्त्र रहे। आपकी क्या सम्मति है?

आशा सहसा चुप हो रही। चन्द्रनाथ आश्चर्य कर रहा था कि क्यों आज अकस्मात् कवि के व्यक्तित्व पर इतने कड़े प्रहार हो रहे हैं। साथ ही वह सोच रहा था—क्या आशा इतनी वक्र भी हो सकती है!

कुछ देर बाद प्रकाश ने चलने की आज्ञा मांगी। आशा ने कहा—'ठहरिये, आप को चाय तो पिला दूं।' प्रकाश रुक गया।

काफी देर लगा कर आशा ने चाय और आलू की टिकियें तैयार कीं। प्रकाशचन्द्र प्रतीक्षा करते रहे।

चाय पर एक बार फिर दोनों का वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। उसके

बीच में चन्द्रनाथ को खींचने की इच्छा दोनों में से किसी ने प्रकट नहीं की।

बीच-बीच में प्रकाश ने कई बार कहा—मुझे स्वप्न में भी यह खयाल न था कि आप साहित्य की इतनी जानकारी रखती हैं। इट् इज़ अ प्लेज़र टु टॉक टु यू (आप से बात करना बड़े आनन्द की बात है।)

काफ़ी देर बाद जब प्रकाश जाने के लिये उठ कर खड़ा हुआ तो आशा ने विशेष स्निग्धता से हँस कर कहा—कभी-कभी आया कीजिये, मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

'अवश्य आऊंगा,' प्रकाश ने प्रत्युत्तर में मुस्कराते हुये कहा, 'कोई भी सहृदय व्यक्ति आप से बात करने का लोभ नहीं छोड़ सकता।'

प्रकाश के चले जाने के बाद आशा सहसा अन्तर्कित रूप में उदास हो गई।

चन्द्रनाथ ने चाहा कि वह आशा से बातें करे, पूछे कि क्यों आज वह बेचारे कवि के प्रति इतनी कठोर हो उठी थी, और उसकी ग़लत-फ़हमियों को दूर करने का प्रयत्न करे। वह आशा से यह भी पूछना चाहता था कि उसने प्रकाशचन्द्र के व्यवहार और विद्वत्ता के बारे में क्या धारणा बनाई। पर आशा ने इस दिशा में उसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया।

अकेले अपनी खाट पर लेटा हुआ वह आशा और प्रकाश के पारस्परिक व्यवहार एवं वार्तालाप का पुनरालोचन करने लगा। आंखें मूंदे हुये उसने पाया कि उन दोनों के पारस्परिक संकेत, एक-दूसरे से नेत्र मिलाने के प्रयत्न, एक-दूसरे के प्रति हंसने-मुस्कराने की क्रियायें उसे बहुत ही स्पष्टता से दिखाई दे रही हैं....और उसके सम्मुख कतिपय ऐसे चित्र भी आये जो उसने उस समय नहीं देखे थे, जो मानो अवचेतन ने चेतन मन की चोरी से संचित कर लिये थे। ये सब कैसे चित्र हैं, इनका क्या अर्थ है ? क्या सचमुच प्रकाश इतना

आकर्षक है, इतना सुन्दर ! क्या यह सम्भव है कि आशा उसके प्रति इतनी जल्दी, इतने कम परिचय में ही इतना आकृष्ट महसूस करे !

और कुछ काल बाद उसने भय और आश्चर्य के साथ देखा कि उसके परिष्कृत एवं विचारशील मन में भी ईर्ष्यातत्व का अभाव नहीं है।

६०

अगले दिन सुबह चन्द्रनाथ साधना के आने की विशेष प्रतीक्षा कर रहा था। आशा के साथ अतर्कित झगड़ा हो जाने की खिन्नता से उसने दो दिन तक साधना को बुलाने का विचार नहीं किया। पिछले दिन यह सोचकर कि अब आशा का "मूड" बदल गया है उसने उसके नाम एक पोस्टकार्ड छोड़ दिया था—प्रायः वह साधना को इसी प्रकार निमन्त्रण और सूचनाएँ देता रहा है। पत्र-रूप सन्देश के किसी कारण उपेक्षित होने पर ही वह हॉस्टल पहुँचने का आयास करता है।

किन्तु साधना नहीं आई और चन्द्रनाथ यह सोचता हुआ कि आज साँझ में उसे स्वयं विश्वविद्यालय जाना होगा कालेज चला गया।

पढ़ाई के दो घंटे बीत चुके थे। सहसा शिक्षक-रूम में चन्द्रनाथ के पास छात्रों का एक दल आ पहुँचा। उनमें से दो-तीन के पास एक विशेष पर्चे की प्रतियाँ थीं। पर्चा साप्ताहिक पत्र के आकार का था, दोनों ओर तीन-तीन कालमों में छपा हुआ। उसे दिखाने ही छात्रगण चन्द्रनाथ के पास आये थे।

पर्चे में भारतीय जनता के नाम एक अपील थी, जिसके नीचे एक प्रसिद्ध समाजवादी नेता का नाम था। नाम के नीचे कोष्ठक में लिखा था—कहीं हिन्दुस्तान में।

छात्र लोग बड़े उत्साहित थे। उनमें कुछ पर्चे को पढ़ चुके थे, और कुछ पढ़ने की कोशिश में थे। चन्द्रनाथ पर्चा पढ़ रहा था, और उसके चारों ओर खड़े विद्यार्थी तरह-तरह की टिप्पणियाँ और प्रश्न कर रहे थे।

पर्चे का विषय अगस्त-क्रान्ति थी।

'साथियो!' पर्चे में लिखा था, 'पहले मैं आप सबको शतशः बधाइयाँ दूँ उस वीरता और साहस के लिये जिसके साथ आपने ब्रिटिश साम्राज्यशाही का मुक़ाबला किया, उस अपूर्व धैर्य के लिये जो आपने अनगिनत संकटों, कष्टों और अत्याचारों के सहन करने में दिखलाया, उन घावों और चोटों के लिये जो आपके वीर शरीरों पर अंकित की गईं......।

'आप कितने सफल हुए थे, पूर्ण सफलता के कितने निकट पहुँच गये थे, इसका माप और प्रमाण दुश्मन की यह स्वीकृति है कि आपने क़रीब-क़रीब उसकी राज्य-शक्ति को ध्वंस ही कर दिया था...

'अतः मैं बल देकर आपसे कहना चाहता हूँ कि आप अपने को असफल या पराजित न समझें, और अपने मन में किसी तरह के अवसाद या निराशा को न आने दें......

'क्रान्ति किसी एक घटना का नाम नहीं है, वह एक सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया है जो न्यूनाधिक वेग से निरन्तर एक राष्ट्र या समाज में चलती रहती है, तब तक जब तक कि उसका उद्देश्य पूरा न हो जाय......

'हमारी क्रान्ति की आग तब तक सुलगती और जलती रहेगी जब तक कि हमारा देश पूर्ण स्वतन्त्रता न प्राप्त कर ले.......

'अगस्त क्रान्ति पूर्ण सफल नहीं हुई क्योंकि हमारे प्रयत्न संगठित और व्यवस्थित नहीं थे। हमें इस संगठन और व्यवस्था की शिक्षा लेनी है, और निर्भय, निरवसाद होकर फिर से क्रान्ति-पथ पर अग्रसर होना है।'

और आगे उस पर्चे बताया गया था कि आनेवाले दिनों और महीनों में लोगों को क्या करना है, क्या करना चाहिए। उसमें उन दलों और नेताओं की भी कड़ी आलोचना थी जो विश्वजन और मार्क्स-वाद के नाम पर जनता के युद्ध-विरोधी मोर्चे को बाधा दे रहे थे।

'कुछ लोग कह रहे हैं कि यह साम्राज्यशाही युद्ध नहीं, जनता का युद्ध है......उन्हें बकने दीजिये, उनकी समझदारी उन्हें मुबारक। यह कैसा युद्ध है यह उनसे पूछो जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने अपने पैशाचिक दमन का शिकार बनाया है—जो जेलों में सड़ रहे हैं, जिनके प्रिय सम्बन्धी मारे और घायल किये गये हैं, जिनके घर लूट लिये गये हैं, जिनकी स्त्रियाँ, उनकी आँखों के सामने, बेइज़्ज़त की गई हैं......'

पर्चा पढ़कर चन्द्रनाथ बहुत ही विचलित और आन्दोलित महसूस करने लगा।

कालेज से घर लौटने पर उसने पाया कि साधना आई हुई है। 'कहो रानी, अच्छी हो ; आशा तुम्हें याद कर रही थी,' देखते ही उसके मुँह से निकला।

साधना का चेहरा निर्विकार किंतु गम्भीर था।

आशा चाय तैयार करने के लिये रसोई में गई हुई थी। चन्द्रनाथ को आते देखकर भी उसने उधर आने की चेष्टा नहीं की थी।

कपड़े बदल कर उसने बाहर तिपाई पर रक्खे हुए लोटे से हाथ-मुँह धोया। फिर वह आकर साधना के पास कुर्सी पर बैठ गया।

कुछ देर दोनों खामोश रहे। यह खामोशी चन्द्रनाथ को अखर रही थी, पर उसे साधना से बात करने को कोई विषय नहीं मिल रहा था।

सहसा मौन भंग करते हुये साधना ने कहा—भइया, क्या भाभी तुम से भी नाराज़ हैं ?

'नहीं तो, नाराज़ क्यों होंगी, क्या तुम से कुछ कह रही थीं ?'

'क्या तुमने उनसे कुछ कहा था ?'

'कुछ भी नहीं, क्यों ?'

'तुमने ज़रूर कहा होगा, मैं ऐसी आशा नहीं करती थी, भइया।'

चन्द्रनाथ परेशान होने लगा। साधना कह रही थी—माना कि

भाभी तुम्हारी अपनी है, बहुत अधिक अपनी ; फिर भी.......फिर भी.......' वह उत्तेजित होने लगी थी।

'मैंने सचमुच ही किसी से कोई बात नहीं कही रानी, तुम विश्वास करो '

'वह कहती थीं तुमने पत्र में सब-कुछ लिख दिया था, और यह कि तुम उनसे कुछ भी नहीं छिपाते।'

'मैंने पत्र में कोई ऐसी बात नहीं लिखी थी.......मुझे आश्चर्य है कि आशा इतनी क्षुद्रतापूर्ण बातें कर सकती है। ...पत्र में मैंने सिर्फ कुछ समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये थे, और कुछ प्रश्न रक्खे थे । तुम चाहो तो पत्र पढ़ सकती हो।'

'मैं पत्र नहीं पढ़ना चाहती, भइया। मैं सिर्फ यह कहने को रुकी हूँ कि अब मैं कभी तुम्हारे पास नहीं आ सकूँगी।'

'मेरे पास नहीं आ सकोगी, क्यों ? यह कैसी बात है। क्यों नहीं आ सकोगी, अपनी इच्छा से या किसी दूसरे के दबाव से ?'

'अपनी ही इच्छा से,' साधना ने अपने सजल नेत्रों को पोछते हुए कहा।

'यह ठीक नहीं है रानी, यह अन्याय है ; मैंने तो कभी तुमसे कुछ नहीं कहा।'

'मुझ से ज्यादा तुम पर भाभी का अधिकार है, भइया, मैं नही चाहती कि मेरे कारण उनसे तुम्हारा मनमुटाव हो।'

'आशा अभी अबोध है,' चन्द्रनाथ ने कुछ रुक कर कहा, 'मुझे पूरा विश्वास है कि चेत होने पर वह तुमसे अपने व्यवहार की क्षमा माँगेगी। उसे तुम से स्नेह भी बहुत है... ..'

'सो मैं जानती हूँ, भइया। मैं भाभी को दोष नहीं देती।........ मेरा भाग्य ही खराब है।' कह कर वह वस्त्र से बरबस टपकते हुए आँसू पोछने लगी।

आँसू पोछते-पोछते उसने कहा—मुझे उस दिन की भूल के लिये क्षमा कर देना भइया।

चन्द्रनाथ कुछ कह नहीं पा रहा था। बाहर से वह शान्त था, पर भीतर ही भीतर जैसे मार्मिक वेदना से गला जा रहा था। सोच रहा था आशा ने यह क्या किया, क्यों रानी से ऐसा अविचारपूर्ण वर्ताव किया।

फिर सहसा साधना की अन्तिम बात याद कर बोला—तुम्हें क्षमा माँगने की ज़रूरत नहीं, रानी।.......मनुष्य दुर्बल है यह सिर्फ उसी का दोष तो नहीं है। मैं मानता हूँ दुर्बलता श्लाघ्य नहीं है, वह अनादर की चीज़ भी हो सकती है; किंतु वह पाप है, यह मानने को मैं तैयार नहीं।

साधना कुछ देर मौन रही। फिर धीमे स्वर में बोली—'यदि केवल दुर्बलता की बात होती तो...शायद...मैं अपने को उतना दोष न देती।...शायद मेरे मन में भी पाप था, मैं चाहती थी कि कुछ देर को, कुछ समय को, मैं तुम्हें पूरी तरह अपना बना लूँ, अपना महसूस कर सकूँ...

कहते-कहते वह उठ खड़ी हुई, और मुँह फेर कर आँखें पोछने लगी।

शिवसरन चाय का सामान लेकर आ रहा था। क्षण भर में आशा भी आती दिखाई देने लगी।

चन्द्रनाथ भी उठ कर खड़ा हो गया था, स्तब्ध और गम्भीर। सहसा वह अपने कपड़ों की दिशा में गया, और वहाँ से कालेज वाला पर्चा निकाल कर ले आया। आशा के आते-आते उसने साधना को संबोधित कर कहा—देखो रानी, आज मैं कितनी रोचक और महत्त्वपूर्ण चीज लाया हूँ, और बड़ी क्रान्तिकारी; सरकार को मालूम हो जाय तो पता नहीं हम लोगों को क्या सज़ा दे डाले।

साधना ने पर्चा ले लिया, और विना विशेष उत्सुकता के पढ़ने लगी। चन्द्रनाथ ध्यान से उसके चेहरे की ओर देख रहा था। थोड़ी ही देर में उसकी मुद्राएँ बदलने लगीं।

उसने क्रमशः अपना मुख चन्द्रनाथ की दिशा में फेरा, और बीच से ही पढ़ती हुई बोली—यह पर्चा कहाँ मिला भइया ?

'कालेज के छात्रों से। जगह-जगह गुप्त रीति से ऐसे पर्चे बाँटे गये हैं।'

'ठीक है ; हाल ही में तो जयप्रकाश बाबू और कुछ दूसरे नेता हज़ारी बाग़ की जेल से भागे हैं। अब ज़रूर कुछ होगा।'

'सवाल होने का नहीं, करने का है ; इस पर्चे में तो विस्तृत कार्य-क्रम दे दिया गया है।'

साधना कुर्सी पर बैठ गई थी, और पर्चा अब आशा के हाथों में पहुँच चुका था।

साधना का "मूड" काफ़ी बदल चुका था। चाय पीते-पीते सहसा बोली—आपको एक और खुशखबरी सुनाऊँ, कल-परसों में यहाँ, खास इस घर में, योगेन्द्र बाबू आनेवाले हैं।

'सच ? तुम्हें कैसे खबर मिली ? वे कहाँ हैं ?...वे कहीं पकड़े गये थे न ?'

'वे पकड़े गये थे और इस समय, शायद, मुक्त हैं।...देखिये इस बात का किसी को पता न चले। पुलिस उनका पीछा कर रही है, वे भी जेल से भागे हुये हैं।'

चन्द्रनाथ गहरे विस्मय से साधना का मुख देख रहा था।

'कल मैं इसी समय आऊँगी,' साधना ने अविचल भाव से कहा, 'अच्छा है, मैं भी उनके दर्शन कर लूँ।'

६१

चढ़ते माघ की ठंडी रात; नौ बजे का समय; सर्वत्र स्तब्धता। इस समय बार-बार छत पर जाकर नीचे दरवाज़े की ओर झांकते हुये आशा, साधना और चन्द्रनाथ किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। कल भी उन लोगों ने इसी प्रकार प्रतीक्षा की थी, पर कल कोई आया नहीं।

कहीं आज भी तो उनकी प्रतीक्षा व्यर्थ न होगी !

योगेन्द्र से उन सब का थोड़े ही दिनों का परिचय है, साधना का परिचय तो बहुत ही कम समय का है; पर इतन[illegible] कालावधि में वे सबको कितने अपने लगने लगे हैं !

आशा कमरे में बैठी पढ़ रही है, वह बहुत कम बार बाहर गई है। साधना प्रायः बराबर छत पर ही बनी रही है, और चन्द्रनाथ कभी बाहर और कभी भीतर घूमता-फिरता मानो अपनी आकुलता को बाह्य गतियों में अनूदित कर रहा है।

योगेन्द्र के अतिरिक्त शायद किसी पुरुष के लिये उसने अब तक इतनी आत्मीयता का अनुभव नहीं किया। यह आत्मीयता क्या है ? क्यों हमें कुछ लोग अकथनीय ढंग से अपने लगने लगते हैं ?

उसने साधना से कई बार कहा है, "रानी, भीतर बैठो, छत बहुत ठंडी है"; पर साधना ने अनसुना कर दिया है। शायद वह दम्पती के बीच में व्यवधान बनना पसन्द नहीं करती; शायद वह आशा की समीपता को बचाना चाहती है।

आशा ने एक बार कुछ कड़े स्वर में चन्द्रनाथ से कहा—'भीतर क्यों नहीं बैठते, ठंड लग गई तो क्या करोगे।' और मुख्यतः इस भय से कि कहीं और ग़लतफ़हमी न हो, वह कम्बल लपेट कर अन्दर कुर्सी पर बैठ गया, और एक पुस्तक पढ़ने लगा।

काफ़ी समय बीत गया। सहसा चन्द्रनाथ को रानी की सुधि हुई और उसने आँखें फाड़ कर बाहर की ओर देखा। उसे आभास हुआ कि साधना छत पर नहीं है। वह उठ खड़ा हुआ; देखा, साधना सचमुच छत पर नहीं है। आशा ने कहा, 'शायद जीजी नीचे गई हैं, कहीं योगेन्द्र बाबू आ तो नहीं गये।'

चन्द्रनाथ छत की मुंडेर के पास पहुंचा और झांक कर नीचे देखने लगा। उसने भय तथा आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता से देखा कि आंगन के एक कोने में साधना खड़ी किसी व्यक्ति से बातें कर रही

है। वह व्यक्ति योगेन्द्र है या उसका प्रेषित कोई दूसरा आदमी! सप्तमी के चांद के प्रकाश में कुछ भी निश्चय करना सम्भव न था। उसने सोचा कि वह नीचे चले, पर पास ही आकर खड़ी हुई आशा ने उसे रोक लिया।

आशा चन्द्रनाथ को कमरे की ओर खींच लाई। बोली—'मुझे पूरा विश्वास है कि वे योगेन्द्र बाबू ही हैं। हमें इस तरह उन्हें बातें करते हुये नहीं देखना चाहिये।' चन्द्रनाथ ने देखा कि आशा की आंखों में रस है, चमक है। वह कह रही थी—जीजी से योगेन्द्र बाबू का पत्र-व्यवहार चलता था, और हम लोगों को खबर तक नहीं!

थोड़ी देर में यकायक एक विचित्र मूर्ति आकर कमरे के द्वार पर खड़ी हो गई। पार्श्व में ही साधना थी।

शरीर पर एक मटमैला पुराना बन्द गले का ऊनी कोट, घुटनों से कुछ ही नीचे तक बँधी मैली धोती, बढ़ी हुई मूछें और दाढ़ी, पीछे की ओर पट्टों की भाँति कढ़े हुये केश। यदि पहले से आभास न होता तो संभवतः कोई भी आगन्तुक को न पहचान पाता। साधना अन्दर घुस कर कह रही थी, 'तुमने पहचाना नहीं भाभी, यह योगेन्द्र बाबू हैं।'

चन्द्रनाथ सहसा आगे बढ़ गया था, और पीठ को दाहिने हाथ से घेरता योगेन्द्र को भीतर लिवा कर ला रहा था।

आशा ने योगेन्द्र को नमस्ते किया। उसके कुर्सी पर बैठ जाने पर कहा—यह आप की हालत क्या है, इतने दिनों से कहाँ थे!

चन्द्रनाथ ने मानो आंखों ही के माध्यम से वह प्रश्न दुहराया। इतने में साधना रसोई में अंगीठी जलाने चली गई थी। योगेन्द्र ने संक्षेप में कहा—सरकार का मेहमान था, अब काफ़ी दिनों से मुक्त हूँ; कोई खास कष्ट नहीं है।

'कितने दिन हुए आपको जेल से भागे, और कैसे आप भागे, तब से कहाँ रहे, क्या-क्या किया?' आशा ने एक साथ ही बहुत-से प्रश्न पूछ डाले।

योगेन्द्र हँसने लगा। चन्द्रनाथ ने कहा—'पहले इन्हें जरा गरम तो हो लेने दो, आशा, फिर अपने सवाल करना।' और उसने योगेन्द्र को अपने पलंग पर बिठाया। खुद दोनों कुर्सियों पर बैठ गये।

'आप जीजी से पत्र-व्यवहार करते रहे और हम लोगों को खबर तक नहीं,' आशा ने फिर कण्ठ खोला।

योगेन्द्र—कहाँ, यही तो एक पत्र उन्हें हाल में लिखा था, सो यह सोचकर कि शायद महिला-छात्रावास के पत्रों पर पुलिस की दृष्टि न पड़ती हो।

चन्द्रनाथ—आपने यह नहीं बतलाया कि आप जेल से कब भागे।

योगेन्द्र—मुझे भागे प्रायः दो महीने हुए।

आशा—दो महीने! ठीक, हम लोगों ने अखबारों में पढ़ा भी था कि यू० पी० सरकार के कुछ कैदी भाग गये। तब से आपने हमें खबर भी नहीं की और न यहाँ आये ही।

योगेन्द्र—यह आप बिलकुल स्त्रियों के योग्य प्रश्न कर रही हैं!

आशा झेंप गई। चन्द्रनाथ ने कहा—बातें फिर करना, पहले योगेन्द्र बाबू को कुछ खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध करो।

आशा उठती हुई बोली—जीजी शायद चाय बना रही हैं, खाना तो तैयार है ही।

और वह स्वयं रसोईघर की ओर चल दी।

पीछे चन्द्रनाथ ने योगेन्द्र से पूछा कि वह इतने दिनों कहाँ क्या-क्या करता रहा।

योगेन्द्र ने कहा—यह तो लम्बा प्रश्न है। आन्दोलन को किसी-न-किसी रूप में जीवित रखना, यही हमारा लक्ष्य रहा है। लोगों तक आशा और उत्साह का सन्देश पहुँचाते रहना, और आगामी संघर्ष के लिये गुप्त संगठन करना, ये हमारे कार्य के मुख्य अंग रहे हैं।

इस पर चन्द्रनाथ ने वह पर्चा निकाला जो उसे छात्रों ने दिया था! योगेन्द्र ने हँसकर कहा—इसके इस प्रान्त में वितरण की जिम्मेदारी हमारे ही दल की रही है।

आशा और साधना आ रही थीं। उन्हें सुनाते हुए चन्द्रनाथ ने कहा—सुन रही हो, वह पर्चा योगेन्द्र बाबू ने ही बँटवाया था।

साधना चाय बना कर लाई थी और आशा के हाथों में भोजन की थाली थी।

सब ने चाय पी। योगेन्द्र ने दोनों महिलाओं को धन्यवाद दिया; फिर भोजन की ओर देखकर कहा—गृह-भ्रष्ट होने पर ही पता चलता है कि इस प्रकार के भोजन का क्या मूल्य है, यों हम कभी गृहणियों के काम को उचित महत्त्व नहीं देते।

भोजन समाप्त करके योगेन्द्र ने सहसा सबको चिन्तापूर्ण आश्चर्य में डालते हुये कहा—आप लोगों को अनेक धन्यवाद, अब आप सोइये, और मैं भी कुछ देर आराम कर लूँ। सवेरे साढ़े-चार बजे मुझे बनारस से प्रस्थान कर देना है।

आशा—क्या कह रहे हैं आप, क्या एक-दो दिन भी नहीं रुकेंगे! हम लोग इसका पूरा प्रबन्ध कर देंगे कि किसी को आपकी उपस्थिति का तनिक भी आभास न हो।

योगेन्द्र—शायद सरकार का जासूसी विभाग आपसे ज़्यादा तेज है। उसे कल तक पता चल जायगा कि मैं इस ओर आया...हूँ।

आशा, और कभी-कभी साधना, तरह-तरह के प्रश्न कर रही थीं।

कुछ काल बाद चन्द्रनाथ ने कहा—अब इन्हें विश्राम करने दो रानी, क्या जाने कल सुबह से इन्हें कहां टक्करें खानी पड़ें।

चन्द्रनाथ के कमरे में एक पलंग पर योगेन्द्र के लिये बिस्तर कर दिया गया। आशा और साधना के लिये दूसरे कमरे में प्रबन्ध किया गया। पलंग पर लेटते-लेटते योगेन्द्र सो गया।

थोड़ी ही देर बाद आशा ने कहा—भई, मुझे तो नींद लग रही है।

'तो तुम जाकर सोओ, और तुम भी सोओ रानी।'

साधना ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ मिनट में आशा उठ कर चलने लगी; साधना वहीं रही।

क्षण भर की खामोशी के बाद वह बोली—योगेन्द्र बाबू इतने कष्टसहिष्णु हैं यह मैं नहीं जानती थी। मालूम होता है उनके सुख-वाद में स्वयं अपने सुख के लिये कोई जगह नहीं है।

चन्द्रनाथ—कोई भी मनस्वी आदमी एपीक्यूरस और बेन्थम के अर्थ में सुखवादी नहीं होता, रानी; व्यक्तिगत सुख की खोज तो छोटे आदमी किया करते हैं।

'तो क्या अपने सुख की खोज पाप है?'

'मैंने यह कब कहा, यदि किसी को कष्ट पहुँचाये बिना हम सुखी हो सकें तो यह अच्छी बात है; लेकिन वह कोई महत्ता की बात नहीं है।'

'महत्ता दूसरों के सुख की खोज में है,' साधना ने चिन्तन की, मुद्रा में कहा, 'वही धर्म भी है, तो धर्म और महत्ता एक ही वस्तु हुये।'

'मैं इसे दूसरी तरह प्रकट करूंगा; महत्ता का अर्थ है किसी बड़े आदर्श का निरन्तर अन्वेषण और उसके लिये कष्टों का स्वीकार। वह आदर्श ज्ञान भी हो सकता है, सौन्दर्य की सृष्टि भी; इसीलिये दार्शनिक और कलाकार महान् होते हैं। किंतु सबसे ऊँचा आदर्श है, विपन्नों के त्राण का प्रयत्न; इसलिये मानव-इतिहास के सब से बड़े पुरुष बुद्ध, ईसा और गांधी हैं, कालिदास, शेक्सपियर और शंकर नहीं।... योगेन्द्र बाबू प्रथम श्रेणी के महापुरुषों के पथ पर चल रहे हैं, बहिन।'

साधना चन्द्रनाथ के पास ही कुर्सी पर बैठी थी। धीरे से उसने चन्द्रनाथ का हाथ उठाकर अपनी गोद में रख लिया। चन्द्रनाथ सोचने के मूड में था, और उसकी दृष्टि अन्यत्र थी। सहसा उसे हाथ पर गर्म-गर्म पानी का स्पर्श मालूम पड़ा। यह क्या? साधना की आँखों से आँसू टपक रहे थे।

शीघ्रता से आँखें पोंछ कर वह स्वस्थ हो गई। कुछ क्षण में बोली—भइया, मैंने निश्चय किया है कि मैं योगेन्द्र बाबू के साथ चली जाऊँ।

'योगेन्द्र बाबू के साथ, क्यों ?' चन्द्रनाथ के मुंह से सहसा निकला।

'देश की सेवा में मुझे भी तो योग देना चाहिए, या जन्म भर अपना ही सुख जोहती रहूँगी,' उसने भरे कण्ठ से कहा।

चन्द्रनाथ कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—'अपना सुख तो हम सभी जोहते हैं, बहिन। उसका उलाहना ही क्या। स्वभाव से लगातार लड़ते रहना किसी के लिये भी शक्य नहीं है।' फिर कुछ रुक कर कहा—'न जाने कौन-कौन सी शक्तियाँ हमें परिचालित करती हैं। एक ओर हमारी अदम्य वासनाएँ हैं, दूसरी ओर हमारी आदर्शोन्मुख वृत्तियाँ, और त्याग एवं कष्ट-सहन की अपार क्षमता; कौन जाने इन दोनों के बीच मानव-जीवन का सत्य कहाँ है।...शायद दोनों ही सत्य हैं, शायद अपनी सीमित दृष्टि के कारण ही हमें दोनों में विरोध दिखाई देता है।'

साधना चुप थी। चन्द्रनाथ कह रहा था—'वासना का अनुवर्त्तन करते हुए भी हम अपना नहीं, अपनी जीव-प्रकृति या जीव-योनि का स्वार्थ जोहते हैं...जिसे हम परोपकार कहते हैं वह भी अन्ततः अपनी जीव-योनि का ही स्वार्थ-साधन है, अथवा जीवन-शक्ति का। भेद यही है कि एक में हम विवेक-शून्य होकर व्यापृत होते हैं, दूसरे में विवेक और चेतना के साथ।'

उसे लगा कि वह स्वयं अपनी बात ठीक से नहीं समझ रहा है।

'तुमने योगेन्द्र बाबू के साथ जाने का विचार क्या इसी समय किया है, रानी ?' उसने कुछ क्षण बाद कोमल स्वर में पूछा।

'नहीं, मैंने यह निश्चय परसों किया था। उसी दिन आपने वह पर्चा दिखाया, और उसी दिन योगेन्द्र बाबू का पत्र भी मिला था।

'इस सम्बन्ध में योगेन्द्र बाबू को तो आपत्ति न होगी ?'

'उनसे मैं पूछ चुकी हूं, यदि तुम अपनी अनुमति दे दो तो उन्हें आपत्ति नहीं है।'

'योगेन्द्र बाबू के साथ जाने में तुम्हारी पढ़ाई में बाधा होगी।'

'पढ़ाई का मुझे उतना मोह नहीं है, मेरा जी भी नहीं लगता। और कुछ नहीं तो योगेन्द्र बाबू के दल के लोगों को भोजन ही बना कर दे सकूंगी, मैं जानती हूँ इस सम्बन्ध में उन्हें काफ़ी परेशानी रहती है।'

'योगेन्द्र बाबू से क्या तुम्हारा बहुत दिनों से पत्र-व्यवहार चलता था, रानी ?' चन्द्रनाथ ने पूछा।

'नहीं तो, यही एक पत्र तो उन्होंने लिखा था ; उस एक पत्र से ही मुझे उनकी स्थिति का बहुत-कुछ आभास हो गया।'

क्यों साधना सहसा यह कदम उठाने को तैयार हुई है, और कैसे योगेन्द्र बाबू पर वह इतना अधिकारपूर्ण विश्वास करने लगी है, यह चन्द्रनाथ की ठीक समझ में नहीं आ रहा था। किन्तु इस विषय को लेकर उस समय साधना से विवाद नहीं किया जा सकता था, यह भी वह जानता था। उसने सोचा कि अब योगेन्द्र बाबू के जागने पर ही इस प्रश्न का निपटारा हो सकेगा।

उसने कोमल भाव से साधना से दूसरे कमरे में जाकर सोने को कहा।

* * *

लगभग साढ़े-तीन बजे योगेन्द्र उठ कर बैठ गया, तुरन्त ही चन्द्रनाथ की नींद भी खुल गई। बिजली के प्रकाश में सोना उसके लिये असम्भव था।

और उन दोनों ने आश्चर्य से देखा कि साधना भी उठ कर चली आ रही है। 'आपकी नींद हुई ?' आते ही उसने योगेन्द्र से पूछा।

'खूब अच्छी तरह, सोने के घंटों का सदुपयोग करने का मुझे अभ्यास है।'

'पुलिस के अस्तित्व के बावजूद ?' चन्द्रनाथ ने कहा।

'उसका भी प्रबन्ध किया जाता है, थोड़े-थोड़े समय प्रत्येक साथी को जागना पड़ता है।'

कुछ देर सब खामोश रहे। सहसा साधना ने पूछा—तो भैया, मुझे योगेन्द्र बाबू के साथ भेज रहे हैं न ?

चन्द्रनाथ ने योगेन्द्र की ओर देखा। 'मैं रानी से कह रहा था कि इनके अध्ययन में बाधा पड़ेगी, यों यदि आपको आपत्ति न हो तो....

योगेन्द्र—मेरी आपत्ति का प्रश्न नहीं है। हमारे दल का सौभाग्य होगा यदि यह हमारे साथ हों— नारी अनिवार्य रूप से पुरुषों को स्फूर्ति देती है। किन्तु इनकी पढ़ाई का खयाल मुझे भी है।

साधना—मेरा पढ़ने में जी नहीं लगता ; फिर इतिहास समझने में तो आप भी मदद दे सकेंगे ।

योगेन्द्र—फिर सोच लीजिए। यदि आप के भाई अनुमति दें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

साधना—भइया, तुम्हारी अनुमति है न ?

चन्द्रनाथ—मैं तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हें नहीं रोकूँगा, रानी ; लेकिन अनुरोध करूँगा कि एक बार पुनः विचार कर लो। तुम्हारे जीवन में यह कदम बहुत ही नाजुक और महत्त्वपूर्ण होगा।

साधना—आपको योगेन्द्र बाबू पर भरोसा है न, भइया ?

चन्द्रनाथ—इस सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूँगा कि मुझे स्वयं अपने पर भी उससे अधिक भरोसा नहीं।

योगेन्द्र—मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, चन्द्रनाथ बाबू; आपके स्नेह और विश्वास का मैं पात्र बना रह सकूं, यह मेरी हार्दिक कामना है।

साधना—तो भइया मैं तैयार हो जाऊँ ?

चन्द्रनाथ—क्यों योगेन्द्र बाबू, आप सहर्ष इस भार को स्वीकार कर रहे हैं ?

योगेन्द्र—आप इसे भार क्यों कहते हैं, यह तो एक बड़ा लाभ है।

साधना—इस देश के पुरुष नारियों को भार ही समझा करते हैं।...तो मैं ज़रूरी सामान ले लूं!

चन्द्रनाथ—योगेन्द्र बाबू, रानी से मेरा पहले का सम्बन्ध है, और बहुत निकट का। वह जितनी मानवती है वैसी ही मनस्विनी और स्निग्ध भी है।...मैं समझता हूँ उसका स्नेह और विश्वास पाना किसी के लिये भी सौभाग्य की बात है।

योगेन्द्र चुपचाप सुन रहा था। दस मिनट बाद साधना ने आकर कहा—मैं तैयार हूँ।

उसने नितान्त देहाती ढंग से एक काले रंग की ऊनी साड़ी पहन रखी थी, और एक गठरी में ओवरकोट रख कर उसे फटे मैले वस्त्र से ढक लिया था।

'जान पड़ता है जैसे तुम पहले से तैयारी कर रही थीं,' चन्द्रनाथ ने कहा।

साधना—सिर्फ परसों ही से तो...ऐसी तैयारी भी क्या करनी थी।

आशा अभी तक सो रही थी। चन्द्रनाथ ने पहुँच कर उसे जगा दिया। उठते ही उसने चाय बनाने का प्रस्ताव किया, पर योगेन्द्र ने मना कर दिया।

आशा बड़ी चकित और उदास दीख रही थी।

दोनो दोनो को पहुँचाने नीचे चले। साधना बहुत प्रसन्न थी, योगेन्द्र बहुत गम्भीर। चन्द्रनाथ की आँखों में बरबस आँसू आना चाह रहे थे।

दरवाजे की देहली पर खड़े होकर साधना ने चन्द्रनाथ को नमस्ते की और कहा—मेरी भाभी को अच्छी तरह रखना भइया; और भाभी, तुम भइया को अकेले छोड़कर न जाना।

आशा से कोई उत्तर देते न बना, चुपचाप उसने साधना की दिशा में अपने हाथ जोड़ दिये।

चन्द्रनाथ आगे तक साथ जाना चाहता था पर योगेन्द्र ने उसे मना किया। थोड़ी ही देर में वे दोनों गोवोलिया के चौगद्दे की दिशा में अदृश्य हो गये।

परिशिष्ट

सावित्री ने चन्द्रनाथ को खबर दी कि जमींदार साहब की छोटी लड़की मालती का निकट भविष्य में ही विवाह होने वाला है। और उसके लिये वे मकान खाली कराना चाहते हैं। 'असल में ब्याह की बात तो बहाना है,' सावित्री ने रहस्य के स्वर में जोड़ा, 'वे बहुत पहले से आपको हटाने की फिक्र में हैं। आपने मालती से शादी नहीं की न।'

चन्द्रनाथ—तो अब भी क्या बिगड़ गया है, हमारे यहां तो यह नियम नहीं है कि पुरुष का एक ही विवाह हो।

सावित्री—कैसी बातें करते हैं; बीबी जी सुनेंगी तो आपको और मुझे दोनों को...

'घर से निकाल देंगी, है न! इधर भी तो वही धमकी है।'

वह मकान की खोज करने लगा। शीघ्र ही उसे मालूम हो गया कि यह काम सहल नहीं है।

अकस्मात् एक दिन उसकी मदन से भेंट हुई। मदन ने कहा—जानते हैं जमींदार साहब क्यों आपको निकालना चाहते हैं! शादी तो बहाना है। असली वजह है आपक बहिन, उनका आपके घर आना-जाना उन लोगों को पसंद नहीं है।

चन्द्रनाथ—लेकिन मेरी बहिन से उन्हें क्या लेना-देना है? बड़ी मूर्खता की बात है।

'हां, बड़ी बेवकूफी है,' मदन ने अन्यमनस्क भाव से क ा, 'बहुत कन्ज़र्वेटिव लोग हैं।'

'मकान मिलना बड़ा कठिन । रहा है, मदन बाबू।'

७ मुश्किल है, लड़ाई की वजह से...

अरे हाँ, मेरे ससुर का एक मकान खाली हुआ है, आपके कालेज से भी ज्यादा दूर नहीं है, मैं कोशिश करूंगा।'

मदन के प्रयत्न से चन्द्रनाथ को मकान मिल गया। साथ ही कामता बाबू ने प्रस्ताव किया कि चन्द्रनाथ उनके पुत्र को जो एफ़० ए० में पढ़ता था, पढ़ा दिया करे। आशा के आगमन के बाद उसका खर्च एकाएक बढ़ गया था, अतः उसने उक्त ट्यूशन को स्वीकार कर लिया।

... ...

चन्द्रनाथ को आशा न थी कि मालती के विवाह में उसे निमंत्रण मिलेगा। पर उसे साधारण नहीं, विशेष निमन्त्रण दिया गया। विवाह के दिन उसे बुलाने के लिये खास तौर से एक आदमी भेजा गया। चन्द्रनाथ को आश्चर्य हुआ। शायद इस निमन्त्रण का कारण माधुरी है, उसने सोचा।

किन्तु वास्तविकता कुछ और थी। जमीन्दार साहब के घर पहुंचने पर उससे कहा गया कि स्वयं वर महोदय, मालती के मनोनीत पति, उससे मिलने को उत्सुक हैं। चन्द्रनाथ जनवासे में गया।

वर के कमरे के द्वार पर पहुँचते ही उसे किसी ने आवाज़ दी—'आइये, प्रोफ़ेसर साहब, आइये'; और उसने एक सुन्दर युवक को उटते हुए लक्ष्य किया। कुछ क्षण में चन्द्रनाथ ने उसे पहचाना—वह इन्द्रमोहन था।

उसकी कल्पना के आगे सहसा बंगाली होटल की बिल्डिंग का दृश्य घूम गया। वह इस होटल को और वहां से यकायक गायब हो जाने वाले इन्द्रमोहन को बीसवीं सदी की भावुकता-शून्य मनोवृत्ति का प्रतीक मानने का अभ्यस्त हो गया था।

वहां से जब वह घर लौटा तो उसके हाथ में एक पांडुलिपि थी जिसकी जिल्द पर लिखा था "मारला एण्ड फ्रीडम" (नीति और स्वाधीनता)।

आशा ने देखकर पूछा—यह क्या लाये हैं?

चन्द्रनाथ—यह एक असाधारण चीज़ है, यों ही नहीं दिखलाई जायगी।

'हमारे पास भी एक असाधारण चीज़ है,' कह कर आशा ने मेज़ पर से एक लिफाफा उठाया।

'क्या है, किसका पत्र है!' कहता हुआ चन्द्रनाथ आशा के समीप बढ़ गया। वह साधना का पत्र था। मिश्रित उत्कंठा और आकुलता से वह उसे पढ़ने लगा। लिखा था—

भैया,

आज बहुत दिनों बाद तुम्हें पत्र लिखने का अवसर पाकर मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि क्या लिखूं। अनुभव से जहाँ बहुत, कुछ सीखा है, वहां, मुझे लगता है, कुछ भूल भी गया है—जैसे कोमल मीठी बातें करना और भावुकता पूर्ण पत्र लिखना। अब शायद तुम्हें वे प्रिय भी न होंगे।

पहली बात यह है कि मैं तथा अन्य लोग सकुशल हैं, और प्रसन्न; अतः किसी प्रकार की चिन्ता न करेंगे। गृह-भ्रष्ट होते हुए भी मैं निश्चन्त हूँ—यह भरोसा है कि कहीं मेरा घर है। इस घर में अपना अधिकार अक्षुण्ण रखने के लिये ही मैं वहां से निकल पड़ी। मुझे यही उचित और उपयोगी लगा। मैंने यह भी सोचा कि शायद कर्म और संघर्ष का वातावरण मुझे अहं की संकीर्ण परिधि से मुक्ति दे सकेगा।

एक बार अपनी इच्छा से घर के संरक्षण का परित्याग करके अब मैं निडर हो गई हूँ। किन्तु वह परित्याग अपने लिये, व्यक्तिगत स्वाभिमान की रक्षा के लिये, था। आज भी मैं इस कमजोरी से मुक्त नहीं हो सकी हूँ, तभी तो स्नेहमय भाई और भाभी की छाया छोड़कर भाग खड़ी हुई। लोकसेवियों के सम्पर्क से, सम्भव है, मैं इस अन्तिम दुर्बलता पर विजय पा सकूं।

आशा है मेरी इस यात्रा के साथ और किसी प्रेरणा का सम्बन्ध नहीं जोड़ेंगे—अन्यथा मुझे कष्ट होगा। साथ ही मुझे यह विश्वास करने का अधिकार देंगे कि हर जगह, हर दशा में, मेरे भइया का आशीर्वाद और मेरी भाभी का स्नेह मेरे साथ है।

और क्या—विदा। भाभी को मेरा माथा चूमना और प्यार।

स्नेहकांक्षिणी,

साधना

पत्र पढ़ कर चन्द्रनाथ ने आशा को दे दिया। फिर जाकर वह चुपचाप छत पर टहलने लगा। थोड़ी देर बाद देखा गया कि उसकी आँखों में कुछ अश्रु कण छलक आये हैं।

Not-good What a girl! Fool

what will be after

Bad novel